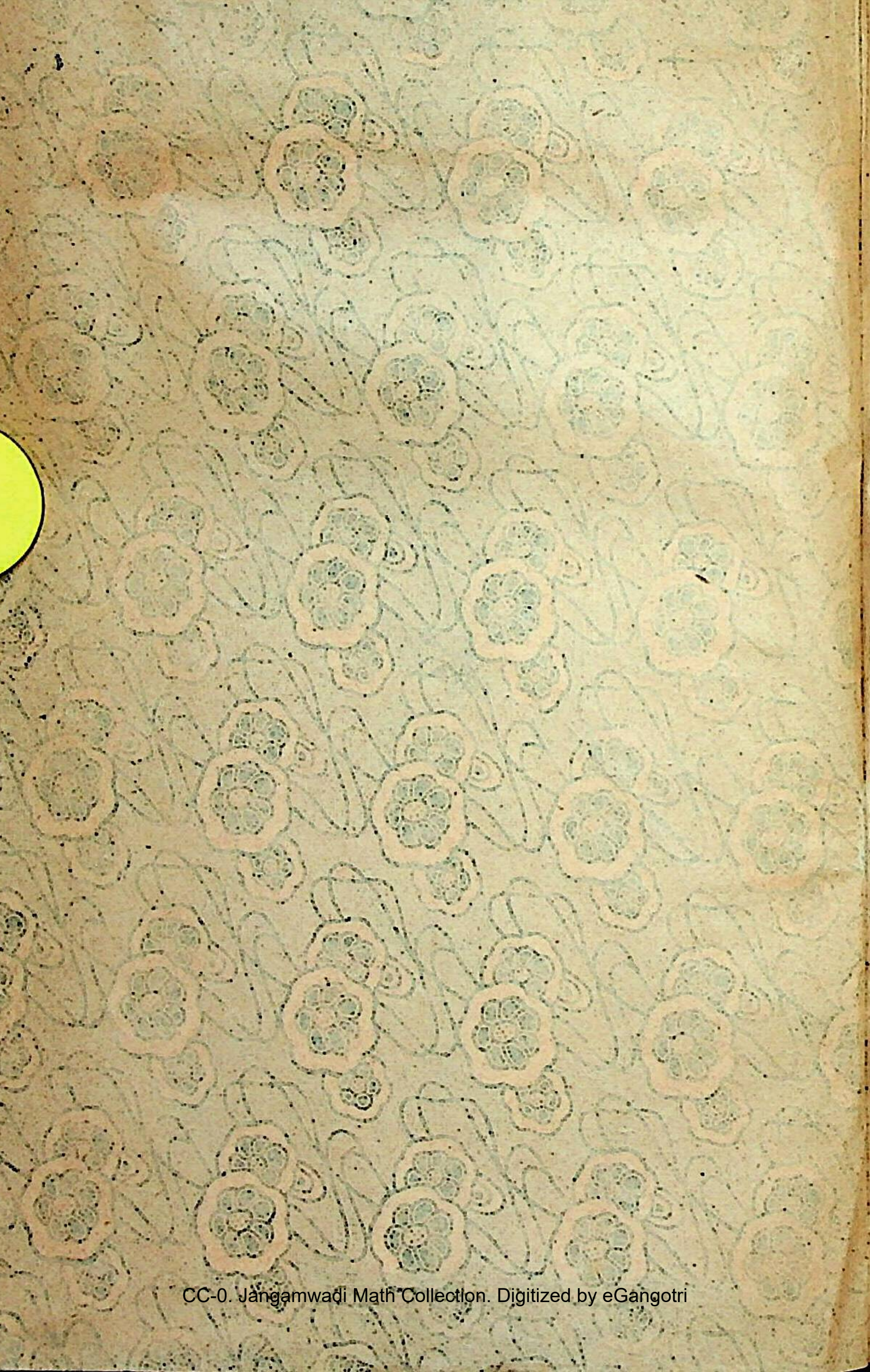
देश की बात

देवनारायण द्विवेदी



* श्रीः *

देश की बात

सम्पादक—
देवनारायण द्विवेदी



प्रकाशक



बनारस सिटी



तृतीय संस्करण	संवत् १९८८	मूल्य डेढ़ रुपया



प्रकाशकका निवेदन

हम 'देशकी बात'का यह तीसरा संस्करण प्रकाशित कर रहे हैं। इसके पूर्व लेखक महोदय इसकी दो आवृत्तियाँ प्रकाशित कर चुके हैं। यद्यपि उसका मूल्य २॥) था फिर भी वह हाथों-हाथ बिक गया। यह इसकी उपयोगिताका प्रमाण है। अब इसकी उपयोगिताका और देशकी दरिद्रताका विचार करके अधिक प्रचार करनेके लिए इसका मूल्य प्रायः लागत मात्र १॥) कर दिया है।

आशा है हमारे हिन्दी-प्रेमी पाठक पुस्तक अधिक संख्यामें खरीद कर हमारा उत्साह बढ़ावेंगे। यदि हिन्दी प्रेमियोंने इसे अपनाया तो हम आगे और भी सस्ती एवं उपयोगी पुस्तकें प्रकाशित करेंगे। अभी हमने जेम्स एलेन सीरीजकी पुस्तकें हिन्दीमें प्रकाशित करनेकी आयोजना की है विश्वास है कि आप इसे भी अपनावेंगे।

विनीत —

बनारसीप्रसाद गुप्त

गुप्त ब्रादर्स, बनारस सिटी।

मुद्रक
मथुराप्रसाद गुप्त
'श्री' यन्त्रालय, सत्तीचौतरा,
बनारस सिटी।

"देशकी बात" पर कुछ सम्मतियाँ

लाहौरकी काङ्ग्रेसके सभापति पं० जवाहरलालजी नेहरू अपने पत्रमें लिखते हैं:—

"मैंने जो पुस्तक आपने दी थी 'देशकी बात' देखी और उसके कुछ हिस्से पढ़े भी। इस एक ही किताबमें देशकी बहुत जरूरी बातें जमा की गयी हैं। अङ्गरेजीमें तो इस विषयपर बहुतसी पुस्तकें हैं। लेकिन हिन्दीमें ऐसी किताबोंकी कमी है। इसलिए यह पुस्तक बहुत लाभ पहुँचा सकती है। मैं आशा करता हूँ कि इसको बहुतसे लोग पढ़ेंगे और देशका असली हाल जानेंगे। खासकर देशके नवयुवकोंको यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए।"

आल इण्डिया कांगरेस कमेटी
५२ हीवेट रोड,
इलाहाबाद ८-११-२९

जवाहरलाल नेहरू

*　　*　　*　　*　　*

कर्मयोगी तथा भविष्यके भूतपूर्व सम्पादक और "भारतमें अङ्गरेजी राज्य" के लेखक श्रीसुन्दरलालजी लिखते हैं:—

"मैंने सरसरी तौरपर 'देशकी बात' नामक पुस्तकको पढ़ा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पुस्तकका मूल विषय अर्थात् 'अङ्गरेजी शासनकालमें भारतका पतन' और साथ ही देशकी 'आर्थिक' पहलूको बिलकुल ठीक और ईमानदारीके साथ दर्शाया गया है।

"जिन-जिन अनुचित उपायोंद्वारा इनके शासन-कालमें भारतीय प्रजाको सताकर देशको लूटा गया, तथा भारतीय कला, वैभव और व्यापारका नाश कर भारतका अपार धन विलायत लेजानेके जो-जो बेजाँ तरीके इन अङ्गरेजोंने कायम किये हैं, उनका सच्चा वर्णन बड़े अच्छे ढङ्गसे प्रमाणसहित इस पुस्तकमें किया गया है।

"इसमें कोई सन्देह नहीं कि जो लोग अपने देशकी वास्तविक स्थितिको जानना चाहते हैं उनके लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी और अमूल्य है। मैं चाहता हूँ कि भारतके नवयुवकोंमें इसका अधिक-से-अधिक प्रचार हो।"

५६ चक
इलाहाबाद ता० ७-११-२६ } सुन्दरलाल

* * * * *

सी० पी० के प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र "कर्मवीर" के ता० २८ जुलाई १९२३ के अंक में लिखा था:--

पुस्तकके आवरण पृष्ठ पर 'देशकी बात' नाम देखकर पहले-पहल हमारी यह धारणा हुई थी कि शायद यह पुस्तक स्वर्गीय सखाराम देउसकरकी पुस्तकका अनुवाद है, किन्तु पुस्तक पढ़नेसे हमारी यह धारणा निर्मूल निकली। जिस प्रकार इतिहास सम्बन्धी पुस्तकके लेखक वर्णनीय विषयका नाम प्रायः अमुक देशका इतिहास ही लिखा करते हैं, किन्तु ऐतिहासिक सामग्रियोंका जुटाव उनका निरूपण और उनकी निष्कर्ष शैली तथा योजनामें भिन्नता रहा करती है, उसी प्रकार देशकी बातमें भी भिन्नता वर्तमान है। केवल पुस्तकके नाम और उद्देश्य ही स्वर्गीय सखाराम देउसकरसे ग्रहण किये गये हैं। शेष चीजें विशेषतया सम्पादक श्री देवनारायण द्विवेदीकी ही हैं।

पुस्तक जिस ढङ्गसे लिखी हुई है, उसे देखकर यह निःसंकोच कहना पड़ता है कि लेखकको इसमें काफी सफलता मिली है। 'ईस्ट-इण्डिया कम्पनीसे पूर्व भारतकी अवस्था' प्रकरणको पढ़कर कैसा भी भारतवासी होगा, अपने देशकी प्राचीन उन्नतकालकी स्मृतिमें चार बूँद आँसू अवश्य ही बहायेगा। 'भारतके नाशका कारण' और 'उद्योग धन्धेका सर्वनाश' प्रकरणोंमें लेखकने अङ्गरेजोंके ही लेखसे यह सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है कि अङ्गरेजोंके शासनने ही भारत-

के उद्योग-धन्धे और शिल्प कलाओंका मूलोच्छेद किया है। इसी प्रकार 'संगठित लूट' के अन्य उपकरणोंपर बड़ी सरसतासे सामग्री जुटाई गयी है।

'बंग-विच्छेद' का कथानक इतना करुणाजनक तथा हृदयस्पर्शी है कि पढ़ते-पढ़ते गला रुँध जाता है।........यह पुस्तक प्रत्येक भारतवासीके घरमें होनी चाहिये। हमारा अनुरोध है कि पुस्तककी एक-एक प्रति पाठक अवश्य खरीदें।

* * * * *

कानपुरकी प्रतिष्ठित मासिक पत्रिका 'प्रभा' ने अपने १ सितम्बर १९२३ के अङ्कमें लिखा थाः—

"पं० देवनारायण द्विवेदीने यह पुस्तक लिखकर हिन्दीका बड़ा ही उपकार किया। इस पुस्तकको आपने बिलकुल स्वतन्त्ररूपसे लिखा है। फिर भी वह अपनेको लेखक न लिखकर सम्पादक लिखते हैं। देउसकरजीके प्रति आपकी यह श्रद्धा सर्वथा स्तुत्य है। हमारी समझसे द्विवेदीजी इस पुस्तकके सम्पादक नहीं, लेखक हैं। हमारे कालेजोंके अर्थ-शास्त्रके विद्यार्थियोंको यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये और साथ ही जनताके सेवकोंको भी। पढ़ी-लिखी जनताको इसका पारायण करना चाहियें। यह पुस्तक पढ़नेपर बहुतसे अज्ञात तिमिरान्धोंकी ज्ञानार्जन शलाकया चक्षुरुन्मीलित होंगे।"

* * * * *

इसका विशेष प्रचार करनेंके लिए इस संस्करणका मूल्य १॥) रुपया कर दिया गया है। शीघ्र मँगाइये। नहीं तो संस्करण समाप्त हो जाने पर पछताना पड़ेगा।

नोट—स्थायी ग्राहकोंको एक रुपयेमें मिलेगी नियम इसी पुस्तक के अन्त में देखिये।

मँगाने का पता—गुप्त आदर्स, वनारस सिटी।

द्विवेदीजीके दो नये उपन्यास

१—कर्त्तव्याघात

यह वही उपन्यास है, जिसने पहले संस्करणमें हिन्दी-संसारमें खलबली मचा दी थी। जिसके लिए हिन्दी-जगत्के सुपरिचित श्रीयुत् प्रेमचन्दजीने लिखा था कि "अबतक इतना अच्छा हिन्दी-का उपन्यास मेरी नजरोंके सामनेसे नहीं गुजरा था।" यह वही पुस्तक है जिसकी प्रशंसामें वर्षोंतक पत्र-पत्रिकाओंके पन्ने रँगे रहते थे और जिसका लोहा छिद्रान्वेषियोंको भी मानना पड़ा था। बड़ी माँगके बाद इसका दूसरा संस्करण तैयार हुआ है। मूल्य २।)

२—प्रणय

यह मौलिक उपन्यास है। प्रेम-पाशमें स्त्री-पुरुषका चित्त हठात् कैसे आकर्षित हो जाता है, द्वेषके कारण मनुष्य कैसे-कैसे दूषित फन्दे अपने द्वेषीपर फेंककर उसे बदनाम करता है आदि बातें बड़ी कुशलतासे चित्रित की गयी हैं। इसकी नायिका पति-परित्यक्ता रमाका पति-प्रेम और विलक्षण ढङ्गसे बिना एक पैसा चन्दा किये देश-सुधार करना पढ़ते ही बनता है। धनाढ्य, विदुषी और सुन्दरी युवती राजोकी करुण-कथा, कठोर हृदयपर भी छाप जमाये बिना नहीं रह सकती। मूल्य २)

कविराजी गृह चिकित्सा—इसमें स्त्री तथा बालकोंके सम्पूर्ण रोगोंके लक्षण और चिकित्सा लिखी है। घरमें रहनेसे स्त्रियाँ भी एका-एक आजाने वाली बीमारीको क्षणभरमें दूर भगा सकती हैं। मू० ।=)

छात्र चिकित्सा—विद्यार्थियोंका स्वास्थ्य ठीक रखने और उनकी बीमारियोंको दूर भगानेके लिए अपूर्व पुस्तक है। मूल्य =)

नोट—उपरोक्त पुस्तकें भी हमारे स्थायी ग्राहकोंको पौने मूल्यमें मिलेंगी। स्थायी ग्राहकोंके नियम पुस्तकके अन्तमें देखिए।

पता—गुप्त ब्रादर्स, बनारस सिटी।

आर्त्त-पुकार

सर्वेश ! आज कैसी है दुर्दशा हमारी !
वह देव-दुर्लभा श्री किस ठौर है सिधारी !
अब स्वप्न हो गया है स्वर्गीय सौख्य सारा ;
मरघट किया गया है नन्दन-विपिन हमारा ॥

बनकर अतिथि अनेकों आये समय-समयपर ;
लेकिन गये कुचलते हमको रुला-रुलाकर ॥
निरुपाय हो सहे हैं कितने असह्य झटके ;
निकले न प्राण तो भी किस ठौर हाय अटके ॥

होकर अतिथि यहाँ जो धर साधु रूप आये ;
स्वामी स्वयं बने वे हम दास ही कहाये ॥
फुसला लिया हमें पर निकले विषैले विषधर ;
है डँस लिया हमें तो साहाय्य-हीन पाकर ॥

हा हन्त ! कुछ उन्होंने दुख-दर्दको न सोचा ;
नोचा हमें खसोटा हर भांति धर दबोचा ॥
अनुपम अनन्त अक्षय धन-कोष लूट खाया ;
सुर-पूज्य रत्न-गर्भाको धूलमें मिलाया ॥

विद्या-कला-कुशलता बलसे यहाँ दबाई ।
स्वार्थान्ध हो मनुजताकी नींवतक हिलायी ॥
पौरुष गया गयी वह सम्पत्ति शक्ति सारी ;
सब कुछ गँवाके दर-दरके हो गये भिखारी ॥

वीरत्व और साहस वह धैर्य्य वह पराक्रम ;
वह बुद्धि ज्ञान-गरिमा सर्वस्व खो चुके हम ॥
धन-धान्य है हमारा घर-बार है हमारा ;
कुछ छू सकें, न इतना अधिकार है हमारा ॥

प्रत्यक्ष काल ही है दासत्वजाल क्या है ;
यों कस दिया कि टससे मस हों—मजाल क्या है॥
बेकाम हाथ करके भी ओठ सी दिये हैं ;
गति-हीन भी बनाकर पथ कराटकित किये हैं॥
हैं हाथ पर हिलानेकी शक्ति छीन ली है,
है दृष्टि किन्तु वह भी अपने अधीन की है॥
छुट जाय दम भले ही अवकाश ले न सकते ;
इच्छा-विरुद्ध उनकी हम साँस ले न सकते॥
करके विवश हमें यों निज पैंतरे बदलकर ;
वे चूसते हमारा लोहू उछल-उछलकर॥
बेबस पड़े लहूके हम घूँट पी रहे हैं ;
मुर्दे बने किसी विध मरघटमें जी रहे हैं॥
चुपचाप भोगते हम वे दुःख कष्ट नाना ;
है पाप छटपटाना, अपराध तिलमिलाना॥
आँसू कढ़े कि जानो बाज़ी तुरन्त आयी ;
उफ़ की कि जीभ पलमें जाती यहाँ खिंचाई॥
इतना हमें सताते, संतोष फिर न पाते ;
पैशाचिकी कलाएँ नित ही नयी दिखाते॥
व्याकुल विरक्त रोआँ-रोआँ कलप रहा है ;
बस मृत्युके लिए ही जीवन तड़प रहा है॥
कितने स्वदेश-सेवी योद्धा व्रतानुरागी ;
हैं हो गये यहाँपर निष्काम सर्व-त्यागी॥
रह-रह बहुत सबोंने ही हाथ पैर मारे ;
पर अन्तमें विवश हो सिर पीट-पीट हारे॥
उद्धार हेतु हमने क्या-क्या नहीं किया है ;
पर भाग्यने सदा ही धोखा हमें दिया है॥

पैरों-तले अनेकों कोमल कुसुम हमारे ;
कितनी कठोरतासे मसले गये बिचारे ॥
अनमोल रत्न कितने पीसे गये हमारे ;
तोड़े गये गगनसे कितने अनूप तारे ॥
विश्वेश ! दासता-हित पैदा हमें किया था ;
यदि भाग्यमें हमारे यह दुःख ही दिया था ॥
तो हे जगन्नियन्ता ! हमको मनुज किया क्यों ?
फिर बोध ही दिया क्यों, ऐसा हृदय दिया क्यों ?
दिन एकसा किसीका संसारमें न जाता ।
उदयास्त-क्रम निरन्तर फेरे यहाँ लगाता ॥
इस सृष्टिके नियमपर श्रद्धा करें कहाँतक ?
प्रतिकूल विधि निरखकर धीरज धरें कहाँतक ?
अमरत्व इस दशाका प्रत्यक्ष है, प्रकट है ;
इसकी उलट-पलटमें संशय बड़ा विकट है ॥
हे सिन्धुराज ! अब तो सब भाँति हाय ! हारे ;
बोलो, सिवा तुम्हारे किसको कहाँ पुकारें ॥
भारत वसुन्धराके तुमने सुदिन निहारे ;
नत भक्ति-भावसे हो तुमने चरण पखारे ॥
अवलम्ब इस कुदिनमें भी हो नहीं हमारे ;
हाँ लाज आज भारतकी हाथ है तुम्हारे ॥
हे सिन्धुराज ! आओ उमड़ो प्रलय मचाओ ;
दुर्दान्त निज तरङ्गें इस देशपर गिराओ ॥
गम्भीर गर्भमें तब यह देश यों समाये ;
अस्तित्व निज मिटाये, कुछ चिह्न रह न जाये ॥

—श्यामसुन्दर खत्री

जेम्स एलेनकी अंग्रेजी पुस्तकें।



By ways of Blessedness.
The Eight Pillars of Prosparity.
* From Poverty to Power.
* All These Things Added.
* Light on Life Difficulties.
Meditation for Every Day in The Year.
The Life Triumphant.
Out from the Heart.
Through the Gate of Good or Christ and Conduct.
Men and Systems.
Personality : Its Cultivation and Power.
Foundation Stones to Happyness & Success.
* As a Man Thinketh.
The Shining Gateway.
One Life, One Law, One Love.
* The Might of Mind.
In the Garden of Silence.
Morning and Evening thoughts.
Life's Inspirations.
Our Mental Children.
Above Life's Turmoil.
Elements of Success.
The Divine Companion.
* From Passion to Piece.
* Man: King of mind, body and circumstances.

नोट—जिनके सामने ऐसा * चिह्न है उनका अनुवाद हो रहा है, हमारे यहाँसे शीघ्रही प्रकाशित होंगी।

मिलने का पता—गुप्त ब्रादर्स, बनारस सिटी।

प्रथम संस्करणकी भूमिका

आजसे करीब वीस वर्ष पहले स्वनाम धन्य पं० सखाराम गणेश देउसकर महोदयने 'देशेर कथा' नामी अमूल्य बङ्गला पुस्तक लिखकर देशको यह बतलाया था कि स्वर्णभूमि भारतकी पहले क्या अवस्था थी और उसका सर्वापहरण करनेमें किन-किन घृणित उपायोंका अवलम्बन किया गया था। उपर्युक्त पुस्तकके अविकल तथा स्वतंत्र अनुवाद हिन्दी-भाषामें भी निकले और उससे लोगोंका यथेष्ट उपकार-साधन हुआ। पर देश इतने प्रवल वेगसे आगे बढ़ रहा है कि उस समयकी अवस्थासे और अवकी अवस्थामें आकाश-पातालका अन्तर हो गया है। उस समय नवोत्थित भारतके राष्ट्रीय संग्रामका उद्योग-पर्व-मात्र था और आज हम अपने प्राणोंकी बाजी लगाये हुए स्वतन्त्रताके संग्रामके मध्यमें मेरुवत् अचल खड़े हुए हैं। अतएव इस बातकी परमावश्यकता थी कि देशकी भूत, भविष्य तथा वर्त्तमान अवस्थापर पूर्णतया विचार करते हुए प्रगति सम्बन्धी प्रत्येक घटनाओंपर अच्छा प्रकाश डाला जाय, जिसमें उसका जीता-जागता चित्र सर्वसाधारणके हृदय-पटलकर अङ्कित होना सुलभ हो जाय। ईश्वरकी कृपासे वह आवश्यकता आज पूरी हुई। अस्तु, जिस कमीका अनुभव बड़े-से-बड़े देश-सेवकसे लेकर एक साधारण स्वदेश हितैषीतक करते आ रहे थे, उसे पूरी होते देखकर किसका हृदय पुलकित न हो उठेगा। राष्ट्र-भाषा हिन्दीकी इस कमीको पूरा करनेका श्रेय अपारसीम अनुशीलन, गम्भीर गवेषणा और अध्ययन तथा अवर्णनीय अथक परिश्रमके फलस्वरूप हिन्दी-साहित्यिक जगतके सुपरिचित साधुता, सरलता तथा अध्ययनशीलताके मूर्त्तिमान् अवतार पण्डित देवनारायणजी द्विवेदी महोदयको प्राप्त हुआ है। द्विवेदीजीने इस महाग्रन्थको लिखकर हिन्दी-संसारका परम् उपकार किया है। जिस पुस्तकमें देश-दशाके हरएक पहलूपर विचार किया गया हो, जिसमें

देशकी प्राचीन गुणगरिमाका विवेचन करते हुए उसके उत्थान-पतन-सम्बन्धी सभी बातोंका समावेश हो, उसका 'देशकी बात' नाम छोड़कर और दूसरा हो ही क्या सकता है। उपर्युक्त कारणोंसे यद्यपि नाम इसका वही पुराना ही रक्खा गया है; पर उक्त पुस्तकसे यह सर्वथा भिन्न ढंगसे बिलकुल स्वतन्त्र रूपसे अनेकानेक पुस्तकों, स्थलों तथा बड़े-बड़े तत्त्ववेत्ताओंके सपुष्ट प्रमाणोंके आधारपर लिखी गयी है। प्राचीन पुस्तक इसका प्रधान आदर्श तथा आधार होते हुए भी इसके प्रायः सभी विषय बिलकुल भिन्न रूपसे विवेचित किये गये हैं।

अधिकारारूढ़ होकर ईष्ट इण्डिया कम्पनी भारतवर्षके बढ़े हुए व्यापारसे प्रतिस्पर्धामें पराजित होनेपर अपने देशके व्यापारको उन्नत करनेकी इच्छासे उसे नष्ट करनेके लिए कैसे-कैसे अनीति-पूर्ण कार्य किये, वे सभी विख्यात विदेशी विद्वानोंको सम्मतियोंके आधारपर बड़ी खूबीके साथ इस पुस्तकमें सन्निविष्ट की गयी हैं।

अँगरेजी शासनके फल स्वरूप कैसे-कैसे हमारी चारित्रिक अधोगति होती गयी, सर्व-गुण-सम्पन्न आर्य-सन्तान पराधीनता-जन्य पापके वशीभूत होकर कैसे-कैसे कुकर्मोंमें लिप्त होने लगी और उनके चरित्रका आदर्श कैसे लोप हुआ, किसानोंपर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष सभी प्रकारसे बराबर कर-वृद्धि होते रहने तथा कानूनी जालमें जकड़े जानेके कारण उनकी दशा किस प्रकार दयनीय हो गयी, सुजला-सुफला-शस्य-श्यामला भारत-वसुन्धरा किस प्रकार मरुभूमिमें परिणत हो गयी, आदि हृदय-विदारक कुचक्रोंपर बड़ा सुन्दर प्रकाश डाला गया है। रेल तथा नहरोंसे होनेवाले लाभालाभवाले प्रकरणमें प्राचीन ग्रन्थके आधारपर प्रबल और नवीन युक्तियोंसे यह सिद्ध किया गया है कि इनसे कितना लाभ और कितनी हानि हमारे देशको हुई। प्रायः दो वर्ष पहले एक पुस्तककी भूमिका लिखते हुए पुरुष-पुंगव पञ्जाब-केशरी लाला लाजपतरायने इस विषयका उल्लेख किया था कि उपर्युक्त

पुस्तकमें आयात और निर्यात नामक परमावश्यक विषयका विवेचन न होनेके कारण यह पुस्तक बिलकुल अधूरी रह गयी है। प्रसन्नताकी बात है कि इस पुस्तकमें उपरोक्त विषय ही नहीं, बल्कि एक्सचेंज ऐसे जटिल विषयपर भी बड़े विशद रूपसे विचार किया गया है।

इसके अतिरिक्त बङ्ग-भङ्गके आन्दोलन तथा तत्सम्बन्धी घटनाओंका विशद विवेचन किया गया है। पुनः उक्त आन्दोलनकी बढ़ती हुई अग्निको दबानेके लिये कौन-कौनसे उपाय अवलम्बन किये गये, कौन-कौन और कितने प्रकारके दमनकारी कानून पासकर जनतापर उनका प्रहार किया गया, पर हमारा जातीय-जीवन विनष्ट होनेके बदले कैसे बढ़ता ही गया और अन्तमें रौलट बिल पासकर जलती हुई अग्निमें कैसे घृताहुति दी गयी और उसके परिणाम-स्वरूप महात्मा गान्धीके नेतृत्वमें देशमें कैसा युगान्तर उपस्थित हुआ आदि घटनावलियाँ किस सुन्दरताके साथ इस ग्रन्थ-माल्यमें गूँथी गयी हैं, यह अवर्णनीय है।

सारांश यह कि इस अनुपम ग्रन्थ-रत्नको लिखकर देवनारायणजी स्वयं तो कृतकृत्य हुए ही हैं पर साथ ही हिन्दी-भाषाका अभूतपूर्व उपकार किया है। 'देशकी बात' भारतवर्षके प्रत्येक विषयका इतिवृत्त है। इसके पढ़ जानेसे हमारा पूर्व कैसा सुन्दर था, फिर किन-किन कारणोंसे हमारा पतन हुआ और अब पुनः कितनी तेजीके साथ हम आगे बढ़ रहे हैं, ये बातें प्रत्यक्ष सम्मुख आ जाती हैं। इसके पढ़ जानेसे जहाँ अपनी प्राचीन उन्नतावस्थापर गर्व होता है, वहाँ किस प्रकार अधःपात किया गया, पढ़कर हृदय हिल जाता है। करुणामय हमारे देशके नवयुवकोंको ऐसा बल दें, जिससे वे इन रक्ताश्रुओंसे बहायी हुई भाव-धाराका प्रबल वेग सहन कर सकते हुए अपने देशकी विपत्तिको निवारण करनेमें समर्थ हो सकें।

कलकत्ता
१९८० विक्रमाब्द

बालदत्त पाण्डेय

एलेन ग्रन्थावली

अर्थात्

जेम्स एलेनकी समस्त पुस्तकोंका हिन्दी अनुवाद

यूरोपमें जेम्स एलेन महोदयकी पुस्तकोंका कितना ऊँचा स्थान है यह इतनेसे ही ज्ञात होता है कि उनकी एक-एक पुस्तकोंकी अनेकानेक आवृत्तियाँ छप चुकी हैं। यहाँकी तरह आवृत्तियाँ भी एक या दो हजारकी नहीं; प्रत्युत दस-दस, बीस-बीस हजारकी हुई हैं। इससे ज्ञात होता है कि एक-एक पुस्तककी कई-कई लाख प्रतियाँ तो छप चुकी हैं। अब हम इन्हींकी पुस्तकोंको हिन्दीमें प्रकाशित कर रहे हैं। ये पुस्तकें बहुत ही ऊँचे विचार की हैं। इनके पढ़नेसे गिरा-से-गिरा मनुष्य भी ऊँचे उठ सकता है और नरक कुण्डसे निकल कर श्रेष्ठ मार्ग पकड़ सकता है।

हम एलेन महोदयकी निम्न पुस्तकों का अनुवाद करा रहे हैं। क्रमशः शीघ्रातिशीघ्र सभी प्रकाशित करेंगे।

1. The Might of Mind. (मनकी शक्ति)
2. From Passion to Piece. (पवित्र मार्ग)
3. Light on Life Difficulties. (प्रकाशमय जीवन)
4. As a Man Thinketh.
5. From Poverty to Power.
6. All These Things Added.
7. Man: King of mind, body and circumstances.

नोट—उपरोक्त तीन पुस्तकें छप रहीं हैं। शेष पुस्तकोंका अनुवाद हो रहा है।

मिलने का पता—शुभ्र ब्रादर्स, बनारस सिटी।

प्रथम संस्करणके दो शब्द

यह पुस्तक मेरी कृति नहीं; वास्तवमें यह स्वर्गीय पं० सखाराम गणेश देउसकर महोदयकी कृति है—क्योंकि उन्हीं महानुभावकी मन-मुग्ध-करी-गुम्फन-चातुरीकी अविकल नकल करनेका मैंने दुस्साहस किया है। तज्जन्य साहित्य-वाटिकामेंसे जिन महानुभावों एवं पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकोंके रङ्ग-विरङ्गे विचार-पुष्पोंको चुनकर मैंने अपनी विचार-मालाकी पुष्टि की है, उनका मैं चिर कृतज्ञ हूँ। यदि पाठकगण इसे पसन्द करेंगे, तो मैं इसका द्वितीय खण्ड निकालकर मालाको दोलड़ी बनानेका शीघ्र प्रयत्न करूँगा। अन्तमें मैं अपने सुहृद पं० छविनाथजी पाण्डेय बी० ए० एल-एल० बी० तथा अहृदी मित्र बा० श्यामसुन्दर खत्रीको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता, जिनकी कृपासे समय-समयपर इस पुस्तकके लिखनेमें बहुत कुछ सहायता मिली है।

सम्वत् १९८० विक्रम

विनीत—
देवनारायण द्विवेदी

द्वितीय संस्करण

इस संस्करणमें सन् १९२८-२९ तकका इतिहास जोड़कर सामयिक बनानेका पूर्ण प्रयत्न किया गया है। जहाँ आँकड़े पुराने मिलें, वहाँ पाठकगण समझ लें कि ये आँकड़े नये उपलब्ध नहीं हो सके। इस बार मूल्य घटानेका इरादा था, पर ऐसी पुस्तकोंके सामयिक बनानेमें भी कितना अधिक व्यय हो जाता है, यह अभिज्ञ जनतासे छिपा नहीं। फिर भी बहुतसी अङ्गरेजीकी पुस्तकें मुझे कारमाइकेल लाइब्रेरी, काशीके प्रेमी लाइब्रेरियन पं० संकटादत्त दूबेसे मिलीं। एतदर्थ मैं उन्हें धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता।

साहित्याश्रम
पो० कछवा, मिर्जापुर
१९८६ विक्रमाब्द

विनीत—
देवनारायण द्विवेदी

तृतीय संस्करण

हर्षकी बात है कि श्री बनारसीप्रसाद गुप्तने 'देशकी बात' का तृतीय संस्करण डेढ़ रुपयेमें निकालकर जनताका अभूतपूर्व उपकार किया है। मूल्यके लिए महात्मा गान्धी तककी शिकायत थी। आशा है कि हिन्दी-प्रेमी अब घर-घरमें इस उपयोगी पुस्तकका प्रचार करेंगे।

आज हम अपने प्रेमी पाठकोंसे यह भी वादा करते हैं कि अब अपने पुराने वादेको पूरा करनेके लिए देशकी बातका दूसरा खण्ड बहुत जल्द जनताके समक्ष उपस्थित करेंगे।

संम्वत् १९८८ वि० } देवनारायण द्विवेदी

उत्सर्ग



प्यारे गिरिजा,

तुम्हारी अलौकिक प्रतिभाको देखकर हम पहले ही जान गये थे कि तुम्हारा हमारा सम्बन्ध चिरस्थायी न रहेगा। तुम कोई शाप-भ्रष्ट महात्मा थे; शापकी अवधि पूरी होते ही सहसा पाँच वर्षकी अवस्थामें ही बिदा हो गये। तुम तो शाप-मुक्त होकर चले गये, पर हमें दुःख-सागरमें चिर-निमग्न कर गये। तुम्हारी विलक्षण साँवली सौम्य-मूर्त्ति आठो पहर नेत्रोंके सम्मुख फिरा करती है! सारी आशाएँ, सारे मनोरथ निष्फल हो गये! हाय हाय! गुरुजनोंकी लज्जाके कारण तुम्हें जी भर-कर प्यार करनेका अवसर भी कठिनतासे हाथ आता था। अब तो बीती बातोंका ध्यानकर आँसू बहानेके सिवा अन्य मार्ग नहीं! पर 'जातस्यहि ध्रुवं मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च'— भगवद्वाक्यानुसार तुम्हारा फिर अवतरित होना निश्चय जान यह पुस्तक तुम्हारी ही प्रिय स्मृतिपर उत्सर्ग करता हूँ। हमारी दृढ़ धारणा है कि हमारे तुम्हारे सम्मिलनमें यही पुस्तक मध्य-स्थका काम करेगी। अस्तु तुम कोई हो, कहीं हो, लो! सन्तप्त हृदयकी यह प्रेम-पुष्पाञ्जलि स्वीकार करो!

—तुम्हारा अभागा पिता

सहायक-सूची

१—स्वर्गीय पं० सखाराम गणेश देउसकर

२—पं० बाबूराव विष्णु पराड़कर

३—पं० छविनाथ पाण्डेय बी० ए० एल०-एल० बी०

४—पं० गौरीशङ्कर शुक्ल बी० काम०

५—अङ्गरेजीकी वे पुस्तकें जिनके प्रमाण इस पुस्तकमें दिये गये हैं।

६—लाला कन्नोमल एम० ए०

पत्र-पत्रिकाएँ तथा पुस्तकें—

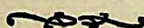
माडर्न रिव्यू	[अङ्गरेजी मासिक]	
यङ्ग इण्डिया	[,, साप्ताहिक]	
प्रताप	हिन्दी	,,
सरस्वती	(हिन्दी मासिक)	
माधुरी	,,	,,
स्वार्थ	,,	,,
प्रभा	,,	,,
भारतमित्र	,,	दैनिक
आज	,,	,,
भारत दर्शन		पुस्तक
भारतमें दुर्भिक्ष		,,

७—इण्डियन ईयर बुक ,,

८—ह्विटकर्स ,,

९—गवर्नमेंट आफ़ इण्डियाकी रिपोर्टें

विषय-सूची



देशकी बात

उपक्रम

मैं अपने हिन्दी-प्रेमियोंके समक्ष उसी देशकी झलक झलकाकर उन्हें अपनी ओर आकर्षित करना चाहता हूँ, जिस देशमें जन्म लेनेके लिए देवतालोग भी तरसते रहते हैं। जो देश पहले स्वर्गसे भी अधिक शान्ति-पूर्ण, रम्य और आनन्ददायक था, जिसने सारे संसारमें पहले-पहल सभ्यता और शिक्षाका प्रचार किया था। अहा, इस पुस्तकमें उसी देशकी झलक है, जिस देशकी वृक्ष-लता, पत्र-पुष्प-विलक्षणा उद्यान-भूमि, गगनस्पर्शी पर्वतमालाएँ, गिरिराजके समान ऊँची लहरें लेता हुआ नीलाम्बु-पूर्ण अथाह समुद्र, श्वापदोंसे भरा हुआ गहन कानन, ताल-तमाल-नारिकेल परिवेष्ठित ग्राम और ऋषि-मुनियोंकी वेद-मंत्रोंसे गूँजती हुई कुटियोंके स्मरण-मात्रसे हृदय भर आता है। जिस देशके गौरवकी विजय-पताका भूमण्डलमें फहरा रही थी, जिस देशकी सुरम्य भूमि प्रकृति-देवीका क्रीड़ा-स्थान, धर्मतत्त्व-प्रसूता, शस्य-श्यामला, धन-धान्य-सम्पन्ना और रत्न-गर्भा

थी, समयके फेरसे निर्धन हुई उसी दरिद्र-गर्भाका चित्र पाठकोंके सामने इस पुस्तकमें अंकित किया जायगा।

किसी देशके सच्चे इतिहासका पता उस देशके साहित्यसे लगता है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम अपने प्राचीन साहित्यपर एक दृष्टि डालें। हमारा सबसे प्राचीन साहित्य 'वेद' है। हमारा ही क्यों अब तो संसारमें सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेदहीके माने गये हैं। वेदके प्रत्येक मंत्र मधुर स्वरमें कह रहे हैं कि, वैदिक कालमें भारतवर्ष सम्पूर्ण सांसारिक कार्य करता हुआ अपना हृदय सांसारिक प्रपंचोंसे अलग रखता था, किसीमें मोह और ममता छू तक नहीं गयी थी; अधर्म, अत्याचार और असत्यका कहीं नाम-निशान भी नहीं था। इन सभोंका यह अर्थ नहीं कि उस समय लोग जंगलोंमें धूनी रमाये हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहते थे, वरन् यह कि उस समय भी हमारा देश कला-कौशल-युक्त, अन्यान्य देशोंमें अपना माल भेजकर देशको सम्पत्ति-सम्पन्न करनेमें सुचतुर था। ऋग्वेदके मंत्र (१।११६।५) से स्पष्ट पता चलता है कि वैदिककालमें यहाँ अगाध समुद्रको चीरते हुए सौ पतवारोंसे सुसज्जित जलयान चलते थे। युक्तकल्पतरुमें भी जो नौकाओंका आकार-प्रकार पाया जाता है, उससे भी यही निश्चय होता है कि इस विद्यामें भारत बहुत बड़ी उन्नति कर चुका था। पहले आजकलकी भाँति प्रजा अन्न-प्रपीड़िता और रोग-ग्रस्ता कभी नहीं थी। इसका पुष्ट प्रमाण नीचेका संस्कृत-पद है,—

"प्रहृष्टो मुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः।
निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्ष भय वर्जितः॥
न चापि क्षुद्भयं तत्र न तस्कर भयं तथा।
नगराणि च राष्ट्राणि धनधान्य युतानि च॥"

— महर्षि वाल्मीकि

अर्थात् "सारा लोक प्रसन्न, संतुष्ट, परिपुष्ट, सुधार्मिक, निरामय, रोग-रहित और दुर्भिक्ष के भयसे मुक्त हो गया। न तो किसीको क्षुधाके लिए आर्त होना पड़ता था और न चोरोंका भयही था। नगर और राष्ट्र धन-धान्यसे युक्त था।" प्राचीन समयमें आजकल-की भाँति लोग 'क्षणिक शरीर' और 'मिथ्या संसार' कहकर व्यर्थ ढकोसला नहीं रचते थे। उस समय लोग वेदके इस मंत्रके कायल थे—

"पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम्।
शृणुयाम शरदः शतम् प्रब्रवाम शरदः शतं अदीनाः
स्याम शरदः शतम् भूयश्च शरदः शतात्।"

—यजु० अ० ३६।२४

अर्थात् "मनुष्यको पुरुषार्थ-प्रयत्न करते हुए अदीन अर्थात् निर्द्धनता-रहित वृत्तिसे सौ वर्षोंतक जीनेकी हमेशा इच्छा रखनी चाहिये। सौ वर्ष या इससे भी अधिक उम्रतक अपनी शक्तियों को उन्नत रखनी चाहिये।" उस समय लोग आजकलकी भाँति देश-सेवासे विरक्तता नहीं दिखाते थे, वरन् सदा स्वराज्यमें सचेष्ट रहते थे। इसका प्रमाण वेद-मंत्र है,—"व्यचिष्टे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये" (ऋ० ५, ५६, ६) अर्थात् "हम विस्तृत और बहुतोंके द्वारा पालन होनेवाले स्वराज्यके लिए यत्न करें।"

देशकी और बातोंपर विचार करनेके पहले यह आवश्यक प्रतीत होता है कि पहले उसका आकार बतला दिया जाय। भारतवर्षका विस्तार १३ लाख ८८ हजार ६ सौ ७२ वर्गमील है। जिसमें ७,६३,६७२ वर्गमीलपर अंग्रेजोंका खास आधिपत्य है। इसे ब्रिटिश-भारत कहते हैं। बिलोचिस्तान और ब्रह्म-देश भी ब्रिटिश-भारतमें ही गिने जाते हैं। ब्रिटिश बिलोचिस्तान का क्षेत्रफल २२,४०० वर्ग-मील और ब्रह्म-देशका १,६८,५५० वर्गमील है। भारतमें कुल २८३ कर देनेवाले बड़े राजाओंकी संख्या है। इनमें मध्यभारतमें ८०,

राजपूतानामें २०, मध्यप्रदेशमें १५, पंजाबमें ३४, मद्रासमें ५, बम्बईमें २०, संयुक्तप्रान्तमें २, काश्मीरमें १, मैसूरमें ८१, हैदराबादमें १६ और बड़ौदामें ६ हैं। कुल ५,६५,००० वर्गमील भूमिपर देशी राजाओंका आधिपत्य है।

भारतवर्षमें सन् १९२१ के गणनानुसार कुल ३१ करोड़ ५ लाख १० हजार ६ मनुष्य थे। इस पुस्तकमें ब्रिटिश-भारतके निवासियोंकेही सुख-दुखका दिग्दर्शन कराया जायगा। भारतवासियोंकी सम्पत्ति सब मिलाकर १९२१ ई० में ३० अरब रु० (अमेरिकाकी १८० अरब रुपये) की थी।

सन् १९०१ की मनुष्यगणनामें यहाँ १४७ भाषाओंका प्रचलन बताया गया था, परन्तु १९११ में इन्हीं भाषाओंकी संख्या २२० और १९२१ में २२२ कर दी गयी। किन्तु वस्तुतः देखा जाय तो यहाँ आठ-दस प्रधान भाषाओंमेंसे एक-न-एक भाषा प्रत्येक प्रान्तमें बोली और समझी जाती है (भाषाकी विभिन्नता दिखाकर शासक यह दिखाना चाहते हैं कि भारत स्वराज्यके योग्य नहीं है, इसलिए यह जान लेना भी आवश्यक है।)



ईष्ट इण्डिया कम्पनीसे (भारतकी) पूर्वावस्था

कई पत्तपाती पाश्चात्य आलोचकोंका कहना है कि अंग्रेजी शासनसे पूर्व भारतवर्ष बिलकुल असभ्य और जंगली था। इसलिए यहाँपर यह सिद्ध कर देना आवश्यक है कि वास्तवमें भारत असभ्य था या सभ्य, दरिद्र था या धनी, उद्योग-शून्य था या अनेक प्रकारके कला-कौशल-युक्त कार्योंके सम्पादनमें सर्वश्रेष्ठ था।

पिछले प्रकरणमें इस बातका उल्लेख किया जा चुका है कि सबसे प्राचीन वैदिककालमें ही भारत पूर्ण सभ्य, कला-कौशल-युक्त और राजनीतिमें विलत्तण हो चुका था, जब कि संसारकी अन्य समस्त जातियाँ असभ्य और जंगली थीं। अब यह देखना है कि उसके बाद भारतका अधःपतन हो गया अथवा वह उन्नति-शील बना रहा। भारतके प्रसिद्ध विद्वान् महात्मा अरविन्द घोषने आजसे कई वर्ष पहले अपने एक लेखमें लिखा था कि महाभारत युद्धके हजारों वर्ष पहलेसे ही भारतकी अवनति होने लगी थी, पर भगवान श्रीकृष्ण-ने अपनी राजनीतिज्ञतासे बहुत अंशोंमें उसे रोका। बाद मुसलमानी शासनकालमें फिर अवनति शुरू हुई। यद्यपि पहलेकी अपेत्ता भारतकी दशा यवन-राजत्व-कालमें बहुत कुछ बिगड़ गयी थी अवश्य, तथापि भारत उस बिगड़ी दशामें भी आजके पूर्ण उन्नतशील सभ्य कहे जानेवाले देशोंसे कहीं अच्छा था। ईसवी सन्‌के सात-आठ सौ वर्ष पहले सुपाराबन्दर, भड़ौंच और बैबिलोनियाके साथ हिन्दुस्तान-का व्यापारिक सम्बन्ध था और उक्त देशोंसे भारत खासी रकम पैदा करता था। डाक्टर साईस महाशयने तो प्रमाणोंद्वारा यहाँतक सिद्ध कर दिखाया है कि सन्-इसवीके तीन हजार वर्ष पहले भी

भारत और असीरियाके बीच व्यापारिक सम्बन्ध था। हिन्दुस्तानसे बना हुआ पक्का और कच्चा माल वहाँ जाता था और उसके बदलेमें भारत मूल्यवान धातुएँ सोना चाँदी आदि पाता था; यद्यपि कुछ माल असीरियाका भी भारतमें आता था पर बहुत कम। History of Commerce में प्रोफेसर 'डे' ने ईसासे साढ़े तीन हजार वर्ष पहले चीन और भारतसे अन्धाधुन्ध व्यापार होनेका उल्लेख किया है। प्रो० विल्किसनने लिखा है कि मिश्रके दो हजार वर्षके प्राचीन मकबरोंमें भारतीय नील और अन्यान्य वस्तुएँ अभीतक पायी जाती हैं। इन प्रमाणोंके अतिरिक्त और भी बहुतसे प्रमाण ऐसे मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि आजसे कई हजार वर्ष पहले भी भारतका अधःपतन नहीं हो गया था, वरन् उसने अपने व्यापार-कौशलसे देशको सम्पत्तिशाली बना रखा था। बौद्धग्रन्थोंमें भी सम्राट् अशोकके शासनकालमें भारतका व्यापार कायम रहनेका उल्लेख है।

भारतीय सभ्यताके सम्बन्धमें उन महाशयने २० फरवरी १८७४ ई० के डेली ट्रिब्यून, नामक पत्रमें लिखा था कि—"यदि हम पक्षपात-रहित होकर पूर्ण रीतिसे आजमाइश करें तो हमको मानना पड़ेगा कि भारतवर्षही सारे संसारके साहित्य, धर्म और सभ्यताका जन्मदाता है।" "काउन्ट जार्न्स जेर्ना" (Count Jorns Jerna) नामक लेखकने Theogony of the Hindus (हिन्दूके देवताओंकी वंशावली) नामकी पुस्तकमें लिखा है कि "हिन्दुस्थान सिर्फ हिन्दूधर्मकाही स्थान नहीं है, बल्कि वह संसारकी सभ्यताका आदि कोष है।" इस बातको प्रायः सभी इतिहास स्वीकार करते हैं कि दर्शन, विज्ञान और सभ्यता आदि पहले-पहल भारतसे यूनानियोंने सीखी थी, फिर यूनानसे उन सभोंका प्रचार सब देशोंमें हुआ था। रूसके नोटविच नामक यात्रीको तिब्बत के 'हीमिस'

नामक मठमें एक बहुत प्रचीन हस्तलिखित पाली-भाषामें ईसाकी जीवनी मिली थी। उसमें इस बातका उल्लेख है कि "ईसा इसराइलमें पैदा हुआ था। तेरह वर्षकी अवस्थामें वह अपने गरीब माबापसे नाराज होकर घरसे भाग गया और भारतमें आकर काशी, जगन्नाथपुरी आदि स्थानोंमें घूम-घूमकर आर्योंसे वेद पढ़ने लगा। बाद उसने पाली-भाषा सीखी और बौद्ध हो गया। फिर वह स्वदेश चला गया और एक नया धर्म चलानेका विचार करने लगा। इसी कारण उसे फाँसी दे दी गयी।" इससे मालूम होता है कि ईसामें ईसाई धर्म प्रचारका ज्ञान भारतमें ही विद्याध्ययन करनेसे हुआ था। भारतके सम्बन्धमें यूरोपके प्रसिद्ध परिडत मैक्समूलर महाशयने एक बार अपने भाषणमें कहा था कि "अगर कोई मुझसे पूछे कि वह कौनसा देश और किस जगह है, जहाँके मनुष्योंने इतनी उन्नति की हो कि वह अच्छे-अच्छे गुणोंको बढ़ा सका हो और मानव-जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली गूढ़ातिगूढ़ बातोंपर विचार कर चुका हो? तो मैं यही उत्तर दे सकूँगा कि वह देश भारतवर्ष है।" सुप्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता मि० थार्नटन्स (Thorntons) ने लिखा है कि "यूरोपमें सभ्यता फैलानेवाले यूनान और इटली-निवासी जिस समय कोरे जंगली अवस्थामें थे, उस समय भी भारत वैभव और धनका केन्द्रस्थान था। यहाँ चारों तरफ उद्योगधन्धोंकी भरमार थी और लोग रातदिन काम करनेमें निमग्न रहते थे।"

अब हम यह दिखाना चाहते हैं कि पहले किस तरह भारत धन-धान्यसे परिपूर्ण कला-कौशल-युक्त और गुणग्राही था। यदि हम देशके लुटेरोंका ही थोड़ासा दिग्दर्शन करा दें तो देशके धनका पता चल जायगा। महमूद गजनवीने सत्रह बार चढ़ाइयाँ केवल तीस वर्षके भीतर की थीं। केवल नगरकोटका मन्दिर लूटकर वह सात सौ मन स्वर्ण-मुद्रा, सात सौ मन सोने चाँदीके बर्त्तन, चालीस

मन सोना, दो हज़ार मन चाँदी और बीस मन जवाहरात अपने देश ले गया था। मथुरापुरीपर चढ़ाई करके वह छः सोनेकी प्रतिमाएँ और उनके शरीरपरके ग्यारह बहुमूल्य रत्न ले गया था। भारतीय शिल्पकारीकी कुशलताका पता सुराष्ट्र प्रायःद्वीपके दक्षिणमें स्थापित सोमनाथकी मूर्त्तिसे लगता है। जिस समय सन् १०२४ में महमूद गजनवीने इस मूर्त्तिपर आक्रमण किया था, उस समय वहाँके पुजारियोंको परास्त करनेके बाद उसने इस मूर्त्तिके तोड़नेका यत्न किया। परन्तु वाहरी भारतीय शिल्पकलाकी निपुणता! अनेक प्रकारके पाशविक बलका प्रयोग करनेपर भी महमूद उस मूर्त्तिको न तोड़ सका; वह क्या देखता है कि इस मन्दिरकी दीवारों और छप्पन खम्भोंपर नाना प्रकारके रत्न जड़े हुए हैं। सोनेकी जंजीरमें दीपक लटक रहा है। चालीस मनकी बनी हुई स्वर्ण-शृङ्खलामें एक बहुत बड़ा घण्टा बज रहा है। मन्दिरके बीचोबीच सोमनाथकी प्रतिमा निरवलम्ब खड़ी है। जब महमूद सब तरहसे यत्न करके हार गया और मूर्त्ति न टूटी, तब उसने अपने नजूमियोंसे उसके तोड़नेका उपाय पूछा; नजूमियोंने खूब सोचकर बतलाया कि इस मूर्त्तिके बनानेमें चुम्बककी सहायता ली गयी है। चुम्बकके अलग होनेपर प्रतिमा स्वतः भूमिशायी हो जायगी। फिर क्या था, मन्दिरकी एक दीवार तोड़ दी गयी। उस दीवारके टूटतेही प्रतिमा उस ओर जरासी झुक गयी। बाद महमूदने मन्दिरका कलश तुड़वाया। कलशके टूटते ही प्रतिमा जमीनपर गिरकर चूर-चूर हो गयी, जोकि आज भी अपनी याद दिलाकर भारतीयोंके हृदयको चूर-चूर कर देती है और सदा करती रहेगी। इस मन्दिरका अवशेष चिह्न, कुछ दरवाजे यहाँकी कारीगरीकी स्मृति जीवित रखनेके लिए सन् १८४२ में आगरा लाये गये, जो इस समय भी आगराके किलेमें मौजूद हैं। महमूदने जब सोमनाथकी मूर्त्ति तोड़ी, तब उसमेंसे अपार बहुमूल्य रत्नोंका

ढेर निकला; भारतसे इतना धन लूटकर महमूद ले गया था कि उसे देखकर वह पागलसा हो गया था। यही कारण था कि अपना मृत्युकाल समीप आया जानकर वह फूट-फूटकर रोने लगा और कहने लगा कि हाय! इस अपार धनको छोड़कर आज मैं इस असार संसारसे हमेशाके लिये कूच कर रहा हूँ। महाकवि गोस्वामी तुलसीदासने सच कहा है कि "यश अपयश रहि गयो रही नहिं केकयि रानी।"

पाँचवीं सदीके आरम्भमें फाहियान नामका एक चीनी यात्री भारतमें आया था। वह पटनामें कोई तीन वर्षतक रहा। सम्राट् अशोकके बनवाये हुए सात सौ वर्षके टूटे-फूटे राजमहलोंको देख कर उसे बड़ा ही दुःख हुआ। उसने अपने भ्रमण-वृत्तान्तमें लिखा है कि "अशोकने अवश्यही इस महलको देवताओंसे बनवाया होगा। इसकी ऊँची-ऊँची दीवारें, भव्य फाटक और चौखट बनाना मनुष्यका काम नहीं।" सन् १२०६ में नादिरशाह और १३९८ में तैमूरलङ्गका हमला भी उल्लेखनीय है। किन्तु ये दोनों लुटेरे दिल्लीसे आगे नहीं बढ़े थे। दोके दोनों ही बहुतसा माल भारतसे ले गये थे।

किन्तु भारतकी इतनी सम्पत्ति लुट जानेपर भी इसकी दशा जरा भी शोचनीय नहीं हुई थी। कारण यह कि उस समय भारतका धन तो लूटा गया था, पर आजकलकी भाँति उसके उद्योग-धन्धेका सर्वनाश नहीं किया गया था। इसलिए भारत अपना इतना धन लुटाकर भी अपने उद्योग-धन्धेकी बदौलत समृद्धिशाली बना हुआ था। उस समय गुणके ग्राहकोंकी भी कमी नहीं थी। रज़्मनामा नामकी (चित्र) पुस्तकको अकबरने छः लाख रुपयेमें खरीदा था। जहाँगीरके समयमें तो चित्रकलाने अकबरके जमानेसे भी अधिक उन्नति की थी। कलकत्ताकी इम्पीरियल लाइब्रेरीमें फारसीकी

एक हस्तलिखित पुस्तक है; उसमें ताजमहल बनानेवाले शिल्पियोंके मासिक वेतनका विवरण इस प्रकार दिया गया है:—प्रथम श्रेणीके शिल्पी एक हजार, द्वितीय श्रेणीके आठ सौ, तृतीय श्रेणीके चार सौ और चतुर्थ श्रेणीके दो सौ रुपया मासिक पाते थे। एकबार ढाकेकी बनी मलमल औरङ्गजेबकी लड़कीने पहना था। तब औरङ्गजेब उसपर नाराज हुआ था। कारण यह था कि वह मलमल पहननेसे उसके सारे अङ्ग दिखायी पड़ते थे। औरङ्गजेबके नाराज होनेपर पुत्रीने कहा—"कई तह करके तो मैं इसे पहनती हूँ, अब इसपर भी यदि इसका वारीकपन दूर न हो तो मेरा क्या कसूर है?" एकबार डेढ़ सौ हाथ लम्बा सूत दिल्ली दरबारमें भेजा गया था, जिसका वजन एक रत्ती था। ढाकेके रेजिडेण्टने सन् १८४६ में एक पुस्तक लिखी थी। उसमें आध सेर रूईसे बने हुए ढाई सौ मील लम्बे सूतका वर्णन है। भारतकी कारीगरोंकी हद हो गयी। यहाँ तो प्रसंगानुसार उद्योग-धन्धेके जीवित रहनेके प्रमाणस्वरूप दो-एक बातें लिखी गयी हैं, आगे चलकर इनका विशेष रूपसे दिग्दर्शन कराया जायगा।

जहाँगीरने अपने जीवन-वृत्तान्तमें लिखा है कि जब-जब प्रधान सेनापति मानसिंह मेरे पिता अकबरसे भेंट करने जाते थे तब-तब उनको अठारह लाख रुपयोंकी भेंट देनी पड़ती थी। मानसिंहको एक वर्षमें कम-से-कम दो बार अवश्य मुलाकात करनी पड़ती थी। जहाँगीरके रनिवासका और उसका नौकराना खर्च सुनने लायक है। इस मदमें उसे पन्द्रह करोड़ बारह लाख रुपये प्रतिवर्ष खर्च करने पड़ते थे। नूरजहाँके साथ ब्याह करनेपर उसे केवल जवाहरात और चालीस दाने मोतीका एक हार खरीदनेके लिए सात करोड़ बीस लाख रुपये देने पड़े थे। जहाँगीरके मृत भाई दानियालका सामान जब दक्षिणसे आगरा लाया गया तब

उसकी कीमतका अन्दाजा लगाना कठिन हो गया था। केवल जवाहरोंका मूल्य पैंतालीस करोड़ रुपये कूता गया था। एक बार जहाँगीरके पिता अकबरने अपने खजानेका अन्दाजा लगानेकी इच्छासे खिलजीखाँको अपने सरकारी खजाने के सिर्फ सोनेका हिसाब तैयार करनेकी आज्ञा दी थी। उसका विवरण जहाँगीरने अपनी जीवनीमें लिखा है कि—"खिलजीखाँने आगराके खजानेका हिसाब तैयार करनेके लिए शहरके व्यापारियोंसे चार सौ तराजूके जोड़े मँगवाये। लगातार पाँच महीनेतक एक हजार आदमी सिक्के और बहुमूल्य धातु तौलनेमें लगे रहे। तब मेरे पिता अकबरने पूछा कि अभीतक कितने मन सोनेका हिसाब किया जा चुका है। उत्तर मिला कि यद्यपि एक हजार आदमी पूरे पाँच महीनेतक लगातार रातदिन केवल एक खजानेका माल तौलनेमें लगे रहे, पर अभीतक वह तौला नहीं जा सका है। इसे सुनकर मेरे पिताने कहा कि बस रहने दो, अब अधिक परेशान होनेकी कोई जरूरत नहीं। सब नियमित स्थानपर रख मुहर ताला लगाकर बन्द कर दो।" ध्यान रहे कि यह केवल एक शहरकी बात है। यह धन केवल तालेके भीतर ही बन्द रहता था, सो बात नहीं है,—समय-समयपर आवश्यकतानुसार उससे प्रजाकी रक्षा भी की जाती थी। कितना धन तो प्रजा अपनी कारीगरीकी अद्भुत कुशलता दिखाकर ही बादशाहोंसे लिया करती थी; कितना ही पारितोषिकमें मिला करता था! फिर उसे आवश्यकता ही क्यों पड़ने लगी।

पहले अन्नादिकी भी खूब अभिवृद्धि थी। आजकलकी भाँति प्रजा भूखों नहीं मरती थी; अधिक पहलेकी बात जाने दीजिये। आजसे केवल तीन सौ वर्ष पहले अकबर बादशाहके शासनकालके खाद्य पदार्थोंका भाव देखिये—

गेहूँ	१ रुपयेका	१३५ सेर
जौ	,,	२०२ सेर
चावल	,,	८० सेर
चीनी	,,	२६। सेर
घी	,,	१५। सेर
तेल	,,	६४ सेर

हाय ! वह समय कहाँ प्रच्छन्न हो गया। पाठक ऊपरकी तालिकासे देख सकते हैं कि उस समय एक आदमीको एक महीनेके लिए भोजनका सामान खरीदनेमें साढ़े दस आने काफी थे। किन्तु समयके फेरसे आज वे बातें कहानी सी प्रतीत हो रही हैं। पाठकोंको अविश्वास न करना चाहिये। आज भी हमलोगोंके कितने ही बड़े बूढ़े ऐसे मौजूद हैं जिन्होंने रुपयेका चार सेर घी और तीस सेर गेहूँ खरीदे और बेंचे हैं। भारतमें तो सदा ही घी-दूधकी नदियाँ बहा करती थीं, पर इस अंग्रेजी शासनकी कूट-नीतिसे ही अब वे बातें स्वप्नवत् हो गयीं और आज एक रुपयेका छः सेर गेहूँ तथा ढाई रुपया सेर घी बिकने लगा। जिस समय ईष्ट इण्डिया कम्पनीने भारतमें व्यापार करना शुरू किया था, उस समय भारतकी दशा कैसी थी, उसे अंग्रेजोंके ही कहे हुए शब्दोंमें सुनिये। भारतमें ब्रिटिश शासनको प्रथम स्थापित करनेवाले लार्ड क्लाइव मुर्शिदाबादके वैभवका वर्णन करते हुए लिखते हैं:—

"This city is as extensive, populous and rich as the city of London, with this difference that there are individuals in the first possessing infinitly greater property than in the last city."

अर्थात् "यह शहर लन्दन शहरके समान विशाल, आबाद और धन-धान्यसे परिपूर्ण है। अन्तर केवल इतना ही है कि इन दोनोंमें

पहले शहर (मुर्शिदाबाद) के लोग दूसरे शहर (लन्दन) के लोगोंकी अपेक्षा बहुत अधिक धनी हैं।" उस समय भारतमें कितनी ईमानदारी और सच्चाई थी उसका वर्णन मि० हावेलने "Tract of India" नामक लेखमें इस प्रकार लिखा है:—

"If a bag of money or valuables is lost in this district, the man who finds hangs it on a tree and gives notice to the nearest guard."

अर्थात् "इस जिलेमें यदि किसी आदमीको रुपयोंकी अथवा अन्य बहुमूल्य वस्तुओंकी थैली मिल जाती है, तो वह उसे किसी पेड़पर लटका देता है और उसकी सूचना निकटवर्त्ती पहरा देनेवालेको दे देता है।" भारतकी सभ्यताके विषयमें मि० एम० लुई जेकोलियर महाशय लिखते हैं:—

"Soil of ancient India. Cradle of humanity hail, hail, vernable and efficient nurse whom centuries of brutal invasions have not yet buried under the dust of oblivion. Hail. fatherland of faith, of love, of poetry and science, may we hail a revival of thy past in our western future."

अर्थात् "ऐ प्राचीन भारतखण्डकी भूमि, ऐ मानव-जातिकी पालिका, ऐ पूजनीया एवं निष्णात् पोषिका, नमस्कार है! नमस्कार है!! तुम्हें शताब्दियोंके पाशविक अत्याचार आजतक नष्ट न कर सके! स्वागत! ऐ श्रद्धा, प्रेम, कला और विज्ञानकी जन्मदात्री, नमस्कार! हमलोग अपने पाश्चात्य देशोंमें तुम्हारे भूतकालका समय उपस्थित करें।" देखा पाठक, लियर महाशय प्रार्थना कर रहे हैं कि भारतवर्षके समान उनका भी देश हो। किन्तु समयके फेरसे आज अधिकांश अंग्रेज भारतको

असभ्य कहते हैं। जिस देशका साहित्य संसार-श्रेष्ठ हो, इतिहास अद्वितीय हो तथा वीरतामें भी जो किसी भी देशसे पीछे न हो, उसे जंगली या असभ्य कहना अंग्रेजोंका ही काम है। भला इससे बढ़कर उनकी सुशिक्षाका परिचायक और क्या हो सकता है? क्यों न हो, दूसरोंको नीचा दिखाना तथा हँसी उड़ाना तो अंग्रेजोंका कामही है। इङ्गलैंडमें सड़कसे जाते समय स्वामी विवेकानन्दका गेरुआ साफा एक अङ्गरेजने अपनी छड़ीसे नीचे गिरा दिया और हँसने लगा। स्वामीजीने गम्भीरताके साथ उस छिछोरे अङ्गरेजसे कहा, "भारतमें रहकर मैं इङ्गलैंडकी सभ्यताका हाल सुना करता था, यहाँ आकर आज उसकी यह पहली सभ्यता देखी।" कहनेका अभिप्राय यह कि ये लोग दूसरोंका दोष दिखलानेमें ही अपनी बुद्धि खर्च करते हैं। इसीसे भारतको दलित करके उसकी खिल्ली उड़ानेकी अनेक चेष्टायें की जा रही हैं। यदि ऐसा न होता तो मिस मेयो 'मदर इण्डिया' जैसी घृणित और झूठी पुस्तक लिखनेका दुस्साहस कभी न करती। अब आगे यह दिखाया जायगा कि हमारे देशका क्यों अधःपतन हुआ।

भारतके नाशका कारण

भारतकी ईष्ट इरिडया कम्पनीसे पहलेकी अवस्थाका संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया जा चुका। अब हम यह दिखाना चाहते हैं कि भारतवर्ष जैसे समृद्धिशाली और सुखी देशका इतना सर्वनाश कैसे हुआ; इसकी इतनी अधोगति कैसे हुई। किसी कविने ठीक कहा है—"चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च।"

हमारी धारणा तो यह है कि भारतकी काया-पलटका मूल कारण धनकी लालसा है। क्योंकि यदि इतिहास उठाकर देखा जाय तो यही पता चलता है कि यदि दारा, सिकन्दर, शकों, यूनानियों और तुर्कोंने सहस्रों मीलकी यात्रा तय करके भारत पर हमले किये, तो धनके लिए; महमूदने चढ़ाइयाँ कीं तो धनके लिए; मुहम्मदगोरीने एक भारी तूफ़ान लाकर उत्तर भारतके राजाओंको सिंहासनसे उड़ा दिया, तो धनके लिए; लँगड़ा तैमूरलंग बाजकी भाँति झपटा, तो धनके लिए; अहमदशाह और नादिरशाहने धूम मचायी, तो धनके लिए; और यदि मुगलों, पुर्तगालियों, फ्रांसीसियों और अङ्गरेजोंने भारतमें खूनखराबी और जूतेकी बाजार गर्म की तो केवल धनहीके लिए। इसलिए यह मानना पड़ेगा कि भारतकी बर्बादीका मूल कारण धनकी लालसाही है। यदि धनकी लालसा न होती, तो यह निर्दयी और स्वार्थी अंग्रेज-जाति भारतमें काहेको आती और काहेको भारतका सर्वनाश होता।

यह बात तो शायद साधारण इतिहासके जाननेवाले भी जानते होंगे कि सोलहवीं शताब्दीमें भारतको सोनेकी खान जानकर व्यापार करनेके लिए पोर्चुगीज, डच, फ्रांसीसी और अङ्गरेजलोग

पहले-पहल यहाँ आये थे। अङ्गरेजोंका पहला व्यापारीय समुदाय जो भारतमें आया था वह 'ईष्ट इण्डिया कम्पनी' के नामसे प्रख्यात हुआ। भारतीय शासकोंने विदेशी समझकर अङ्गरेजोंपर दयालुता दिखायी, और अङ्गरेजलोग कूटनीतिसे काम लेने लगे। शुरूमें इनकी पूँजी सतहत्तर हजार पौण्ड अर्थात् उस समयमें सात लाख रुपयेकी थी। कुछ दिनोंतक बम्बई, सूरत, मद्रास आदि स्थानोंमें व्यापार करनेके बाद सन् १६६० में कम्पनीने कलकत्तामें जमीन खरीदकर वहींपर अपने व्यापारका अड्डा जमाया। अन्तमें सन् १७५७ की पलासीकी लड़ाई जीतनेके बाद अङ्गरेजोंके राज्यका खम्भा जमा। इस खम्भेके जमनेका कारण भारतकी आपसकी कलह और विदेशी शासनके दुष्परिणामोंकी अनभिज्ञता है। व्यापारी जाति होनेके कारण धन कमाना ही इन लोगोंका एकमात्र उद्देश्य था। किन्तु दूसरी जातिके व्यापार करते हुए व्यापारी जातिका मनोवांछित लाभ कभी नहीं हो सकता, इसलिए इन्होंने सबसे पहले भारतीय व्यापारको नष्ट करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया और सर टामस मनरोकी कही हुई भविष्यवाणी चरितार्थ कर दिखायी। आजसे बहुत पहले सर टाम्स मनरोंने कहा था कि,—

The consequence of the conquest of India by British arms would be in place of raising to debase the whole people." —Sir Thomas Munro.

सारांश यह है कि "अङ्गरेजोंके भारत-विजयसे भारतवासियोंकी उन्नतिके बदले अवनति ही होगी।"

इस बातको प्रायः सभी प्रसिद्ध यूरोपीय विद्वानोंने स्वीकार किया है कि भारतका सर्वनाश अङ्गरेजी शासनसे ही हुआ है। भूतपूर्व गवर्नर जेनरल सर जान शोरने कहा था—

"There is reason to conclude that the benifits

are more than counterbalanced by evils inseparable from the system of a remote foreign dominion."

"अङ्गरेजोंके शासनसे भारतका उपकारके बदले अपकार ही विशेष हुआ है। सिद्धान्त किया जा सकता है कि विदेशी राजशक्तिके परिणामसे इस तरहका अपकार होना अनिवार्य है।" 'एशिया ऐण्ड यूरोप' नामक ग्रन्थमें मि० मेरिडिथ टौनसेण्डने लिखा है:—

It is the active classes who have to be considered and to them our rule is not, and cannot be a rule without prodigious drawbacks......the greatest one of all is the loss of the interestingness of life. It would be hard to explain to average Englishman how interesting Indian life must have been before our advent; How completely open was every career to the bold, the enterprising or the ambitious......life was full of dramatic changes. I firmly believe that to the immense majority of the active classes of India the old time was happy time."

अर्थात् "भारतके व्यवसायी जनसाधारणके लिए हमलोगोंका शासन कभी दोष-रहित नहीं हो सकता। हमारे शासनसे ये दोष कभी नहीं दूर हो सकते। हमारे शासनके और दोषोमें सबसे बड़ा दोष यह है कि अङ्गरेजी राज्यसे भारतवासियोंका जीवन आनन्द-रहित हो गया। हमारे आनेके पहले भारतीयोंका जीवन कैसा मनोहर और विचित्रतापूर्ण था। साहसी, उत्साही और उच्चाकांक्षी पुरुषोंके लिए सब कामोंमें कृतकार्य होना कैसा आसान था, यह साधारण श्रेणीके अङ्गरेजोंको समझाना मुश्किल है। (यहाँ ग्रन्थ-

२

कारने शिवाजी, रणजीतसिंह आदिके अभ्युदयका उल्लेख किया है) भारतीयोंके जीवनमें उस समय नाटकीय परदोंके सदृश उलट-फेर होते रहते थे। मुझे पूर्ण विश्वास है कि अङ्गरेजोंके आनेके पहले उद्योगी भारतवासी बड़े ही आनन्दके साथ जीवन बिताते थे।"

सर हेनरी काटनने 'न्यू इण्डिया' (New India) नामकी पुस्तकमें लिखा है कि "भारतकी भूमिसे पैदा होनेवाला धन अमेरिकासे भी अधिक है।......तथापि भारतसे बढ़कर दरिद्र देश संसारमें कहीं नहीं है।" क्यों ऐसा हुआ? इसका कारण महामति विलियम डिगवी सी० आई० ई० ने इस प्रकार बताया है:—

"Because among other times we and destroyed native industries, and besides, have taken from India since 1834-5 (according to a calculation made by that sane and moderate Journal, the Economist, in 1898.) more than ten thousand millions of Rupees.

India on the other hand, has entirely lost her much more than ten thousand millions; this with interest and of circulated in the ordinary way among her people, at 5 p. c. interest value only, would, by this time have been of the value at least of fifty thousand millions of Rupees.

अर्थात् "भारतकी दरिद्रताके अन्य कारणोंमें दो प्रधान कारण ये हैं। पहला—भारतके उद्योग-धन्धोंका नाश और दूसरा—भारतका धन खींच ले जाना। हम (अङ्गरेजों) ने भारतके उद्योग-धन्धेका नाश कर दिया है। १८३४-३५ से सन् १८९८ ई० तक ('इकानोमिस्ट' पत्रके लेखानुसार) हमने भारतसे १० अरब रुपये

हरण किये हैं। ये रुपये यदि भारतमें होते और पाँच रुपये सैकड़े सूदपर किसानोंको कर्ज दिये गये होते, तो आजतक इनकी संख्या कम-से-कम पचास अरब हुई होती।" अब जरा सन् १८४० ई० के दो अङ्गरेजोंकी बातचीतका सारांश भी सुनिये। *

माण्टगोमरी मार्टिन—"हमलोगोंने गत २५ वर्षोंसे भारतीयोंको अपना बनाया हुआ माल खरीदनेके लिए विवश किया है। हमलोगोंके ऊनी कपड़ोंपर किसी प्रकारका भी कर निर्द्धारित नहीं किया जाता, हमलोगोंके सूती कपड़ोंपर केवल ढाई प्रति सैकड़ा कर निश्चित किया गया है। इधर हमलोगोंने भारतीय व्यवसाय रोकनेके लिए उन लोगोंके मालपर दससे लेकर एक हजारतक प्रति सैकड़ा कर लगा दिया है। अर्थात् १००) के मालपर भारतीयोंसे दससे लेकर हजार रुपयेतक कर रूपमें वसूल किये जाते हैं। १००) का माल और एक हजार कर, गजब हो गया! भारतका सर्वनाश करनेके लिए ही यह भयंकर कर लगाया गया है। भारतीय व्यवसायके सूरत, ढाका और मुर्शिदाबाद प्रभृति केन्द्र-स्थानोंका जिस प्रकार नाश और अधःपतन हुआ है, उसको स्मरण करनेसे बड़ाही दुःख होता है। मेरी समझमें व्यापारिक दृष्टिसे भी इस विषयमें न्याय नहीं किया गया।"

ब्राकलहर्स्ट—"इस देशका कल्याण किसी-न-किसी देशके जुलाहोंका अधःपतन हुए बिना कैसे हो सकता था। भारतीय जुलाहोंका अधःपतन हमारे लाभके लिए ही हुआ है। क्या अब आप इस देशका गला घोंटकर भारतका पुनरुत्थान करना चाहते हैं?"

मार्टिन—"मैं उसका पुनरुत्थान नहीं करना चाहता। मैं केवल

---

* श्रीयुत महादेव एच० देसाईके Bombay Chronicle में प्रकाशित How India's industry was ruined" शीर्षक लेखके आधारपर।

भारतपर लगातार किये जानेवाले अत्याचारोंको रोकना चाहता हूँ ।.........यदि भारतके साथ अन्याय करके अपने देशके व्यापारको उत्तेजना दी जाती है, तो मेरा कहना इतना ही है कि यह सर्वथा अनुचित और निन्दनीय है। परिणामकी जरा भी-परवाह न करके न्यायानुकूल काम करना ही उचित है। इङ्गलैंडने जिस देशपर विजय प्राप्त की है, उस देशको अपने या अपनी जातिके लाभके लिए नष्ट कर डालनेका कोई भी अधिकार उसे नहीं है।"

ब्राकलहर्स्ट—"सन् १८३३ में, जिस समय भारत इङ्गलैंडके अधीन हुआ, उसी समय उसका व्यवसाय नष्ट कर डाला गया। अतः अब उस बातपर विचार करना निष्प्रयोजन है। जो कुछ होना था, हो गया। यह बात तो इस समय स्पष्ट ही प्रकट हो रही है कि भारतवर्ष व्यवसायी होनेकी अपेक्षा अधिक कृषि-प्रिय है। जो लोग पहले व्यवसाय करते थे, वे अब कृषिके उद्योगमें लग गये हैं। यदि इस देश (इङ्गलैंड) में व्यवसाय बन्द कर दिया जाय तो क्या आप सोचते हैं कि यहाँ भी लोग कृषि-कर्म करने लगेंगे ?"

मार्टिन—"मैं इस बातको माननेके लिए बिलकुल तैयार नहीं कि भारत कृषि-प्रधान देश है। भारत जितना कृषि-प्रिय देश है, उतना ही व्यवसाय-प्रिय भी। जो लोग उसे कृषि-प्रधान देश बनानेकी चेष्टा करेंगे, वे मानो उसकी सभ्यताको ही कुचलनेका प्रयत्न करेंगे। मैं नहीं चाहता कि भारतवर्ष इङ्गलैंडके लिए उपजाऊ खेत बन जाय। वह व्यवसायी देश है। संसारका कोई भी देश उसको इस बातमें ईमानदारीसे नीचा नहीं दिखा सका है। इस समय मैं उसकी ढाकाकी मलमल और काश्मीरके शालोंकी बात नहीं कर रहा हूँ। उसने अनेक तरहकी ऐसी-ऐसी अद्भुत वस्तुएँ बनायी हैं, जिनकी समानता संसारका कोई भी

देश नहीं कर सका है। ऐसे देशको कृषक बनाना घोर अन्याय नहीं तो और क्या है ?'

ऊपरकी बातोंसे पाठक स्वतः समझ गये होंगे कि भारतका सर्वनाश करनेवाली अङ्गरेजोंकी अमानुषिकताके सिवा और कुछ नहीं है। किन्तु इतनेपर भी बहुतसे पक्षपाती अङ्गरेज कहते हैं कि "हमलोगोंने भारतका बहुत उपकार किया है। यदि अभीतक उसका सुधार नहीं हुआ हो तो हमारा क्या दोष ?" कैसे आश्चर्यकी बात है कि राजाके सुधारसे यदि प्रजा न सुधरे, तो राजाका कोई दोष ही नहीं। सर टाम्स मनरोने बिलकुल ही ठीक मन्तव्य प्रकाश किया है—

"We profess to seek their improvement, but propose means the most adverse to success".

अर्थात् "हम (अङ्गरेज) मुँहसे भारतवासियोंके उन्नतशील होनेकी बातें करते हैं, पर काममें ऐसे उपाय लाते हैं जो इस इच्छाके सफल होनेके बिलकुल ही विरुद्ध होते हैं।"

यदि हमारे देशका उद्योग-धन्धा नष्ट न किया गया होता तो हमारी इतनी अवनति कदापि न हुई होती। प्रातःस्मरणीय राष्ट्र-सूत्रधार भारतीय हृदय-सम्राट् लोकमान्य पं० बालगंगाधर तिलक महाराजने एकबार अपने भाषणमें कहा भी था कि "हमारे देशका सर्वनाश इरादतन जान-बूझकर किया गया है। इसलिए अङ्गरेज-व्यक्ति-विशेषको छोड़कर और कोई भी नाशका असली कारण नहीं कहा जा सकता।" सर हेनरी काटनने कहा है कि "हमारे शासनसे इस देशका अति सूक्ष्म और सुसंस्कृत प्राच्य शिल्प नष्ट हो गया है। समाजमेंसे शिल्पकी विद्यातक लोप हो गयी है और उसके फलसे असंख्य ताँतियोंकी दशा बहुत बिगड़ गयी है। जिस बुद्धिने उत्तर भारतमें नहर और आगरेके ताजमहलमें अपूर्व

कारीगरीका परिचय दिया था, हमारे (अङ्गरेजोंके) दोषसे उस बुद्धिका लोप हो गया। कोई भी स्वदेशभक्त भारतवासी इस दृश्यसे प्रसन्न नहीं हो सकता।" सूक्ष्मदर्शी मेरिडिथ टौनसेंड महोदयने भी 'एशिया और यूरोप' नामक ग्रन्थमें इस विषयका उल्लेख किया है:—

One of these (prodigious drawbacks of British rule) of which they are fully consicence, is the gradual decay of much of which they were proved, the slow death...of Indian culture, Indian military spirit-Architecture, Engineering, Literary skill are all perishing out, so perishing that Anglo-Indians donbt whether Indians have the capacity to be architects, though they Built Benares or engineers, though they dug the artificial Lakes of Tanjore or poets, though the people sit for hours or days listening to raphsodists as they recite poems, which move them as Tennison certrainly does not our common people.

अर्थात् "अङ्गरेजी शासनसे भारतके जितने अनिष्ट हुए हैं, उनमें भारतवासियोंसे गौरव, शिल्पज्ञान और वीरत्वका लोप हो जाना उल्लेख योग्य है। स्थापत्य-विद्या, इञ्जीनियरिंग, साहित्य-रचना-कौशल सब धीरे-धीरे लोप हो रहे हैं। आजकल यह हालत हो गयी है कि यद्यपि भारतके ही कारीगरोंने काशीके समान सुन्दर नगरी बसायी है, तंजोर के कृत्रिम सरोवर खोदे हैं और भारतीय कवियोंने ऐसे काव्य रचे हैं, जिन्हें आज भी बहुत देर और बहुत दिनतक पढ़ने और सुननेपर भी लोग ऊबते नहीं, तथा जिन्होंने—

इङ्गलैंडमें कवि टेनिसन अपनी रचनासे लोगोंको जितना मुग्ध कर सके हैं—उससे अपने देशवासियोंको कहीं अधिक मुग्ध किया है, तथापि भारतवासी अङ्गरेजोंको यह विश्वास नहीं होता कि यह सब बातें भारतवासी सीख सकते हैं।"

पर वास्तवमें यह बात नहीं है। लोग यह अच्छी तरह जानते हैं कि अङ्गरेजोंकी अपेक्षा भारतीय अधिक प्रतिभावान और कुशाग्र-बुद्धि होते हैं। हाँ, स्वार्थ-साधनेके लिए अँगरेज लोग भले ही ऊपरसे कुछ और ही कहा करें। अस्तु, नाशका कारण तो बताया जा चुका। अब आगे कारीगरीके नाशपर विचार किया जायगा।



उद्योग-धन्धेका सर्वनाश

कुछ लोगोंकी धारणा है कि विलायतमें भाफकी शक्तिसे चलनेवाली कलोंके प्रचारसे ही भारतकी कारीगरी नष्ट हुई है, क्योंकि भाफकी कलोंसे बने हुए मालके सामने भारतीयोंके हाथकी कारीगरी फीकी पड़ गयी, इसीलिए भारतीय कारीगरोंने हाथसे माल बनाना बन्द कर दिया। किन्तु जो लोग ऐसा समझते हैं वे लोग देशकी कारीगरीके नष्ट होनेका सच्चा इतिहास नहीं जानते। हमारे देशकी कारीगरीपर वज्रपात होनेका दूसरा ही कारण है।

असलमें भारतीय कारीगरीके नष्ट होनेका कारण अँगरेजोंका अत्याचार और अत्यधिक स्वार्थपरता है। यहाँकी कारीगरीको धूलमें मिलानेके लिए अँगरेजोंने जिन-जिन गैरकानूनी और हृदय-द्रावक उपायोंसे काम लिये उन्हें स्मरण कर छाती दहल उठती है। यदि ये लोग भारतके साथ अमानुषिक बर्त्ताव न करते तो भारतकी कारीगरीके सामने विलायतकी कलोंका जन्म भी न हुआ होता। सुप्रसिद्ध इतिहास-लेखक मि० विल्सनने "Mill's History of British India" में लिखा है—

"The cotton and silk goods of India up to the period (1813 A. D.) could be sold for a profit in the British market at a price 50 to 60 percent lower than those fabricated in England. It consequently become necessary to protect the latter by duties of 70 and 80 percent on their value or by positive prohibition. Had this not been the

case, had not such prohibitory duties and decrees existed, the mills of Paisley and Manchester would have been stopped in their outset, and could scarcely have been again set in motion, even by power of steam. They were created by the sacrifice of the Indian manufacture. Had India been independent she would have ritaliated, would have imposed prohibitive duties upon British goods and would thus have preserved her own productive industry from annihilation. This act of self-defence was not permitted to her; she was at the mercy of the stranger. British goods were forced upon her without paying any duty and the foreign manufacturer employed the arm of political injustice to keep down and ultimately strangle a competitor with whom he could not have contented on equal terms."

इसका सारांश यह है कि "हिन्दुस्तानका सूती और रेशमी माल (सन् १८१३ तक) ब्रिटेनके बाजारोंमें इङ्गलैंडके बने हुए मालके मुकाबलेमें ५० या ६० प्रति सैकड़ा कम दामपर बेचा जा सकता था और इसीलिए विलायती मालकी रक्षाके लिए ७० से ८० तक प्रति सैकड़े भारतके मालपर कर लगाना आवश्यक प्रतीत हुआ। यदि ऐसा न किया जाता और भारतीय मालके रोकनेके लिए यह कर न लगाया जाता तो पेसली और मैनचेष्टरके कारखाने प्रारम्भही-से बन्द हो गये होते और भाफकी शक्तिसे भी शायद ही फिर चले

होते। भारतकी कारीगरीका नाश करके ही भाफकी शक्तिसे काम करनेवाले कारखाने खोले गये हैं या जिलाये गये हैं। यदि भारत स्वतंत्र होता, तो वह इसका बदला चुकाता और ब्रिटिश मालके रोकनेके लिए वह भी कर लगाता तथा इस तरह अपने उद्योग-धन्धोंको नाश होनेसे बचा लेता। भारतको आत्मरक्षाका अवसर बिलकुल ही नहीं दिया गया। वह विदेशियोंकी दयाका भिखारी था। ब्रिटिश माल बिना किसी प्रकारके करके उसपर लादा गया और विदेशी कारीगरोंने राजनीतिक अन्यायके शस्त्रका अवलम्बन कर भारतके उद्योग-धन्धेको नीचे पटक दिया। अन्ततः उसकी बराबरीमें खड़ा न हो सकनेके कारण भारतकी कारीगरीका गला घोंटा गया।"

ईष्ट इण्डिया कम्पनीने क़रीब सौ वर्षतक सूरत, बम्बई, मद्रास आदि स्थानोंमें व्यापार करके १६६० में कलकत्तामें जमीन खरीद-कर व्यापारी अड्डा जमानेके बाद भारतवासियोंको अपना जैसा रूप दिखाया था, उसका वर्णन पीछे किया जा चुका है। अँगरेज व्यापारी धन कमानेके लिए शत्रु-मित्र सबके साथ बड़ी-बड़ी बदमाशियाँ करते थे। उस समय मुगल बादशाह औरङ्गजेबसे इनकी नीचता छिपी न रही। उसने क्रोधमें आकर इन विदेशी लुटेरे व्यापारियोंको देशसे निकाल बाहर करनेकी आज्ञा दी। आज्ञा होते ही अँगरेजलोग खदेड़े गये और उनके नौकर जेलमें भरे गये, मछलीपट्टम और विजगापट्टम आदिकी व्यपारी कोठियाँ अँगरेजोंसे छीन ली गयीं। अन्तमें बहुत गिड़गिड़ाकर (most object) डेढ़ लाख रुपये जुर्माना देनेपर उन्हें छुटकारा मिला। औरंगजेबने समझा कि अँगरेजलोग अब काफी हानि सह चुके हैं, अतः अब वे सिर ऊँचा नहीं कर सकेंगे। इस तरह औरङ्गजेबकी उदारतासे अँगरेजोंको फिर व्यापार करनेकी आज्ञा मिली। पश्चात् औरङ्गजेबके पोतेसे अँगरेजोंने अनेक उपायोंसे

इस देशमें वेरोकटोक व्यापार करनेका अधिकार प्राप्त कर लिया। इनके अब मालकी आमदनी-रफ्तनी विना महसूल दिये ही बंगालके अनेक स्थानोंमें होने लगी। कम्पनीके आदमी बादशाहकी सनद और कम्पनीके नामकी दोहाई देकर किसी-किसी आदमीके हाथ विना महसूल दिये व्यापार करनेका परवाना बेचकर अपना पेट भरने लगे। इससे देशके लोगोंके स्वतन्त्र व्यवसायमें धक्का पहुँचने लगा। बंगालके नव्वाब भी उचित महसूल पानेसे हाथ धोने लगे। इस तरहसे अँगरेजोंकी भलाई करनेमें बंगालके सरकारी खजाने और देशी रोजगारियोंकी क्षति होनी आरम्भ हुई।

पलासी-युद्धके बाद अँगरेजोंकी शक्ति बढ़ने लगी। अँगरेजोंने पहले मीरजाफरको नव्वाब बनाया। इसके उपलक्षमें मीरजाफरने १७ लाख पौण्ड स्टर्लिङ्ग नकद दिये थे। पीछे अपना काम सिद्ध करनेके लिए अँगरेजोंने उसे गद्दीसे उतार दिया और मीरकासिम-पर विशेष कृपा करके उसीपर नव्वाबी मुकुट रक्खा। नामके लिए तो नव्वाब था मीरकासिम, पर सब कामोंके कर्त्ता-धर्ता-विधाता जो कुछ समझिये सब अँगरेज ही थे। किन्तु अधिक दिनोंतक देशपर अङ्गरेजोंका घोर यथेच्छाचार मीरकासिम सहन नहीं कर सका। निर्धन प्रजाका दुःख दूर करनेके कारण उसे अङ्गरेजोंकी क्रोधाग्निमें भस्म होना पड़ा। बाद फिर मीरजाफर गद्दीपर बिठाया गया। फिर क्या था, लोगोंका सर्वस्व छीन लेना ही राज्य करनेका मूलमंत्र समझ अङ्गरेजलोग बंगालियोंको इस प्रकार सताने लगे, जिसका कोई हद-हिसाब नहीं। सिराजुद्दौलाने इनको मनमाना काम करनेसे रोका। चालाक अङ्गरेजोंने उस समयके कई अदूरदर्शी कुटिल-नीति-परायण देशी लोगोंकी सहायतासे सिराजुद्दौलाको गद्दीसे उतारकर तथा मरवाकर अपने वेरोकटोक व्यापारको बढ़ानेका मार्ग निष्कंटक कर लिया। उसी समय किसी सहृदय लेखकने कहा

था—"जिस समय अभागे नव्वाब सिराजुद्दौलाने राज्य खोकर फकीरके वेशमें राज्य छोड़ा, उसी दिनसे भारतके लूटनेका काम प्रारम्भ हुआ।"

मीरजाफर, कई अँगरेजों सहित क्लाइव, नवकृष्ण और रामचन्द्र इकट्ठे होकर मुर्शिदाबादके खजानेमें घुसे और धनके हिस्से करने लगे। कलकताकी कौंसिलके प्रत्येक अँगरेज मेम्बरको १२ लाख ८ हजार रुपये मिले। क्लाइवने ९६ लाख रुपये गुप्त रीतिसे अपने पास रख लिये। ईष्ट इण्डिया कम्पनीको लगभग एक करोड़ रुपये मिले। भारतीयोंको पत्तलका जूठन-स्वरूप सिर्फ बीस लाख रुपये दिये गये। इस धनके बाँटनेमें अँगरेजोंने विश्वासघातकताकी पराकाष्ठा दिखादी। जिस प्रकार अँगरेजोंके द्वारा भारतके भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें आग सुलगी, जिस प्रकार इन लोगोंके व्यवहारसे कोमल-हृदयी भारतीय बज्र-हृदयी हो गये, जिस प्रकार इनके बुरे उदाहरणोंसे भारतवासियोंमें धूर्त्तता, बदमाशी, क्रूरता और वीभत्स पाप-कर्म करना सीखा, उन बातोंको विस्तृत रूपसे जानना हो तो टारेन्स (W. M. Tarens) साहबकी बनाई हुई "इम्पायर इन एशिया" नामकी पुस्तक पढ़िये।

मीरकासिम जब अङ्गरेजोंके बेरोकटोकके व्यापारको रोकनेका पूर्ण प्रयत्न करके भी सफल न हो सका, तब उसने भारतीय व्यापारियोंके लिए भी एकदम कर माफ कर दिया। उसके इस अच्छे कामसे अङ्गरेजों और बंगालियोंको बराबर व्यापारी अधिकार मिल गये। मीरकासिमके इस कामसे अङ्गरेजलोग बहुत नाराज हुए और लड़ाई शुरू कर दी। उस लड़ाईमें (१७६३ ई० में) प्रजा-रक्षक नव्वावको गेंडिया और उदयनालाके मैदानमें हार खाकर भागना पड़ा। संसारके इतिहासमें ऐसी अन्यायपूर्ण लड़ाईका दृष्टान्त शायद ही कहीं मिले। उस समयके सरकारी कागजातोंमें

इस विषयका बहुत ही अच्छा चित्र खींचा हुआ है। बंगालके तीसरे गवर्नर मि० वेरल्स्टनने View of Bengal में लिखा है कि "इस देशमें आकर अङ्गरेज व्यापारियोंके विना कर दिये व्यापार करने और देशी व्यापारियोंके खूब अधिक कर देनेमें लाचार होनेके कारण बंगालमें विदेशी व्यापार बहुत फैल गया। व्यापार बढ़ानेमें अङ्गरेजोंने भारतीयोंपर बहुतसे अत्याचार किये थे।......नव्वाब मीरकासिमके इस अत्याचारके रोकनेका प्रयत्न करनेपर अङ्गरेजलोग उससे लड़ाई करनेके लिए कटिबद्ध हो गये। इस देशमें अङ्गरेज व्यापारियोंने शोरा खरीदने-बेचनेका एकमात्र अधिकार प्राप्त कर लिया था। एक व्यापारीने स्वयं नव्वाबके खर्चके लिए कुछ शोरा खरीदा था, इसपर सन्धिकी शर्त तोड़नेका बहाना कर कम्पनीके पटनामें रहनेवाले प्रतिनिधि मि० एजिसने उसे गिरफ्तार करके कलकत्ता भेज दिया। सोचनेकी बात है कि जो नव्वाबके साथ ऐसा बुरा वर्त्ताव कर सकता था, वह सर्वसाधारणके साथ कैसा वर्त्ताव करता रहा होगा। इस घटनाका उल्लेख वारेन हेस्टिंग्सने अपने पत्रमें किया है। मि० टामस सिडेनहमने ठीक कहा है:—

"Englishmen are most apt than those of any other nation to commit violence in foreign countries. This I believe to be the case in India."

अर्थात् "और जातियोंकी अपेक्षा विदेशियोंपर अत्याचार करनेमें अङ्गरेज सबसे आगे हैं। मैं समझता हूँ, भारतकी यही हालत है।"

स्वयं नव्वाब मीरकासिमके एक पत्रमें लिखा है कि,— "अङ्गरेजलोग देशी व्यापारियोंके घरोंमेंसे जबर्दस्ती माल उठा ले जाते हैं और उचित कीमतका केवल चौथाई भाग उन्हें देते हैं। दूसरी तरहसे रैयतके गले विलायती माल मढ़कर अनेक प्रकारके जोर-जुल्मसे एक रुपयेकी जगह उनसे पाँच रुपये अदा करते हैं।

हमारे कर्मचारियोंको वे लोग शासन और विचारका काम नहीं करने देते हैं। इसी अत्याचारके कारण देशमें दुर्दिन उपस्थित हुआ है और हमारी पचीस लाखकी सरकारी आमदनी कम हो गयी है। हम कम्पनीके साथ सन्धिकी शर्तें अबतक पालन कर रहे हैं, पर कम्पनीके नौकर हमें नुकसानके गढ़ेमें ढकेलते जा रहे हैं।"

तारीख २६ मई सन् १७६२ के अपने एक पत्रमें सर्जेण्ट वेग्रोने भी लिखा था;—"कम्पनीके नौकर अपनेको असीम शक्तिशाली समझते हैं। कम्पनीके लिए कोई भी चीज खरीदने या बेचनेके लिए ये लोग गाँवोंमें जाकर वहाँके लोगोंकी इच्छाके विरुद्ध माल खरीदने और बेचनेके लिए उन्हें मजबूर करते हैं। यदि कोई उनकी आज्ञाका उल्लंघन करता है तो उसे वे बेंतोंसे पीटकर उसी समय जेल भेज देते हैं। जबर्दस्तीके अतिरिक्त गाँववालोंको वे इस शर्तके माननेके लिए भी लाचार करते हैं कि गोरे व्यापारियोंके सिवा न वे किसीसे माल खरीदेंगे और न बेचेंगे। कम्पनीके नामसे कम्पनीके नौकर अपने निजके लिए जो माल अत्याचार करके खरीदते हैं, उसका वे पूरा-पूरा मूल्य देशवासियोंको नहीं देते—कभी-कभी तो उनको बिलकुल ही मूल्य नहीं दिया जाता। इस व्यवहारसे बाकरगंजका जिला धीरे-धीरे मनुष्योंसे खाली हो रहा है। वहाँके प्रसिद्ध बाजारोंमें जब कि अब अधिक चीजें मोल नहीं मिलती हैं, तो भी अङ्गरेजोंके चपरासी बिना रोक-टोक गरीबोंपर जुल्म करनेमें जरा भी हिचकते नहीं हैं। यदि जमीन्दारलोग प्रजाकी रक्षाके लिए कोई प्रयत्न करते हैं, तो उन्हें भी आफतमें डालनेकी धमकी दी जाती है। पहले वे सरकारी कचहरियोंमें नालिश करके न्याय पा सकते थे, पर इस समय कम्पनीके गुमाश्ते ही इन्साफीका काम करते हैं, हर गुमाश्तेके घरपर अदालत लगती है और वे विचारक बनकर जमीन्दारोंके विरुद्ध दण्डकी आज्ञा देते हैं। जमीन्दारोंके

वर्त्तावसे कम्पनीकी हानि होनेका वहानाकर उनसे विना कारण वे रुपये वसूल करते हैं। यदि गुमाश्तोंके आदमी भी उनकी कोई चीज़ चुरा लेते हैं तो जमीन्दारके आदमियोंपर ही चोरीका दोषारोपण करके जमीन्दारसे नुकसानी वसूल करते हैं।"

पाठक! ऐसे अत्याचार भारतमें क्या और भी किसी समय हुए हैं? Consideration on Indian affairs (1772 A.) नामक ग्रन्थमें उस समयके मेयर कोर्टके जज मि० विलियम वोल्ट्सने इस अत्याचारका वर्णन और भी भयानक रूपसे इस प्रकार किया है;—"हमारे (अँगरेजोंके) अत्याचारका बुरा फल इस देशके प्रत्येक जुलाहे और कारीगर भोग रहे हैं। देशकी प्रत्येक कारीगरीकी चीजोंको अङ्गरेजोंने अपनी मुट्ठीमें कर लिया है। किस कारीगरको कितना माल कितने मूल्यमें तैयार करना होगा, इस बातको भी अँगरेजलोग अपनी इच्छाके अनुसार स्थिर कर देते हैं। इसलिए दलाल, चौकीदार और जुलाहोंको सिपाहियोंके द्वारा कम्पनीके पास हाजिर किया जाता है और मालका अन्दाज, मूल्य तथा उसके देनेके समयके विषयमें अपने सुभीतेके अनुसार शर्तें लिखवा-कर उसपर कारीगरोंके दस्तखत करा लिए जाते हैं। इस विषय-में कारीगरोंके सलाहकी कुछ परवाह नहीं की जाती। कारीगरोंके हाथमें बयानेके नामसे पहले कुछ रुपये भी दिये जाते हैं। यदि वे उसे लेना मंजूर नहीं करते, तो वह बयाना उनके कपड़ोंमें जबर्दस्ती बाँध दिया जाता है और कचहरीके सिपाही कोड़ेसे पीटते हुए उन्हें वहाँसे निकाल देते हैं। बहुतसे कारीगरोंको इस बातपर लाचार किया जाता है कि वे और किसीका काम नहीं कर सकेंगे। इस काममें कल्पनासे बाहर जबर्दस्ती की जाती है। पहले तो जिस भावमें जुलाहोंसे कपड़े खरीदे जाते हैं वही बाजार-भावसे बहुत कम होता है, दूसरे कपड़ेकी जँचाईमें षड्यन्त्र करके अच्छा

माल भी बुरा कहा जाता है, अतः अभागे जुलाहोंको सैकड़ा पीछे चालीस रुपयेकी हानि सहनी पड़ती है। इसके सिवा इन व्यवहारोंसे जो जुलाहे कारनामेके अनुसार माल पूरा नहीं कर सकते। उनका घर-द्वार बेचकर उसी समय नुकसानी ली जाती है। रेशमके कारीगर नागोबाड़लोगोंके साथ भी ऐसे ही भयानक अत्याचार किये जाते हैं। अपना रोजगार छोड़ देनेसे भी इनका छुटकारा नहीं होता। कम्पनीके नौकर उन्हें पीटकर कपड़ा बुननेके लिए लाचार करते हैं। इसलिए इन अत्याचारोंसे बचनेके लिए ये अभागे अपने हाथका अँगूठा काटकर काम न करने योग्य होकर बैठते हैं।"

ऊपरके उदाहरणोंसे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि इतने अत्याचारोंके होनेपर भी भारत बसा रह गया यही आश्चर्यकी बात है। इतने अत्याचारोंको सहते हुए भी बंगालके कारीगर जो कपड़ा बनाकर विलायत भेजते थे, उन्हें वहाँके बाजारोंमें विलायती मालकी अपेक्षा पचास-साठ रुपये सैकड़ा कम मूल्यमें बेचनेपर भी यथेष्ट लाभ रहता था। अङ्गरेजलोग इस बातको सहन न कर सके। इसलिए उन्होंने एक ओर तो भारतीय मालपर कड़े-से-कड़ा कर लगा दिया और दूसरी ओर इस देशमें बिना कर दिये माल भेजनेका बन्दोबस्त कर, इङ्गलैंडका व्यापार बढ़ाना शुरू कर दिया। उनका असली अभिप्राय यही था कि किसी प्रकार भारतमें विलायती माल बिकने लगे और विलायतमें माल बेचनेवाले भारतीयोंको हानि उठानी पड़े, ताकि वे स्वयं ही विलायतमें माल भेजना बन्द कर दें। पार्लमेण्टके हाउस आफ कामन्सकी आज्ञासे बनाये हुए एक कमीशनद्वारा वारेन हेस्टिंग्स, सर टान्स मनरो, सर जान मेलकम तथा जानस्ट्राची सरीखे भारतकी दशा जाननेवालोंसे पूछा गया कि,—

"From your knowledge of the Indian character

and habits, are you able to speak to the probability of a demand for European commodities by the population of India, for their own use ?"

अर्थात् "भारतीयोंके स्वभाव और आचरणके सम्बन्धमें आपलोगोंकी जितनी जानकारी है उसके अनुसार क्या आपलोग कह सकते हैं कि भारतीयोंको उनके निजी व्यवहारके लिए यूरोपकी बनी चीजें खरीदना सम्भव है या नहीं ?"

इसके उत्तरमें सभोंने कहा—"भारतकी बनी हुई चीज ही उसकी सारी आवश्यकताएँ पूरी कर सकती हैं। वे बिलकुल विलासप्रिय नहीं हैं। भारतके मजदूर तीन चार रुपये महीनेसे अधिक पैदा नहीं करते। सारांश, भारतवासियोंमें विलायती चीजोंके आदर होनेकी कुछ भी सम्भावना नहीं है।" उस समय टाम्स मनरोने यह भी कहा था कि—"भारतका माल विलायती मालसे कई गुना अच्छा होता है। एक हिन्दुस्तानी शालको मैं आठ वर्षोंसे काममें ला रहा हूँ; पर अभीतक उसमें कोई विशेष परिवर्त्तन नहीं हुआ है। विलायती शाल तीन वर्षमें नष्ट हो जाता है। सच बात तो यह है कि यूरोपियन शाल मुफ्तमें मिलनेपर भी मैं उसका उपयोग करना नहीं चाहता।"

किन्तु इस निराशाजनक उत्तरसे अँगरेज शांत नहीं हुए। उन्होंने स्वतन्त्र व्यावसायिक प्रतिद्वन्द्वितामें निरुपाय होकर राजशक्तिका आश्रय लिया। हिन्दुस्तानी मालपर कड़ा महसूल बिठानेका कानून बनवाया। जो हिन्दुस्तानी कपड़े विलायत जाते थे, उनपर सत्तरसे अस्सी रुपये सैकड़ेतक महसूल लगाया गया। मलाबार प्रान्तसे क्यालिको नामक छींटका कपड़ा पहले विलायत बहुत जाता था। सन् १६७६ ई० में पहले-पहल विलायतमें इस कपड़ेके बनानेका कारखाना स्थापित हुआ। सन् १७०० और १७६१

में पार्लमेएट-द्वारा इस आशयके कानून पास किये गये कि किसी भी प्रकारकी छींट तथा अन्य प्रकारके छपे हुए कपड़े न तो यहीं बनाये जावें और न बिना रोक-टोक भारतसे ही आने पावें। इसके सिवा छींटपर फी गजके लिए तीन पेन्स यानी डेढ़ आना टैक्स भी लगाया गया। दो वर्ष बाद पार्लमेएटने विलायती जुलाहोंकी प्रार्थनापर क्यालिको छींटका टैक्स दूना यानी हर गजपर तीन आना कर दिया। सन् १७२० ई० में कानून बना कि जो लोग विलायतमें हिन्दुस्तानी कपड़ा बेचेंगे, उन्हें बीस पौएड (१५० रु०) और जो खरीदेंगे उन्हें ५०) जुर्माना होगा। * तदनुसार हाँ अनेक स्त्रियोंको इस कानूनके भंग करनेके कारण उस समय जुर्माने भी देने पड़े थे।

अन्यान्य चीजोंपर कैसा कर लिया जाता था, सो भी देखिये:—

हींग	प्रतिसैकड़ा	२३३)	से	६२२)	तक
इलायची	,,	१५०)	,,	२६६)	,,
कालीमिर्च	,,	२३६)	,,	४००)	,,
चीनी	,,	६४)	,,	३६३)	,,
चाय	,,	६७)	,,	१००)	,,
चटाई	,,	८४॥=)			
मसलिन (तनजेब)	,,	३२॥)			
छींट	,,	८१)			
रेशम	,,	१॥) और फी सेर ४)			
कपास फी मन लगभग		१५)			

इङ्गलैएड स्वतन्त्र देश था। इसलिए वह अपना व्यापार बढ़ानेके लिए मनमाने कानून गढ़ सकता था। भारतपर राज्यसत्ता स्थापित करनेके बाद उसको अपना अभीष्ट सिद्ध करनेका मार्ग बिलकुल

*Useful arts & manufactures of Great Britain. P.363.

सुलभ हो गया। लगातार ७० या ८० वर्षतक अँगरेजोंने भारतीय व्यापार नष्ट करनेके अभिप्रायसे भारतवासियोंपर जो-जो भयङ्कर अत्याचार किये थे, वे वर्णनातीत हैं। रेशमी कपड़ा तो यहाँसे विलायत भेजनेकी कतई मनाही थी। यदि कोई आदमी मँगा भी लेता था तो वह माल विलायतके बन्दरमें उठाने नहीं दिया जाता था; बल्कि उसी घड़ी लौटते जहाजसे भारत वापस कर दिया जाता था।

इधर कम्पनीकी कोठीमें देशी कारीगरों से जबर्दस्ती काम भी कराया जाता था; इसलिए भारतीयोंके कारखाने तो योंही उजड़ने लगे थे, दूसरे भारतकी चीजोंपर इतना कड़ा टैक्स लगा दिया गया कि उनकी जड़ ही कटने लगी। इस तरह भारतका व्यवसाय चौपट किया गया और भारतमें विलायती माल लाया गया। इसका फल यह हुआ कि जहाँ भारतका माल विलायत जाता था, वहाँ विलायती मालकी भरमार भारतमें होने लगी। सन् १७६४ में जिस भारतमें १५६ पौंडसे अधिक विलायती सूती कपड़ा नहीं आया था, वहीं सन् १८०६ में १ लाख १८ हजार ४ सौ पौंडसे भी अधिक मूल्यका कपड़ा ठूँसा गया। सोचनेकी बात है कि आज कितने ही भारतके सुपूत ऐसे हैं जो देशी खद्दरके लिए यह कहा करते हैं कि इतना मोटा कपड़ा कैसे पहना जायगा, यह तो बदनमें गड़ता है। किन्तु उस समय जब मोटा कपड़ा पहननेके लिए लोग कानूनन बाध्य किये गये थे, तब देशीको कौन कहे विलायतका बना हुआ मोटेसे मोटा कपड़ा उन्हें पहनना पड़ा था। यदि कोई यह कहे कि विलायती कपड़ा कभी भी मोटा नहीं बनता था, तो उसके लिये स्पष्ट प्रमाण भी दे दिया जाता है। इण्डिया आफिसके कागजातकी रिपोर्टमें लिखा है कि "सन् १७८५ में नार्टिंघम (विलायत) में कपड़ेका कारखाना खुला। कहीं दो वर्ष बाद ढाकेकी मलमलकी नकलपर पाँच लाख थान मोटे और खरदरे कपड़ेके तैयार हुए।"

अस्तु, भारतमें विलायती मालकी वृद्धि दिन-दूनी रात-चौगुनी होने लगी और विलायत तथा अन्यान्य देशोंमें भारतीय मालकी कटत दिन-पर-दिन घटने लगी। नीचेकी तालिकासे ज्ञात हो जायगा कि कितनी शीघ्रतासे भारतीय व्यापारकी अवनति हुई।

विलायतमें भारतीय मालकी रफ्तनी—

रुई

सन् १८१८ में १२७१२४ गाँठ गई थी, पर केवल १० वर्षमें ही घटकर सन् १८२८ में सिर्फ ४१०५ गाँठ हो गयी।

कपड़ा

सन् १८०२ में तो १४८१७ गाँठें गयीं, किन्तु सन् १८२६ में सिर्फ ४३३ गाँठें गयीं। फल यहाँतक हुआ कि अब जाना तो दूर रहा, उलटे विलायतसे भारतमें इस समय सालाना साठ-सत्तर करोड़ रुपयेका केवल कपड़ा आ रहा है।

किन्तु कच्चे नील और रेशमकी रफ्तनी बढ़ने लगी। उस समय भारतीयोंकी ओरसे अन्यायोंको रोकनेके लिए बहुतेरी अर्जियाँ भेजी गयीं। बंगालके प्रतिष्ठित व्यक्ति श्रीयुत् रामगोपाल घोषने देशी चीनीका कर घटानेके लिए विलायतमें अर्जी भेजी थी। कई अङ्गरेज व्यवसायियोंने भी उसपर हस्ताक्षर कर दिये थे। किन्तु कुछ भी सुनायी न हुई।

सन् १८१६ तक तो केवल ईष्ट इण्डिया कम्पनी ही विलायती माल यहाँ मँगाती और यहाँका माल विलायत भेजती रही, किन्तु इसके बाद इङ्गलैण्डके सभी व्यापारियोंको भारतमें व्यापार करनेका अधिकार मिल गया। क्रमशः विलायती माल भारतीय दूकानोंमें ठसाठस भरने लगा। सन् १८२१ में सब समेत ६॥ करोड़ रुपयेका विलायती माल आया था।

ईष्ट इण्डिया कम्पनीने भारतीय कारीगरीको चौपट करनेके

लिए उक्त अन्यायोंके सिवा भारतकी कारीगरीपर भी कड़ा महसूल जारी कर दिया था। लार्ड वैंटिंगके शासनकालमें जब इसपर खोद-विनोद की गयी, तब ज्ञात हुआ कि विलायती कपड़े फी सैकड़े भारतमें २॥) टैक्स देकर बेचे जाते थे; किन्तु भारतवासी अपने देशमें अपने व्यवहारके लिए जो कपड़े बनाते थे, उनपर उन्हें फी सैकड़ा १७॥) टैक्स देना पड़ता था। इसके सिवा देशमें ही व्यवहार होनेवाली चमड़ेकी चीजोंपर भी गवर्नमेण्ट प्रतिशत १५) कर लेती थी। देशी चीनीपर विलायती चीनीसे प्रति सैकड़ा ५) अधिक कर वसूल किया जाता था। * इस तरह भारतकी लगभग २३४ प्रकारकी कारीगरीपर उस समय निहायत अनुचित कर जारी किया गया था। प्रायः तीस वर्षतक इन मुसीबतोंको झेलकर भारतकी कारीगरी ध्वंस-प्राय हो गयी।

---

* पहले जावा आदि स्थानोंमें चीनीके बहुत बड़े-बड़े कारखाने थे। उनमें इतनी चीनी तैयार की जाती थी कि भारतका खर्च काटकर चीनी दूसरे देशोंको भेजी जाती थी। पर अङ्गरेजोंने विलायती चीनीका प्रचार करनेके लिये यहाँके कारखानोंको नष्ट करनेका संकल्प किया। उस समय यहाँके कारखानोंकी चीनी इतनी सस्ती पड़ती थी कि विलायती चीनी उस दरमें बेचनेसे बहुत ज्यादा नुकसान होता था। इसलिए अङ्गरेजोंने इस आशयका कानून जारी किया कि चीनीके कारखानोंमें अधिक देरतक काम न लिया जाय, क्योंकि इससे कुलियोंका स्वास्थ्य बिगड़ता है। फल यह हुआ कि जावा आदिके कारखानोंकी चीनीपर दूनी लागत बैठने लगी। फिर भी जब विलायती चीनीका भाव देशी चीनीके मुकाबले महँगा ही रहा, तब यहाँके कारखानोंपर भी जबर्दस्त कर बिठा दिया गया। फिर क्या था, देशी चीनी तैयार करनेमें अधिक लागत बैठनेके कारण उसका भाव महँगा हो गया और विलायती चीनी सस्ते दाममें बिकने लगी। धीरे-धीरे यहाँके कारखाने तो नष्ट होगये और विलायती चीनीका प्रचार भारतके कोने-कोनेमें हो गया। यहाँकी चीनी बाहर जानेको कौन कहे उलटे बाहरी चीनीसे उसका

ऐसी ज्यादतीसे ही अमेरिका, डेनमार्क, स्पेन, पुर्तगाल, मोरिशस तथा एशियाके अन्यान्य भागोंके साथ भारतीय कारीगरोंका जो पूर्ण सम्बन्ध था वह मिटने लगा। सन् १८०१ ई० में १३६३३ गाँठ कपड़ा भारतसे अमेरिका गया था, पर सन् १८२६ में वह संख्या घटकर केवल २५८ गाँठ हो गयी। डेनमार्कमें सन् १८०० तक प्रतिवर्ष लगभग १४५० गाँठें कपड़ेकी जाती थीं, पर १८२० में उसके स्थानपर १५० गाँठें हो गयीं। पुर्तगालमें सन् १७९९ में ९७१४ गाँठों और सन् १८२५ में १००० गाँठोंकी ही रफ्तनी हुई। सन् १८२० तक अरब और ईरानकी खाड़ीके निकटवर्ती देशोंमें भारत ४००० से ७००० तक कपड़ेकी गाँठें भेजता था, पर वही भारत सन् १८२५ के बाद उन देशोंमें कभी भी २००० गाँठोंसे अधिक नहीं भेज सका। कुछ दिनोंमें वह भी बन्द हो गया।

मुहम्मद रजाखाँके समय बंगाली जुलाहे तीन करोड़ बंगालियों की लज्जा निवारण करते हुए भी प्रतिवर्ष १५ करोड़ रुपयेके कपड़े विदेश भेजते थे, किन्तु १९०६ में वे तीन लाखके कपड़े भी नहीं भेज सके।

इस तरहसे देशकी कारीगरीकी मिट्टी पलीद की गयी। अठारहवीं शताब्दीके अन्तमें विलायतके विद्वानोंने वहाँ बिना किसी प्रकारके करके बाहरी माल मँगानेका कानून जारी करनेके लिए आग्रह किया। पर जबतक भारतके शिल्प और वाणिज्यकी जड़ ज़रा भी भीतर रह गयी थी, तबतक अङ्गरेज व्यापारियोंने उसके पनपनेके भयसे अपने देशमें वैसा कानून जारी नहीं होने दिया। जब भारतीय कारीगरीकी जड़ एकदम साफ हो गयी और उसके

बाजार पटा हुआ है। उसे आजकल प्रतिवर्ष १४ से २७ करोड़ रुपयेतक चीनीके लिये विदेशको देने पड़ते हैं।

पनपनेकी कोई आशा न रह गयी, तब सन् १८३६ में कानून बनाया गया कि भारतमें बनी हुई चीजें भारतमें खपानेके लिए कोई कर नहीं देना पड़ेगा। पर उस समयतक भारतीय कारीगरोंके शरीरका सारा रक्त चूस लिया गया था। बड़े-बूढ़ोंके मुँहसे सुननेमें आया है कि इस देशमें विलायती सूतका प्रचार करनेके लिए कम्पनीके आदमी सूत कातनेवाली स्त्रियोंके चरखे तोड़ डालते थे और उन्हें धमकाते थे। कहीं-कहीं तो चरखोंतकपर कड़ा टैक्स लगाया गया था। फल यह हुआ कि सूत कातनेवाली स्त्रियाँ यदि कहीं झूठमूठ भी यह सुन पाती थीं कि कम्पनीके आदमी आ रहे हैं, तो वे भयके मारे चटपट अपने-अपने चरखोंको तालाबोंमें फेंक दिया करती थीं।

जो हो, यह तो हर तरहसे सिद्ध है कि भारतका व्यापार नष्ट करनेमें कोई भी अत्याचार अँगरेजोंने उठा नहीं रखा। भला चरखों-पर टैक्स! हद हो गयी। India in vetorian age. (P. 135) में चरखेपर टैक्स बिठानेके सम्बन्धमें लिखा है कि—

Francis Carnac brown had been born of English parents in India and like his father had considerable experience of the cotton industry in India. He produced an Indian Charka or spinning wheel before the Select Committee and explained that there was an oppressive Moturfa tax which was levied on every Charka, on every house and upon every implement used by artisans. The tax prevented the introduction of saw-gins in India.

उन दिनों विलायती जुलाहे कपड़ोंकी किनारी बुनना नहीं जानते थे। उन्होंने यह विद्या खासकर बंगालके जुलाहोंसे सीखी थी।

पहले-पहल जो विलायती कपड़े यहाँ आये थे, उनकी किनारियाँ ऐसी भद्दी थीं कि आजकलके लोग तो उन्हें छूते भी नहीं।

कम्पनीकी ज्यादतियोंसे केवल भारतकी कारीगरीका ही नाश नहीं हुआ, बल्कि वे अनाथ विधवाएँ भी निराश्रया हो गयीं, जो सूत कातकर उदर-पोषण करती थीं। उनकी जब रोजी टूट गयी, तब चारों ओर हाहाकार मच गया। उनके करुण-क्रन्दनसे आकाश प्रतिध्वनित होने लगा। इस हृदय-द्रावक रुदनको सबसे पहले बम्बईके निवासियोंने सुना। फिर वे अपने प्रान्तमें कल और कारखाने खोलने का प्रयत्न करने लगे। यह आजसे प्रायः सत्तर-अस्सी वर्ष पहलेकी बात है। बम्बईके निवासियोंके इस अदम्य उत्साहको देखकर अँगरेज लोग चौंक पड़े। अँगरेजी सरकारने झटसे नियम बना दिया कि विलायतसे भारतमें कल आदि मँगानेके लिए अधिक महसूल देना होगा। किन्तु जब उस अधिक महसूलको देते हुए भी यहाँके लोग कल-पुरजे मँगवाकर कपड़े बुनवाने लगे, तब गवर्नमेण्ट बम्बईके कलवालोंको हानि पहुँचानेका दूसरा प्रयत्न करने लगी। उधर महाराष्ट्रवासियोंने भी प्रतिज्ञा की कि जहाँतक बन पड़ेगा विलायती कपड़ा न पहनेंगे।

फिर सन् १८९६ ई० में गवर्नमेण्टने देशी कारखानोंको तोड़नेके लिए विलायती कपड़ोंका महसूल डेढ़ रुपया सैकड़ा घटा दिया और देशी कपड़ोंपर साढ़े तीन रुपया सैकड़ा नया महसूल लगा दिया। स्मरण रखना चाहिये कि देशमें बनी हुई किसी वस्तुपर—जो देशहीमें बेची जाती हो—टैक्स बिठानेका नियम भारतको छोड़कर और किसी उपनिवेशमें नहीं है। यह बखेड़ा खड़ा कर देनेसे यहाँके कपड़ोंकी चीन और जापानमें रफ्तनी बहुत घट गयी। यही कारण है कि विलायती कपड़ोंकी अपेक्षा देशी कपड़े महँगे हो गये। अब पाठक समझ सकते हैं कि व्यापारकी दृष्टिसे इस देशके साथ विदेशी सरकारका कैसा बर्त्ताव है।

यदि अङ्गरेजलोग अपनी राज्यशक्तिके सहारे भारतवासियोंका सर्वनाश करनेपर उतारू न होते, तो आजसे वहुत दिन पहले भारतमें पश्चिमी विज्ञानके अनुसार कल आदिके सहारे तरह-तरहकी कारीगरीकी वस्तुओंके बननेका प्रबन्ध हो गया होता। अव्वल तो भारतवासियोंको पश्चिमी कल-कारखानोंकी जरूरत ही क्या थी, क्योंकि वे तो स्वयं हाथसे ऐसी-ऐसी चीजें तैयार कर लेते थे कि कल-कारखानोंकी इतनी उन्नत-दशा होते हुए भी अब वे मुअस्सर नहीं हैं—दूसरे यदि वे कल-कारखानोंका ही आश्रय लेना चाहते तो भी आरम्भमें विज्ञानके अनुसार नये-नये यंत्रोंका आविष्कार करनेमें चाहे सफल न होते, पर आगे चलकर अन्यान्य देशोंकी देखादेखी इस विषयमें निस्सन्देह कृतकार्य हो जाते। क्योंकि हमें विश्वास है कि किसी चीजकी नकल करनेमें भारतवासी, संसारके किसी भी देशसे पीछे नहीं रह सकते। संसारमें देखादेखी ही वहुतसे काम होते हैं। स्वयं अङ्गरेजलोग ही सन् १८६० ई० तक जङ्गी जहाज बनानेकी विद्यामें फ्रांसीसियोंसे पीछे रहे। इसलिए फ्रांसीसियोंसे उस विद्याको चुरानेके लिए एक अँगरेज कारीगर दरिद्र पथिक बनाकर फ्रांस भेजा गया था। वह वहाँ जाकर फ्रांसीसियोंकी जङ्गी जहाज वनानेकी विद्यापर गुप्त दृष्टि रखने लगा। कुछ दिनोंतक गुप्त अनुसन्धान करता हुआ वह उस विद्याको सीखकर अपने देश लौटा। तबसे अङ्गरेजोंके जङ्गी जहाजोंने नया रूप धारण किया। अङ्गरेजोंके इस कार्यसे फ्रांसीसी गवर्नमेण्टने क्रोधमें आकर अपनी जहाज बनानेकी विद्या को गुप्त रखनेके लिए कड़े नियम आदि बनाये। क्रमशः प्रतिभाशाली फ्रांसीसी कारीगरोंने जङ्गी जहाज बनानेकी और भी अच्छी प्रणाली ढूँढ़ निकाली। फिर भी अङ्गरेजोंने गुप्त भेदियोंद्वारा बड़ी-बड़ी चेष्टाओंसे उस विद्याके गुप्त भेदको सीख लिया। अमेरिकाके अस्त्र बनानेवाले कारीगरोंसे भी अङ्गरेजोंने

इसी तरह अनेक प्रकारके अस्त्र बनानेकी शिक्षा ली। जापानने पश्चिमी विद्याकी थोड़ीसी रोशनी पाकर केवल पचास वर्षोंमें अपने जातीय द्रव्यकी पूरी वृद्धि कर ली। इस प्रकार प्रायः सभी जातियोंने औरोंकी आविष्कृत विद्याकी नकल करके अपनी-अपनी उन्नति की है। किन्तु भारतवर्ष बेतारका तार आविष्कार करनेवाले सर जगदीश-चन्द्र बोस—जैसे वैज्ञानिक रत्नोंको पैदा करके भी १५० वर्षोंसे सुसभ्य कहानेवाले अँगरेजोंके साथ रहकर कुछ न कर सका। इसका मुख्य कारण शासकोंकी कूटनीति नहीं तो और क्या है?

पलासी-युद्धके १२ वर्ष बाद कम्पनीके डाइरेक्टरोंने कम्पनीके नौकरोंके अत्याचारोंको रोकनेपर ध्यान दिया था। सो भी इस-लिए कि अँगरेजोंके दल-के-दल कम्पनीमें नौकर होकर यहाँ आते थे और आनन-फाननमें गज्झा माल मारकर अपने देश लौट जाया करते थे। इससे कम्पनीको हानिके सिवा कोई लाभ न था। अत्या-चार करते थे कर्मचारी, मालामाल बनते थे कर्मचारी; पर बदनामी मढ़ी जाती थी कम्पनीके मत्थे। फलतः डाइरेक्टरोंकी ईर्षा स्वाभा-विक थी। अस्तु, उनलोगोंने कर्मचारियोंके मार्गमें काँटे बोनेका जी-तोड़ प्रयत्न किया। इससे कम्पनीके नौकरोंकी घूसखोरी और लूट-पाटकी आदत बहुत कुछ दूर हुई।

इस प्रकार समय पाकर अत्याचार तो दूर हुआ, पर भारतके कारीगरोंका दुर्दैव दूर न हो सका। क्योंकि ता० १७ मार्च सन् १७६६ ई० में कम्पनीके डाइरेक्टरोंने यहाँके कर्मचारियोंको नया अत्याचार शुरू करनेका अधिकार दे दिया। उन्होंने कहा कि "बंगालमें रेशमके काम करनेवाले सब कारीगरोंका स्वतन्त्रतासे व्यापार करनेका अधिकार छीन लेना चाहिये। इसके बाद जिसमें कोई अपने घरमें स्वतन्त्रतासे रेशमी कपड़ा बनाकर जीविका न चला सके, इसपर ध्यान देना आवश्यक है। कारीगरोंको कम्पनीकी

फैक्टरीमें जाकर काम करनेके लिए लाचार करना होगा। जो स्वतन्त्रतासे रेशमका व्यापार करेंगे, उन्हें कड़ा दण्ड देना पड़ेगा।" हाय भगवान्! शासकोंका प्रजाके प्रति यह भाव? अब इस विषयको हम यहींपर समाप्त करते हैं। आगे चलकर यह दिखाया जायगा कि अँगरेजोंके संसर्गसे हमारे अन्तःकरणपर कैसा धब्बा लगा।



आन्तष्करणिक क्षति

भारतके आधुनिक महाप्रभु अँगरेजोंके विचार, व्यवहार एवं रहन-सहनका संक्षिप्त दिग्दर्शन पाठकोंको पिछले प्रकरणोंमें कराया जा चुका है, इस प्रकरणमें रही-सही कमीकी भी पूर्त्ति कर दी जायगी। क्योंकि राजाका चरित्र दिखानेसे सहज ही यह बात समझी जा सकती है कि जो राजा लम्पट, धोखेबाज, लुटेरा और कपटी होगा, उसकी प्रजा इन दुर्गुणोंसे भला मुक्त कब रह सकती है? 'यथा राजा तथा प्रजा' की कहावत संसार-प्रसिद्ध है। यही कारण है कि जो भारतवासी सदाचार, सत्य और ईमानदारीमें अपनी सानी नहीं रखते थे, वेही आज न्यायालयोंमें झूठी-झूठी बातोंपर गंगा उठानेमें भी संकुचित नहीं हो रहे हैं। इस भारतके सम्बन्धमें एक विदेशी यात्री अलवेरूनीने कहा था कि "हमें भारतवर्षमें एक भी मनुष्य झूठ बोलता नजर नहीं आया। यहाँके मामूली-से-मामूली मनुष्यके चेहरेपर भी अद्भुत कांति और महानुभवता दिखायी पड़ती है। संसारमें इसकी बराबरी दूसरा कोई भी देश नहीं कर सकता।" पर अङ्गरेजोंकी संगतिके प्रभावसे हमलोगोंके वे सब गुण जाते रहे।

अन्तःकरणका आर्थिक-स्थितिसे बड़ा ही घनिष्ट सम्बन्ध है। जब आर्थिक-स्थिति ठीक रहती है, तब मनुष्यका अन्तःकरण उच्च रहता है, उसे अपनी मान-मर्यादा और प्रतिष्ठाका खयाल रहता है। किन्तु जब आर्थिक-स्थिति बिगड़ जाती है, तब मनुष्यके सारे उच्च विचारोंके विद्यमान रहते हुए भी उनपर पानी फिर जाता है। कहा भी है—'गरीबी मान नहीं रखती।' हमारे देशकी जो कुछ आन्तष्क-

रीरिक या मानसिक क्षति हुई है, उसका मूल कारण यही गरीबी है। ज्यों-ज्यों यहाँकी जनता निर्धन होती गयी त्यों-त्यों उसका मानस और बाहुबल भी दुर्बल और क्षीण होता गया। क्योंकि दरिद्रता बहुतसे अनर्थोंकी जड़ है। निर्धन आदमीके मनकी सारी वृत्तियाँ ओछी पड़ जाती हैं, समाजमें हिलमिलकर रहनेकी शक्ति भी नष्ट हो जाती है। बाहुबलके घट जानेसे मनमें दूसरेका धन हड़पनेके लिए लोभ उत्पन्न होने लग जाता है। पेट भरनेकी चिन्ता अधिक बढ़ जाती है, इससे नीचता, मिथ्याचार प्रभृति दोष बढ़ने लगते हैं। भारतके वृद्ध-वशिष्ठ नेता स्वर्गीय दादाभाई नौरोजीने "Moral poverty of India" में लिखा है,—

"For the same cause of the deplorable drain, besides the material exhaustion of India, the moral loss to her is no less sad and lamentable. With material wealth go also the wisdom and experience of the country."

अर्थात् "अङ्गरेजोंके सम्पत्ति-शोषणसे भारतीय केवल निर्धन ही नहीं हो रहे हैं वरन् उनका नैतिक पतन भी हो रहा है। भारतकी यह हानि साधारण हानि नहीं है और न धन-नाशसे कम दुःखदायी ही है। सब देशोंमें ही धन-नाशके साथ-साथ देशवासियों का ज्ञान और अनुभव भी नष्ट होता जाता है।"

दूसरे निबन्धमें आपने लिखा है:—

"All the talent and nobility of the intellect and soul which nature gives to every country, is to India a lost treasure. There is thus, a triple evil loss of wealth, wisdom and work, to India under the present system of administration."

अर्थात "प्रकृति देवी सब देशके लोगोंको साधारणतः जो बुद्धि और महानुभवता प्रदान करती हैं, भारतवासी उससे भी हाथ धो बैठे हैं। अङ्गरेजी शासन-प्रणाली के दोषोंसे भारत-वासियोंका अर्थ-बल, ज्ञान-बल और कार्य-दक्षता, ये तीनों गुण एक साथ नष्ट हो रहे हैं।"

आज भारतवासियोंका नाश करके उनको अङ्गरेजलोग नीची दृष्टिसे देखते हैं, पर कुछ ही दिन पहले अङ्गरेज अपने दुर्गुणोंके भयसे हमेशा भारतीयोंसे डरा करते थे। जिस समय सेत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भमें पहले-पहल भारतवासियोंका अङ्गरेजोंसे परिचय हुआ, उस समय भारतवासियोंने अङ्गरेजोंको कैसा पाया, उसे 'रेवरेण्ड एण्डर्सन' प्रणीत English in Western India में इस प्रकार लिखा है,—

"As the number of adventurers increased, the reputation of the English did not improve. Too many committed deeds of violence and dishonesty. We can show that even the commanders of vessels belonging to the company did not hesitate to perpetrate robberies on the high seas or on shores when they stood in no fear of retaliation.

Hindoos and Musulmans considered the English a set of cow-eaters, and fire drinkers, vile brutes, who would cheat their own fathers.

If a native dealer was offered much less for his articles than the price which he had named, he would be apt to say—what! dost thou think

me a Christian, that I would go about to deceive thee ?"

अर्थात "ज्यों-ज्यों भारतमें अङ्गरेजोंकी संख्या-वृद्धि होने लगी, उनकी नामवरी उस प्रकार नहीं बढ़ी । इनमेंसे अधिकांश लोग जबर्दस्ती और बेइमानीके काम किया करते थे। रोकटोककी डर न होनेसे कम्पनीके जहाजके कप्तान भी समुद्र या उसके किनारे-पर सानन्द डकैती किया करते थे। हिन्दू और मुसलमान इन्हें गो-भक्षक, सुरापायी, नीच और नर-पशु समझते थे। इनके कामोंसे भारतीयोंकी धारणा हो गयी थी कि अङ्गरेजलोग अपने जन्म-दाता (माँ-बाप) को भी ठग सकते हैं। यदि किसी देशी व्यापारीको उसके माँगे दामसे कम दाम दिया जाता, तो वह झट कह बैठता—"क्या तुम मुझे कृस्तान समझते हो, जो मैं तुमसे ठगहारी करूँगा ?"

यही कारण है कि अँगरेजलोग भारतवासियोंको पतित बनाने-का यत्न करने लगे। उन्होंने सोचा कि जबतक इनका मानस क्षीण न किया जायगा, तबतक हमारा मस्तक इनके सामने ऊँचा नहीं हो सकता। इसीसे वे अपने दोषोंपर पर्दा डालने लगे। भारतीय कारी-गरोंके बनाये बहुतसे जहाज ग्याहरवीं सदीमें इङ्गलैण्ड जाया-आया करते थे। इसी देशके मल्लाह उन जहाजोंको चलाया भी करते थे। इसलिए इङ्गलैण्डकी रहन-सहन वे मल्लाह अच्छी तरह देखते थे। किन्तु विलायती सभ्यता और विद्वत्ताका जो आदर्श भारतीयोंके सामने रखकर कर्तृपक्ष उनको मोह-जालमें फँसाना चाहता था, इस आवागमनसे वह न हो सकता। इसीसे कम्पनीके डाइरेक्टरोंने घबड़ा कर भारतीयोंका इङ्गलैण्डमें जाना बन्द कर दिया। इस विषयमें उन्होंने स्वयं कहा था,—"भारतके मल्लाहोंको जहाज चलानेसे छुड़ा देनेका सिर्फ यही एक कारण नहीं है। हमारे जातीय चरित्रका कलंक

धर्मनीति-ज्ञानका अभाव भी इसका कारण है। लज्जाकी बात होनेपर भी यह बिलकुल ठीक है कि भारतके मुसलमान नाविक इस देशमें आकर यहाँका अत्यन्त वीभत्स दृश्य अपनी आँखों देखते हैं। इसलिए भारतमें रहनेके समय यूरोपियनोंकी चाल-चलनके बारेमें उनके हृदयमें जो आदर और श्रद्धा उत्पन्न होती है, यहाँ आते ही वह नष्ट हो जाती है। उनलोगोंके पास जो कुछ थोड़ा-बहुत धन रहता है, यहाँके लोग उसे उड़ा लेते हैं, जिसके कारण बेचारोंको निराश्रय और वस्त्र-पात्र-विहीन होकर गली-गलीमें भटकना पड़ता है। इसके बाद नाविकगण अपने देशमें जाकर लोगों से सारी बातें कहा करते हैं। ऐसी कलङ्ककी बातें सुननेसे, एशियावासियोंके मनमें हमलोगोंके प्रति प्रतिकूल धारणा उत्पन्न हुए बिना नहीं रह सकती। हमलोगोंके जातीय चरित्रके सम्बन्धमें उनकी अनुकूल धारणा होनेपर ही हमलोग भारत में अच्छी तरह शासन चला रहे हैं। दूर देशमें जो थोड़ेसे भले घरोंके अँगरेज रहते हैं, उनके सद्व्यवहारसे भारतीयोंके मनमें हमलोगोंके प्रति जो श्रद्धा उत्पन्न हुई है, वह यदि विलायतके वापस जानेवाले नाविकोंकी बातोंसे नष्ट हो जाय, यदि हमारे चरित्रकी नीचता वे जान जायँ, तो उसका परिणाम बहुत ही बुरा हो।"

(Supplement of the fourth report. E. I. Co.)

पाश्चात्य विद्वानोंका भी मत है कि यूरोपियनोंकी संगति भारतवासियोंके समान प्राच्य-जातिके लिए बहुत बुरी है। मि० हाल्ट मैकेंजीने कहा है,—

"The longer we have had these districts, the more apparently do lying and litigation prevail the more are morals vitiated the more are rights involved in doubt, the more are foundations of society shaken,"

अर्थात् "जिस जिलेमें हमलोगोंने जितने अधिक दिनोंतक राज्य किया है, उस जिलेके लोग उतने ही अधिक भूठ बोलनेवाले और मुकद्दमेबाज हो गये हैं और लोगोंका उतना ही अधिक नैतिक अधःपात तथा अधिकार नष्ट हुआ है। सारांश, उनके समाजकी नींवतक हिल गयी है।" सर जान शोरने कहा है,—

"It has been observed as a general truth that the more connection the natives have had with the English, the more immoral and the more worse in every respect the become."

अर्थात् "प्रायः सब जगह यही देखा जाता है कि अँगरेजोंके साथ भारतवासियोंका जितना अधिक सम्बन्ध होता है, चरित्र तथा अन्यान्य बातोंमें भारतीयोंकी उतनी अधिक अवनति होती है।" कप्तान वेष्टमेटाकने भी कहा है,—

"I have no hesitation in affirming that in Hindu and Musulman Cities, removed from European intercourse there is much less depravity than there is in Calcutta, Madras and Bombay where Europeans chiefly congregate."

अर्थात् "कलकत्ता, मद्रास और बम्बई आदि जिन शहरोंमें अधिक यूरोपियन रहते हैं, उनकी अपेक्षा उन शहरोंमें मिथ्याचार कम देखनेमें आता है, जहाँ यूरोपियनोंका निवास नहीं है। इसे मैं दिलसे स्वीकार करता हूँ।"

हर्षकी बात है कि अङ्गरेजोंका इतना गहरा सम्पर्क होते हुए भी भारतवर्षके लोग अपने पूर्वपुरुषोंके पुण्य-प्रतापसे इस गयी-बीती अवस्थामें भी अङ्गरेजोंके समान कुत्सित कर्म करनेमें कई अंशोंमें कम ही हैं। गत सन् १९०३ की पुलिस-रिपोर्टसे मालूम होता है

कि उस वर्ष सिर्फ लंडनमें ३५२६२ चोरियाँ हुईं। इनमें लगभग १७५०० चोरियोंका पुलिस कुछ भी पता न लगा सकी। यह संख्या भारतकी चोरियोंकी संख्यासे पाँचगुनी अधिक है। इङ्गलैंडमें अदालतियोंकी संख्या भी कम नहीं है। वहाँ प्रति चौबीस आदमियों में एक आदमी मुकद्दमेबाज है और भारतमें एक सौ चालीस आदमियोंमें एक। इससे साफ जाहिर होता है कि भारतके अपराधियोंकी संख्या सभ्य अङ्गरेजोंके देशके अपराधियोंकी संख्याका छठा हिस्सा है। खूनके अपराधमें सजा करके जो लोग कालेपानी भेज दिये जाते हैं, उनके चेहरेकी प्रतिभा देखकर सुप्रसिद्ध विद्वान् मि० डारविन साहबने आश्चर्यके साथ कहा था कि,—

"These men are quiet and well conducted, from their outward conduct their cleanliness and faithful observance of their strange religious rites. It is impossible to look at them with the same eyes as on our wretched convicts."—Voyage Round the World. P. P. 448.

अर्थात् "उनकी बाहरी चाल-चलनसे, उनकी स्वच्छतासे और उनके अपने अद्भुत धर्मकृत्यके नियमानुसार करनेसे ये लोग (भारतके अपराधी) बहुत ही शान्त और सभ्य आदमी प्रतीत होते हैं। हमारे देशके नराधम अपराधी और इन्हें एक दृष्टिसे देखना असम्भव है।" सारांश यह कि यदि धर्म-प्राण भारतवासियोंके सिर्फ उदर-पोषण करनेके लिए अँगरेजलोग चापलूसी न करनेकी दयालुता दिखलाते, तो सारा काम बन जाता। उन्हें और देशोंके लोगोंकी तरह अधिक लालच न घेरती। किन्तु यहाँके लोगोंका तो इस कदर धन निचोड़कर खींच लिया गया है कि व्यापार करनेकी ताकत भी भारतीयोंमेंसे जाती रही। श्रीयुक्त दादाभाई नौरोजीने

वहुत दिनोंतक भारतके भिन्न-भिन्न देशी राज्योंमें रहकर पूर्ण अनुभव प्राप्त करके लिखा है कि यद्यपि वम्बईमें करोड़ों रुपयोंका व्यापार होता है, पर उनमें भारतका मूलधन १० करोड़से ज्यादा नहीं है। सो भी इस १० करोड़का अधिकांश देशी राज्यके व्यापारियोंका है। ब्रिटिश-भारतके रहनेवालोंका धन तो इतना कम है कि व्यापारमें लगने योग्य मूलधनका वे संग्रह ही नहीं कर सकते।"

आजकलके गोरे राजपुरुषोंका कहना है कि भारतवासी राज-कार्य चलानेमें अयोग्य उच्चज्ञान पानेके अनधिकारी और दब्बू हैं। पर यह दोष किसका? लगभग साठ वर्ष पहले पार्लमेण्टद्वारा स्थापित की हुई अनुसंधान-समितिके एक प्रश्नके उत्तरमें मि० राबर्ट रिकार्डस-ने कहा था,—

"......It may even be questioned whether so great a progress in the attainment of knowledge has ever been made under the circumstances in any of the countries of Europe. (Q. 2807)"

अर्थात् "...इस प्रकारकी प्रतिकूल अवस्थामें (जिस अवस्थामें भारत है) यूरोपके किसी देशके लोगोंने ज्ञान-उपार्जन करनेमें इतनी (भारतकीसी) उन्नति की होती या नहीं, संशय ही है।" शिक्षाका अपूर्व ढंग निकालकर इस विदेशी सरकारने हमारी सारी प्रतिभा नष्ट कर दी। चौदह-चौदह सोलह-सोलह वर्षतक परिश्रम करके हमारे कितने ही भाई बी. ए. और एम. ए. पास करते हैं। पर जब वे कालेज छोड़ते हैं तो नौकरीके अतिरिक्त उन्हें कोई भी मार्ग जीवन-निर्वाहके लिए दिखायी नहीं पड़ता। कारण यही है कि उचित शिक्षा नहीं दी जाती। इसीसे सन् १९२० में असहयोगके जमानेमें महात्मा गांधीने सरकारी मदरसोंको छोड़नेके लिए कहा था। क्योंकि ये स्कूल और कालेज गुलाम उत्पन्न करनेके कारखाने हैं। इनमें प्रकृत शिक्षा कुछ

भी नहीं दी जाती। नौकरी देनेमें जो दुर्दशा की जा रही है, उसका भी हाल सुनिये।

गोखलेने सरकारी कागजोंके सहारे एक तालिका तैयार कर सन् १६०५ ई० में भारतीय व्यवस्थापक-सभामें आय-व्ययकी आलोचनाके समय अपना विचार प्रकट किया था। उसमें आपने दिखाया था कि सन् १८६७ के बाद शिक्षा-विभागमें एक हजारसे अधिक रुपये मासिकके दस स्थान बनाये गये! उनमें केवल एक पद हिन्दुस्थानीको दिया गया, बाकी नौ गोरोंका। पुर्त्त-विभाग और सरकारी रेल-विभागोंमें बारह सौसे अधिक मासिक वेतनके कुल २६ पद बनाये गये, पर इनमें एक भी पद हिन्दू या मुसलमानोंको नहीं दिया गया। समूचे भारतमें बारह सौ रुपयेसे अधिक वेतनके सरकारी कामोंपर एक सौसे भी कम हिन्दू या मुसलमान काम कर रहे हैं। सन् १८६८ में यहाँ सिर्फ सिविल-विभागमें ८००० गोरे वड़ी नौकरियाँ कर रहे थे। इन्हें प्रतिवर्ष आठ करोड़ रुपये वेतनके देने पड़ते थे। आजकल तो इनकी संख्या और भी बढ़ गयी है। सन् १६२६ की व्यवस्थापिका सभाकी कार्यवाहीसे ज्ञात होता है कि सन् १६२२ की अपेक्षा रेलेवेमें ५० फी सदी बड़े अफसर बढ़ गये हैं। फौजी विभागोंमें भी इसी प्रकारका अन्धेर है,—खासकर जर्मन-महासमरसे तो और भी। १६२६ में सैनिक खर्च ५५ करोड़ १० लाख रुपया किया गया। मि० आर० एन० काष्ट नामक एक अवसर-प्राप्त सिविलियनने कहा भी है,—

"Akber made fuller use of the subject races, we make none; it is the jeallousy of the middle-classes Briton, the Hungry Scot that wants his salary, that shuts out all native aspirations.
—Linguistic and Oriental Essays.

अर्थात्—"अकबरने राजकार्यमें अपनी प्रजाको यथासम्भव नियुक्तकर उसकी प्रतिभाका पूर्ण सदुपयोग किया था, पर हम वैसा नहीं करते। पद-श्री-कातर मध्यम श्रेणीके अङ्गरेज और सदा भूखे स्काटलैराड-निवासी इस देशकी बड़ी नौकरियाँ चाहते हैं और भारतवासियोंकी उच्चाकांक्षाओंके सब रास्ते बन्द कर देते हैं।"

ऐसे व्यवहारसे लज्जित होना तो दूर रहा, भारत-सरकार बड़ी-बड़ी नौकरियोंपर एकाध भारतीयोंको वहालकर उलटा शेखी हाँकनेमें जरा भी नहीं शर्माती। मुसलमानोंके राज्यमें हिन्दुओंको और चाहे कुछ भी कष्ट क्यों न रहा हो, पर उनकी मानसिक शक्तिके विकासका पथ इस कदर बन्द नहीं किया गया था। अकबरके ४१४ मनसबदारोंमें ५१ हिन्दू थे। शाहजहाँके समय हिन्दू मनसबदारों-की संख्या ११० थी, जब कि मनसबदारोंकी कुल संख्या ६०६ थी। प्रायः मनसबदारोंके बराबर अधिकारप्राप्त राजकर्मचारियोंकी संख्या आजकल भारतमें सब मिलाकर २३१५ से कम नहीं है। पर इनमें भारतीयोंकी संख्या केवल ९२ है, जोकि एक तरहसे नहीं के बराबर है। निजाम बहादुरके राज्यमें एक हजार और उससे अधिक वेतनके ४३ पद थे। जिनमें २२ मुसलमान, ११ श्वेताङ्ग, ७ हिन्दू और ३ पारसी थे। यहाँके प्रधान मंत्री महाराज कृष्णप्रसाद थे। आपको सोलह हजार रुपये मासिक मिलता था। अँगरेजी शासनमें सबसे ऊँचा पद पार्लमेराटका है, उसमें एक भी भारतीय नहीं। कितने आश्चर्यकी बात है कि जिसपर शाशन करना है और जिसके लिए कानून बनाना है, उसका एक भी प्रतिनिधि कानून बनाते समय उसका गुण और दोष सुनानेवाला न रहे। इधर कुछ दिनोंसे भारतमें प्रतिनिधि-शासन-प्रणाली चली भी तो उसमें अभीतक कोई दम नहीं है। क्योंकि सब अधिकार अङ्ग-

रेजोंने अपने हाथमें रखा है। बड़ी व्यवस्थापिका सभामें वायसराय और प्रान्तीय सभाओंमें गवर्नर चाहे जिस लोक-मतको रद्द कर सकते हैं।

अङ्गरेजोंके इस प्रकारके व्यवहारसे भारतीय समाज दिन-पर-दिन ज्ञान-बल और चरित्र-बलमें हीन हुआ जा रहा है। दुःखकी बात तो यह है कि इतनेपर भी सरकार प्रजाकी सहायता करनेके लिए कुछ भी आगे नहीं बढ़ रही है। गत पचास वर्षोंमें अँगरेज कर्मचारियोंकी संख्या बहुत बढ़ गयी है और उन्हें उनके खर्चके अनुसार धनकी व्यवस्था भी कर दी गयी है; पर भारतीयोंके लिये कुछ भी नहीं। इतना ही नहीं, भारतवासी और अँगरेजकी तनखाहमें भी बहुत बड़ा अन्तर रखा गया है। जिस पदपर अङ्गरेजों को एक हजार मासिक मिलता है, उसी पदपर भारतवासीको चार सौ मुश्किलसे दिया जाता है। यदि यह कहा जाय कि शासन-योग्यतामें भारतीय अयोग्य हैं तो यह भी ठीक नहीं। डा० रदरफोर्डका कहना है कि शासन-योग्यतामें भारतके अँगरेज शासक, भारतीय शासकोंसे निश्चय ही कम हैं। भारतीय महारथियोंके सामने वे निरे बच्चे हैं। नीतिज्ञतामें भारतीय, अँगरेजोंसे आगे होते हैं। तिसपर भारतवासी घूसखोर कहे जाते हैं। किन्तु भारतीयोंको घूसखोर स्वयं सरकार ही बनाती है। दूरदर्शी राजपुरुष भी इस बातको स्वीकार करते हैं कि भारतवासियोंको उचित स्थान और तनखाह नहीं दी जाती, इसीसे वे घूसखोर बन गये हैं। इस विषयमें सर हेनरी श्राचीने कहा था कि,—

We place the Europeon beyond the reach of temptation to the native, a man whose ancestors perhaps bore high command, we assign some ministerial office, with a poor stipend of twenty

or thirty rupees a month. Then we pronounce that the Indians are corrupt.

अर्थात् "हमलोग यूरोपियनोंको अधिक वेतन देकर उनके लालचमें पड़नेकी सम्भावना ही दूर कर देते हैं। पर जिन हिन्दुस्तानियोंके पूर्वज कदाचित् बहुत बड़े आदमी या सरदार थे, उन्हें हम केवल २०।३० रुपये मासिक वेतनकी साधारण नौकरियोंपर कायम करते हैं, और ऊपरसे कहते हैं—भारतवासी घूसखोर होते हैं।"

भारतवर्षमें अँगरेज राजपुरुषोंकी अधिकार पानेकी बेहद लालसा ही भारतवासियोंके असन्तोषका मूल कारण है। इसीसे सन् १८३३ में पार्लमेण्टने आज्ञा दी कि भारतवासी बड़े-बड़े राजपदपर नियुक्त किये जायँ। पर नौकरशाही उसकी अवज्ञा ही करती आ रही है। ईश्वर ही जाने, इस आज्ञा और उसकी अवहेलनामें क्या रहस्य है।

राजाकी अवज्ञासे प्रजाका नैतिक चरित्र कैसे खराब हो जाता है, सर टान्स मनरोके निम्नलिखित मन्तव्यसे ज्ञात हो जायगा—

"Let Britain be subjected by a foreign power tomorrow; let the people be excluded from all share in the government for public honours, from every office of high trust or emolument and let them in every situation be considered as unworthy of trust all their knowledge and all their Literature, sacred and profane would not save them from becoming in another generation or tow a low minded, deceitful and dishonest race. *** In proportion as we exclude them from higher offices, and a share in the management of public

affairs, we lessen their interest in the concerns of community and degrade their character."

अर्थात् "हमलोगोंके बारेमें भी यही बात कही जा सकती है। कल यदि इङ्गलैण्ड परकीय शासनकी शृंखलामें बाँध डाला जाय और वहाँ के निवासियोंको राजकार्यसे सर्वसाधारणके दिये हुए आदर पानेसे या लाभ-जनक कामोंसे वञ्चित कर दिया जाय, तो ज्ञान, विज्ञान और साहित्यकी हजार चर्चा होनेपर भी उनका अधः-पतन कभी रोका नहीं जा सकेगा—एक-दो पुस्तोंमें ही वह नीच, ठग और बदमाशोंकी जातिका अड्डा हो जायगा। फलतः जिस परिमाणमें हमलोग उच्चपद और राजकार्यसे भारतीयोंको वञ्चित रखेंगे, उसी परिमाणसे समाजके भले-बुरेका उनका खयाल भी कम होगा और उनका चरित्र बिगड़ेगा।"

ऊपरके कथनसे इस मामलेकी सारी बातें स्पष्ट हो जाती हैं। राजकार्यके उच्चपदोंपर भारतीयोंके नियुक्त न किये जानेके कारण भारतकी केवल मानसिक अवनति ही नहीं होती है, वरन् आर्थिक अवनति भी हो रही है।

मि० डिगवीने बतलाया है कि निजाम हैदराबादके राज्यमें भूमि-कर अदा करनेमें प्रतिसैकड़ा ६।≋)। खर्च होता है। बरार भी पहले निजामहीका था। पर ब्रिटिश सरकारके हाथमें आनेके बादसे यहाँका शासन-खर्च इतना अधिक बढ़ गया है कि सुनकर आश्चर्य होता है। महामति डिगवीके कथनानुसार ही बरारमें राजस्व वसूल करनेमें प्रति सैकड़ा ४५।।।=)। खर्च होता है। यह गोरोंको बड़े-बड़े पदोंपर नियुक्त करनेका परिणाम है। ब्रिटिश शासनके अन्यान्य विभागोंमें भी यही बात है—अंधेर नगरी चौपट राजा। तिसपर यहाँकी बड़ी व्यवस्थापिका सभा हरसाल घाटेकी पूर्तिके लिए रोया करती है। सन् १९२८ में भी १ करोड़ १० लाखका

घाटा दिखलाया गया है। किसी किसी सालमें तो ३०-४० करोड़-तक घाटा दिखलाया जाता है।

वहुधा यह देखनेमें आता है कि धनकी वृद्धि होनेपर मनुष्य-चरित्रकी नीचता कम हो जाती है; किन्तु दुःखकी बात है कि भारतके सर्वनाशसे अँगरेजोंकी इतनी श्री-वृद्धि होनेपर भी, उनके चरित्रकी नीचतामें कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा। आजकल प्रति अँगरेजकी वार्षिक आमदनी ६३०) है और हर आदमीके पास ४५००, रुपया संचित धन है। फिर भी उनकी अमानुषिकता दूर नहीं हुई। भगवान्! अँगरेजोंकी स्वार्थ-लोलुपता सीमाबद्ध करे और उन्हें सुबुद्धि दे, साथ ही सच्चरित्र बनावे। ईष्ट इण्डिया कम्पनीके कर्मचारियों और निलहे साहवोंके गुमाश्तोंके चरित्रकी आलोचना करनेसे अँगरेजोंका चरित्र साफ मालूम हो जायगा।

पलासी-युद्धके वाद अँगरेजोंकी व्यापार-कोठियोंके साहबों और गुमाश्तोंने देशके साथ घोर अन्याय करना शुरू किया था। रुपया इकट्ठा करनेके लिए उन्हें कोई भी कुकर्म करनेमें संकोच नहीं होता था। ये लोग जुलाहोंको जबर्दस्ती मजबूर करके दादनी (पेशगी रुपया) देते थे। जुलाहोंको लाचार होकर रुपया लेना पड़ता था और निर्दिष्ट समयके भीतर निर्दिष्ट संख्यक वस्त्र वुनकर देनेके लिए इकरारनामा लिख देना पड़ता था। परन्तु उनके वुने हुए वस्त्रोंका मूल्य निश्चित करते समय अङ्गरेजलोग सौ रुपयेके मालका पचास रुपयेसे जियादा नहीं कूतते थे। इस तरह खरीदकर फिर वे गहरा नफा लेकर बहुतसा माल भारतीयोंके ही हाथ बेच देते थे। वे बहुतसे तन्तुकारोंके अँगूठे भी कटवा लेते थे, जिससे फिर वे कोई काम करनेके लायक नहीं रह जाते थे। उस समय अङ्गरेजलोग यहाँ स्त्री-सहित नहीं रहते थे। जबर्दस्ती बड़े-बड़े घरोंकी बहू-वेटियों-को अपनी कोठियोंपर पकड़वा मँगाते थे और उनका सतीत्व नष्ट

करते थे। अब भी जहाँ कहीं गोरे सैनिकोंको मौका मिलता है, अपनी नीचतासे बाज नहीं आते। पंजाब-हत्याकाण्ड (१६१६) और बारडोली-सत्याग्रह (१६२८) इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। अङ्गरेजोंके उन नीचतापूर्ण कार्योंका अब और अधिक उल्लेखकर हम इस पुस्तकको गन्दी नहीं करना चाहते। पाठकोंको इतनेहीसे अँगरेजोंके चरित्रका पूरा परिचय मिल जायगा और यह मालूम हो जायगा कि राजाकी इतनी चरित्र-भ्रष्टतासे भारतीय प्रजाकी कितनी अधिक मानसिक अवनति हुई होगी।

मद्यके सेवनसे मानसिक-शक्तिका कैसे पतन होता है, चरित्र-बल कैसे नष्ट हो जाता है, वह किसीसे छिपा नहीं है। पर यह अङ्गरेजी सरकार भारतीयोंको शराबी बनानेके लिए प्राणपनसे चेष्टा करनेसे वंचित न रही। अफीमकी खेती करनेकी ओर देशके किसानों-का कभी अनुराग नहीं था; वरन् वे इससे घृणा ही प्रकट करते थे। पर सरकार उनको रुपये कर्ज देकर तथा और भी बहुत तरहसे लालच दिखाकर पहले उन्हें अफीमकी खेती करनेमें प्रवृत्त करती थी। बंगालके भूतपूर्व छोटे लाट सर सिसिल विडनने विलायती फाइन्स कमेटीके सामने गवाही देनेके समय साफ कहा था,—

"Than Government would probably not be deterred from adopting such a course by any consideration as to the deleterious effects which opium might produce on the people to whom it was sold."

सारांश यह कि "अफीम खानेसे प्रजाका चरित्र-बल नष्ट हो जायगा। सरकार इस भयसे सम्भवतः यह लाभ-दायक व्यवसाय कभी नहीं छोड़ेगी।"

अफीमके किसानोंको केवल रुपये देकर ही सरकार चुप नहीं रहती

थी, वरन् इस देशके युवकोंमें जिसमें अफीम खानेकी आदत बढ़ जाय, इसके लिए भी वह अत्यन्त नीच उपायोंसे काम लिया करती थी। ब्रह्म-प्रदेशके भूतपूर्व सरकारी कमिश्नर मि० हाइएटने कहा था,—

"Organised efforts are made by Bengal Agents to introduce the use of the drug and create taste for it among the rising generation."

"एजेण्ट नियुक्तकर अफीमका प्रचार बंगालमें बढ़ानेकी खूब कोशिश की गयी थी। जिसमें बंगालके युवकोंको अफीम खानेकी आदत पड़ जाय, इसकी भी अच्छी तरह चेष्टा की गयी थी।"

मि० हाइएडने कहा है कि "पहले गाँव-गाँवमें अफीमकी दूकानें खोली गयीं, फिर गाँवके युवकोंको विना मूल्य अफीम बाँटनेका प्रबन्ध किया गया। थोड़े दिनोंमें जब अभागे भारतीय नवयुवकोंमें अफीम खानेकी आदत पड़ गयी, तब खूब थोड़े दाममें अफीम बेचनेकी व्यवस्था की गयी। धीरे-धीरे लोगोंमें यह आदत जैसे-जैसे बढ़ती गयी, वैसे-वैसे अफीमका दाम भी बढ़ाया जाने लगा। इस तरह अफीमका प्रचार बढ़ाया गया और गाँवोंके होनहार बालक अफीमची और पशुसे भी अधम बनाये गये।" अब अफीमका ठेका दिया जाता है और वह ८०।६० रुपया सेर बेची जाती है।

जो शराब यहाँ के लोगोंके लिए पहले 'अपेय' और 'अस्पृश्य' थी, आज उसीके स्रोतमें समाज बहा जा रहा है। सर सिसिल विडनने विलयतमें जो बात कही थी, उससे मालूम होता है कि अफीमके समान शराबका प्रचार बढ़ानेके लिए भी यहाँ अत्यन्त निन्दनीय उपायका अवलम्बन किया गया था। हरसाल यदि शराबकी बिक्री न बढ़ती, तो बंगालके कलेक्टरों और डिप्टी कलेक्टरोंको खुलेआम फटकारें सुनायी जाती थीं। कितने ही स्थान इसी शराबके कारण उजाड़ हो गये। पंजाबके छोटे लाट सर माकलियडने कहा था कि—

"In the Narbada territories I have known whole districts depopulated in consequence of the action of our spirit contractors. They used to send people all over the country to seduce these poor simple folk and utterly demoralise them. They got on their books and after being sold out of house and home, they absconded in thousands."

"मैं नर्मदाके समीपमें ऐसे बहुतसे जिलोंको जानता हूँ, जो हमारे शराबके ठेकेदारोंके कारण एकदम उजाड़ हो गये हैं। भोले-भाले आदमियोंको फुसलाकर उन्हें एकदम भ्रष्ट करनेके उद्देश्यसे वे लोग (ठेकेदारलोग) चारों ओर आदमी भेजा करते थे। इस प्रकार कर्जके कारण घर-द्वार सब बिक जानेपर हजारों आदमियोंके दल-के-दल देश छोड़-छोड़कर भाग गये।"

अब भी नशीली चीजोंकी आमदनी बढ़ानेके उद्देश्यसे सरकार भारतीय समाजको चरित्र-भ्रष्ट करनेकी चेष्टा करनेमें कुछ भी उठा नहीं रखती है। सरकारी रिपोर्टोंके देखनेसे मालूम होता है कि हरसाल मादक वस्तुओंकी बिक्री बेतरह बढ़ती ही जा रही है। सन् १८७४ में मादक द्रव्य बेचनेसे सरकारको २ करोड़ ३३ लाख २२ हजार रुपयेका लाभ हुआ था। क्रमशः बढ़ते-बढ़ते सन् १९०३ में उन्हीं मादक द्रव्योंसे सरकारको ७ करोड़ ८३ लाख ९५ हजार रुपये लाभ हुए। १९०३ के बाद भी सरकारी आमदनी बढ़ती ही जाती थी, पर सन् १९२० की नागपुर कांग्रेसमें महात्मा गान्धीने असहयोग पास करके आबकारीपर गहरा धक्का पहुँचाया। जिस समय म० गान्धीकी आज्ञासे शराबकी दूकानोंपर देशके उत्साही युवकोंने धरना देना शुरू किया, उस समय इस विदेशी सरकारसे अपनी आमदनीपर धक्का पहुँचते नहीं देखा गया और उसने

झटसे हुक्म निकाल दिया कि जो लोग शराबकी दूकानोंपर धरना देंगे या उन दूकानदारोंके व्यापारपर किसी प्रकारका भी धक्का पहुँचायेंगे, उनलोगोंको १४४ दफाके अनुसार दण्ड दिया जायगा। सन् १९२३ से जबसे असहयोग आन्दोलन कुछ ढीला पड़ा, मादक वस्तुओंका प्रचार फिर कुछ बढ़ गया। सन् १९२८-२९ में अफीमसे ३ करोड़ ४ लाख रुपयेकी आय हुई है। यद्यपि अन्य देशोंमें नशीली चीजोंका प्रचार रोका जा रहा है; किन्तु भारतमें उसकी वृद्धि हो रही है।

भारतीय समाजकी जातीय अवनतिके कई कारणोंमेंसे एकके बारेमें मि० वेबने इस प्रकार आलोचना की थी—

It is my growing conviction that disastrous consequences must sooner or later result from persistent vilification of Indian character...... I know how such vilification has worked in us, at times turning our better natures into gall, and being responsible for many a hideous passage in our history......Subject people are abnormally sensitive to the feeling towords them of their rulers.

"मेरी यह धारणा दिनोदिन दृढ़ होती जा रही है कि भारतीयोंके चरित्रकी हमेशा निन्दाका फल शीघ्र हो या देरसे, होगा भयंकर। इस प्रकारकी कुत्सासे हमलोगोंका (आइरिश लोगोंका) क्या अनिष्ट हुआ है, सो मैं जानता हूँ। इससे हमारे अनेक अच्छे गुण नष्ट होगे हैं। यही निन्दा हमारे जातीय इतिहासकी कई वीभत्स घटनाओंका कारण है। राज-जातिद्वाराकी हुई निन्दा या स्तुतिसे पराधीन जातिके चरित्रमें शीघ्र ही फेरफार हुआ करता है।"

महाभारतमें कहा है कि कर्णको हीन-बल करनेके लिए उसके सारथी पाण्डव-हितैषी मद्रराज शल्यने उसकी बहुत निन्दा की थी। राज-जातिके मुँहसे सदैव अपनी निन्दा सुननेसे साधारणतः सबको आत्म-ग्लानि होती है और भ्रमवश वे अपनेको अकर्मण्य और हीन-बल समझने लग जाते हैं। यही भ्रम बहुत दिनोंतक रहनेसे धीरे-धीरे बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। इसीसे कहा है कि स्वजातिकी निन्दा सुनना पाप अर्थात् अवनतिकर है। अङ्गरेजोंद्वाराकी हुई निन्दासे आइरिशोंके चरित्रकी खूब अवनति हुई है। इसीसे विदेशियोंद्वारा की हुई भारतवासियोंकी निन्दा सुनकर सहृदय वेब महाशयने इस प्रकार भारतवासियोंको सावधान कर दिया है।

भारतवासियोंका जिसमें आत्म-शक्तिपरसे विश्वास कम हो जाय, इसी उद्देश्यसे नौकरशाही इस देशके लोगोंकी हमेशा निन्दा किया करती है। अधिक वेतनके पदोंपर जिसमें स्वजातिके लोग बहाल किये जायँ, इसी उद्देश्यसे चालाक अङ्गरेज हमलोगोंमें तरह-तरहके दोष देखा करते हैं।

किसी देशके-निवासीको बुजदिल बनानेके लिए सबसे अच्छा मार्ग यही है कि उस देशके इतिहासको बुजदिलोंसे भर दिया जाय। इतिहासका सबसे बड़ा महत्त्व क्यों है? इसलिए कि इतिहासपर देशका भविष्य निर्भर करता है। उदाहरणके लिए भारत और इङ्गलैण्डको ही सामने रखिए। दोनों ही देशकी व्यभिचारिणी युवतियोंको ले लीजिये। यदि आप भारतकी किसी भी व्यभिचारिणी स्त्रीसे यह कहें कि तू ऐसा कुत्सित कर्म क्यों कर रही है? तो वह निश्चय ही थोड़ी देरके लिए सिर झुका लेगी, चाहे वह पीछे अपना आचरण न भी बदले। किन्तु यही बात यदि आप किसी यूरोपीय कुलटासे पूछें, तो वह आपको घृणाकी दृष्टिसे देखेगी और कहेगी कि कैसा मूर्ख है! क्या यह अवस्था योंही ऐश-

आरामसे रहित होकर बिताने की है! इसका कारण यही है कि हमारे देशमें सीता-सावित्री जैसी देवियाँ उत्पन्न हुई हैं। उनका असर सूक्ष्म रूपसे अबतक हमारे देशकी देवियोंमें थोड़ा-बहुत बना हुआ है। पर यूरोपका इतिहास ऐसी देवियोंसे शून्य है। इसी कारणसे इतिहासको नष्ट करनेके लिए शिवाजी जैसे तेजस्वी पुरुषोंको अँग-रेज़ोंने डाकू कहनेका प्रयास किया है।

मानसिक अवनतिका एक गौण कारण सामाजिक कुरीतियोंका होना है। आजकल बाल-विवाहकी प्रथा बेतरह बढ़ गयी है। जीवनकी उन्नतिका आधार ब्रह्मचर्य है। बाल-विवाहसे ब्रह्मचर्यका पालन कुछ भी नहीं हो रहा है। इस कारण हमारी कमजोरी दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है। यह कारण गौण इसलिए है कि सामा-जिक सुधार राजाके आधीन है। यदि अँगरेजलोग हमारा सुधार चाहते, तो इसका प्रयत्न वे आसानीसे कर सकते थे। इसीसे महात्मा गान्धीने स्पष्ट कह दिया था कि जबतक हम स्वराज्य न प्राप्त कर लें, तबतक किसी भी भारतीय युवकको भोग-विलास कर गुलामोंकी संख्या न बढ़ानी चाहिये। सारांश यह कि तीस करोड़ भारत-सन्ता-नोंका रोज आधा पेट खानेका कष्ट यदि दूर हो जाय तो सत्वगुण प्रधान भारतीयोंका चरित्र भी निःसन्देह उन्नत हो जायगा; क्योंकि सब अनर्थोंकी जड़ निर्धनता ही है। किन्तु यह तभी सम्भव है, जब स्वराज्य प्राप्त हो जाय। क्योंकि भारत-सरकार अपने लाभकी बातोंको तो लोकमत कुचलकर झटसे पास कर लेती है, पर यदि कोई प्रस्ताव जनताके लाभार्थ पेश किया जाता है तो उसके पास करनेमें अनेक तरहकी अड़चने लगा देती है। बाल-विवाह रोकनेके लिए शारदा बिल पेश हुआ, पर अभीतक उसको पास नहीं किया गया, यह बात सरकारकी नीतिका द्योतक है।



किसानोंका पतन

अपनी जातिका हो, या दूसरी जातिका, स्वदेशी हो, या विदेशी; वास्तवमें राजा तो जनसाधारणका प्रतिनिधिमात्र है। राजाका प्रधान कर्त्तव्य है, समाजके प्रतिनिधिरूपसे दुष्टोंका दमन करना, शिष्टों या भलोंकी रक्षा करना, लोगोंकी धर्मनीति और धनसम्पत्ति बढ़ाना तथा अन्यान्य उपायोंसे समाजमें सुख और शान्ति बढ़ानेका प्रयत्न करना। इन्हीं कामोंके खर्चके लिए राजा प्रजासे कर लेता है। राजकोषमें जो धन जमा होता है, उसपर राजाका अधिकार बहुत ही कम होता है—यह प्रजासाधारणकी सम्पत्ति (Public wealth) कहलाता है। राजा, प्रजाकी वह सम्पत्ति प्रजाके कल्याणके लिए खर्च करनेमें धर्मसे बँधा है। पर हमलोगोंके दुर्भाग्यसे इस नियमका पालन यहाँ नहीं होता। इस देशमें राजधर्मका पग-पगपर उल्लंघन किया जाता है। यहाँ अधिक-से-अधिक कर लेकर बिना प्रजाकी राय लिये मानमाना अनुचित खर्च किया जाता है।

आर० सी० दत्त महाशयने दिखाया है कि हिन्दू और मुसलमानोंके समयमें प्रजासे जो कर लिया जाता था, इस विदेशी राज्यमें उनसे अधिक लिया जाता है। आगे चलकर आपने दिखलाया है कि सन् १७९३ से १८२२ ई० तक सरकारने बंगालके जमीन्दारोंसे करके रूपमें ९०) और उत्तर भारतमें ८०) प्रति सैकड़ा वसूल किया है। मुगलोंके समयमें भी कर तो इतना ही था, पर वे जितना कर बिठाते थे, उतना कभी वसूल नहीं करते थे। किन्तु अँगरेज जो कर बिठाते हैं वह कौड़ी-कौड़ी वसूल कर लेते हैं। बंगालके अन्तिम नव्वाबने सन् १७६४ में अर्थात् अपने राज्यके

अन्तिम वर्षमें प्रजासे ८१ लाख ७५ हजार ५ सौ ३० रुपये वसूल किये थे। पर बंगाल, बिहार और उड़ीसाका राज्य पाकर अङ्गरेजोंने ऐसी कठोर नीतिका अवलम्बन किया कि सन १७६४ ई० में करका परिमाण २६८ लाख रुपया हो गया। १८०२ में अवधके नव्वाबसे अङ्गरेजोंको इलाहाबाद तथा और कई जिले मिले। मुसलमान नव्वावके समय इन जिलोंपर भूमिकर १ करोड़ ३५ लाख २३ हजार ४ सौ ७० रुपये स्थिर किया गया था। इसमेंसे कितना वसूल किया जाता था और कितना छोड़ दिया जाता था, इसका ठीक पता नहीं लगता। पर अङ्गरेजोंने तीन ही वर्षमें इन जिलोंसे १६ करोड़ ८ लाख २३ हजार ६० रुपयेकी वार्षिक आय कर ली। सन १८८७ में महाराष्ट्र राज्य अँगरेजोंके हाथ लगा। उस समय इसके राजस्वका परिमाण ८० लाख रुपया था। कुछ ही वर्ष बाद उसी जमीनसे अँगरेज लोग १ करोड़ ५० लाख वसूल करने लगे। तबसे महाराष्ट्रमें बराबर जमीनका लगान बढ़ाया ही जा रहा है। इस कदर कर-वसूलीका कारण एकमात्र अँगरेजोंकी निर्दयता है। विशप हिबरने भारत-भ्रमण करनेके बाद १८२६ में लिखा था, "No native prince demands the rent that we do."

अर्थात् "कोई भी देशी राजा, प्रजासे इतना अधिक कर वसूल नहीं करता, जितना अधिक कि हमलोग वसूल करते हैं।" कर्नल ब्रिगसने १८३० में लिखा था,—

"A land tax like that which now exists in Indian professing to absorb the whole of the Land-lord's rent, was never known under any government in Europe or Asia."

अर्थात् "भारतके वर्तमान करके समान यूरोप या एशियाका कोई भी राजा इतना अधिक राजस्व—जमीन्दारकी प्रायः समस्त आय—

कभी वसूल नहीं करता था।" राजस्वके वसूल करनेमें कैसी निष्ठुरता की जाती थी, उसका उल्लेख सरकारी कागजातोंमें ही पाया जाता है। १७६६ ई० में बंगालमें बड़ा प्रलयकारी अकाल पड़ा था। उसमें १ करोड़से ऊपर मौतें हुई थीं। अन्न महँगा हो गया, इतने पर भी कर वसूल करनेमें अँगरेजोंने उस समय खूब दक्षता दिखायी। "Annals of Rural Bengal." नामक ग्रन्थके २१ वें पृष्ठपर हराटरसाहबने लिखा है,—

The revenues were so closely collected before.

अर्थात् "पहले कभी इतनी कठोरताके साथ राजस्व वसूल नहीं किया गया था।"

दूसरे ही वर्ष बंगालमें फिर घोर अकाल पड़ा। राजपुरुषोंने विलायतमें कर्तृपक्षको लिखा,—"यहाँ बेशुमार आदमी भूखों मर रहे हैं! भाषामें ऐसा शब्द नहीं है, जिससे लोगोंके कष्टका वर्णन किया जाय, खूब उपजाऊ पुर्नियां जिलेमें भी इन कई महीनोंमें तिहाई आदमी मर गये हैं; ("But we are happy to inform the collection have fallen less short than we supposed they would") पर आनन्दकी बात यह है कि इससे पहले जितनी सोची थी उतनी करकी हानि नहीं हुई!" 'वर मरे या कन्या, सुमंगलीसे काम' यह कहावत अङ्गरेजोंपर खूब चरितार्थ होती है। भारत मरे या जिये, इन्हें तो बस टैक्ससे मतलब है।

अब हम कैलाशपुरी काशीकी अङ्गरेजी राज्यमें जो दुर्दशा हुई है, उसका दिग्दर्शन कराते हैं। काशी-नरेश महाराजा बलवन्तसिंहजीकी सन् १७७० ई० में मृत्यु हुई। लखनऊके नव्वाब शुजाउद्दौलाकी आज्ञासे स्वर्गीय महाराजके पुत्र महाराज चेतसिंह इस गद्दीके अधिकारी हुए। बाद सन् १७७५ में शुजाउद्दौलाकी भी मृत्यु हो गयी। अङ्गरेजोंको भी अवसर मिला। तत्कालीन गवर्नर जेनरल

वारन हेस्टिंगसने काशीका राज्य ईष्ट इण्डिया कम्पनीके लिए नये नव्वावसे माँग लिया। इसी समयसे महाराज चेतसिंह अङ्गरेजोंके माण्डलिक राजा हुए। निश्चय हुआ कि महाराज चेतसिंह २३ लाख ७२ हजार ६ सौ ७६ रुपये वार्षिक कम्पनीको दिया करें।

इसके तीन ही वर्ष वाद काशी-नरेशके बुरे दिन आये। जुलाई १७७८ ई० में वारन् हेस्टिंग्सने महाराज चेतसिंहको लिखा कि "गत् १८ वीं मार्चसे इङ्गलैंड और फ्रान्समें युद्ध प्रारम्भ हो गया है। सुतरां मैं अपने और वोर्डके नामसे आपसे प्रार्थना करता हूँ कि कम्पनीकी राजभक्त प्रजाके नाते आप भी इस युद्धके खर्चका कुछ भार उठावें।" वारन् हेस्टिंग्सको महाराजसे इस प्रकार रुपये माँगनेका कुछ भी हक नहीं था। वड़े लाटकी कौंसिलके प्रसिद्ध सदस्य धर्मभीरु फिलिप फ्रांसिस स्वयम् इस अन्यायपूर्ण रुपये माँगनेके घोर विरोधी थे। पर कम्पनीने तीन वर्षतक इसी बहाने पाँच-पाँच लाख रुपये वसूल किये। चौथे वर्ष महाराज रुपये देनेमें असमर्थ हुए। बस इसीपर वे गिरफ्तार कर लिये गये। अपने अन्नदाता प्रभुकी यह दुर्दशा देख महाराजकी फौजने बिगड़कर कम्पनीकी फौजपर आक्रमण किया। फिर क्या था महाराजके दुर्दिनका आगमन हुआ। उन्हें अपना राज छोड़कर भाग जाना पड़ा। उनके भानजे महीपनारायणसिंह गद्दीपर विठाये गये और उनपर हेस्टिंग्सने पहलेकी अपेक्षा बहुत ही अधिक करका भार लाद दिया। राज्यका काम देखनेके लिए वहाँ एक अपना एजेंट (रेजिडेण्ट) भी नियुक्त कर दिया। इसका फल यह हुआ कि प्रजापर भयंकर अत्याचार होने लगे। जमीनका लगान बेहद बढ़ा देना पड़ा। थोड़े ही दिनोंमें हरा-भरा प्रदेश उजाड़ हो गया। सन् १७८४ में वहाँ भयंकर अकाल पड़ा। इस अकालकी भयंकरता ऐसी थी कि दूसरी अप्रैल १७८४ को हेस्टिंग्सने Council

Board (कौंसिल बोर्ड) को लिखा कि,—"मुझे कहते बहुत दुःख होता है कि बक्सरके आगे बनारसकी ओर सब गाँवोंको मैंने बिलकुल बंजर पाया। मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि शहर बनारसके अतिरिक्त समूचे प्रदेशमें अराजकता फैली हुई है। शासन-प्रणाली बिगड़ गयी है और लोगोंपर अत्याचार हो रहे हैं। वहाँ वाणिज्यका नाश हो गया है और खेतीकी जड़ ही नष्ट हो जानेके कारण कर-वसूली शीघ्र ही कम हो जानेका भय है।"—Mills History of British India, 1858 Vol. IV Chapter VII.

अवध—अठारहवीं सदीके प्रारम्भमें मराठोंका प्राबल्य देशमें बहुत अधिक बढ़ गया था। इनलोगोंने मुसलमानोंको प्रायः अपने कब्जेमें कर लिया। अवधके नव्वाब शुजाउद्दौला इनसे बहुत डरा करते थे, इसलिए नव्वाबने पचीस लाख रुपये सालाना अङ्गरेजोंको देनेका करारकर मराठोंसे अपनी रक्षाके लिए अङ्गरेजोंकी एक गोरी पल्टन अपने राज्यमें रख ली। यही पल्टन अन्तमें नव्वाबके सर्वनाशका कारण हुई। पल्टनके साथ ही अङ्गरेजोंका एक एजेण्ट भी लखनऊमें रहने लगा। यह १७७३ की बात है।

शुजाउद्दौलाकी मृत्युके समय अवधकी प्रजा बहुत सुखी थी। बाद आसफउद्दौला लखनऊके नव्वाब हुए। इसी समय कम्पनीने पुरानी सनद रद्द कर दी और नये नव्वाबके साथ नयी सन्धि की गयी। उस सन्धिके अनुसार नव्वाबने लगभग पौने चौबीस लाख रुपये वार्षिक आयका बनारस-प्रदेश कम्पनीको दे डाला। राज्यकी रक्षाके लिए अवधमें जो गोरी सेना रखी गयी थी, वह वहीं स्थापित की गयी। इसके सिवा और भी थोड़ीसी सेना बेचारे नये नव्वाबके सिर लादी गयी। इसके लिए ३१ लाख रुपया सालाना कम्पनीको देना पड़ता था। इस सन्धिमें सबसे बढ़कर महत्वकी बात यह थी कि इसके अनुसार अवधके नव्वाब वजीर कम्पनीके

अधीन माण्डलिक शासक हुए। सेनाके लिए जो हरसाल ३१ लाख रुपये देनेकी बात थी, वह नव्वावसे नहीं,—प्रजासे वसूल कर लेनेका अधिकार भी एक अङ्गरेज सेनापतिको दिया गया।

वारन हेस्टिंग्सने कर्नल हान्नीको मुल्की और फौजी दोनों अधिकार देकर सेना-नायक बना, अवध भेजा। भूमि-कर बढ़ाया जानेसे अब अवधकी प्रजाके कष्टोंका ठिकाना नहीं रहा। जिस क्रूरतासे गोरे अफसर अवधके गरीब किसानोंसे कर वसूल करते थे, उसका स्मरण करनेसे शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। ऐसा कौन मनुष्य है जो अवधका इतिहास पढ़कर धैर्य धारण कर सके? अङ्गरेजी अफसर वसूलीका अधिकांश अपने पाकेटमें डाल लेते थे। ८३) सैकड़ा कर वसूल करनेका तो नियम ही हो गया था, अफसरोंकी चोरीके कारण अवधके किसानोंको और भी अधिक रुपये देने पड़ते थे। इधर नव्वाबके खजानेमें चूहे दंड पेलने लगे। किसान घर-द्वार छोड़कर भागने लगे। कर चुकानेके लिए उस समय कितने ही लोगोंको अपनी गोदके प्यारे बच्चोंको भी वेचना पड़ा था। जो किसान कर नहीं दे सकते थे, वे पिंजड़ेमें बन्दकर कड़ी धूपमें रख दिये जाते थे। नव्वावने इन अत्याचारोंको देखकर सन् १७७९ में कलकत्तेके गवर्नर जनरलके पास एक अति करुणापूर्ण पत्र लिखा। उसमें आपने लिखा कि—"खर्च बहुत जियादा बढ़ जानेके कारण प्रजापर करका बोझ अधिक लादा गया है। हरसाल बाकी बढ़ती ही जा रही है। मुझे अब आपकी सेनाकी कुछ भी अवश्यकता नहीं है। इससे करकी आय घट गयी है और सरकारी कामोंमें गड़बड़ मच गयी है।" यद्यपि कोर्ट आफ डाइरेक्टरोंके १५ दिसम्बर सन् १७७५ के पत्रमें साफ लिखा था कि—"सूबा अवधमें अङ्गरेजी सेना उसी हालतमें रखी जाय, जिसे नव्वाब पसन्द करें। '......Provided it be done with the free

consent of the Nawab but by no means without it' जबतक नव्वाब उसके रखनेमें राजी हों तभीतक सेना रहने दी जाय, पर उनकी इच्छाके विरुद्ध हर्गिज न रखी जाय।" तथापि वारन हेस्टिंग्सने वहाँसे सेना हटानेसे साफ इनकार कर दिया। आपने कहा कि ऐसा करनेसे कम्पनीको बहुत तकलीफ होगी।

फल यह हुआ कि नव्वाबके यहाँ बाकी बराबर चढ़ने लगी। सन् १७८० में नव्वाबका देना डेढ़ करोड़ हो गया। इसके अतिरिक्त एक झूठे कारणपर अवधकी बूढ़ी बेगमोंपर जो अत्याचार किये गये थे, जैसी अमानुषिक-क्रूरतासे मृत नव्वाबकी बेगमोंके साथ सलूक किया गया था, वह इतिहास-प्रसिद्ध है। एडमण्ड बर्कने पार्लमेण्टमें इन सब घटनाओंका वर्णन ऐसी मर्म-भेदिनी भाषामें किया है कि उसे पढ़कर आँखोंमें आँसू भर आते हैं। भयंकर अत्याचारोंसे पीड़ित होकर अन्तमें लोगोंने बलवा कर दिया। इस समय ब्रिटिश सेनाने जो क्रूर कार्य किये थे, उनका वर्णन करनेकी हममें शक्ति नहीं है।

अब अन्यत्रका हाल सुनिये—कर्नाटकमें कम्पनीके कर्मचारियों-द्वारा किये गये अत्याचारोंके सम्बन्धमें मि० पेट्री नामक एक अङ्गरेजने कहा था कि—"सन् १७६८ में तञ्जोरको हमलोग अत्यन्त धनी, खूब उपजाऊ और आबाद समझते थे।" पर सन् १७८२ ई० में उसकी कैसी दुर्दशा हुई थी, वह भी आपहीके मुँहसे सुनिये,—

Its decline has been so rapid, that in many districts it would be difficult to trace the remains of its former opulence.

"इतने थोड़े समयके भीतर इसकी इतनी तेजीसे अवनति हुई कि आज किसी-किसी जिलेमें उसकी पहली समृद्धिके चिह्न खोजने पर भी कठिनाईसे मिलते हैं।" . . . . . .

अर्काटकी भी यही दशा हो गयी थी। अङ्गरेजलोग असलमें अर्काटसे १ करोड़ ३४ लाख ६७ हजार ९ सौ ६० रुपये कर लेते थे, पर उन्होंने २० करोड़ ३९ लाख ५० हजार ७ सौ रुपयेका दावा-कर बहुत दिनोंतक प्रजाका रक्त चूसा।

अब एकबार बम्बईपर दृष्टि डालिये। मरहठोंके समय यहाँके लोगोंसे ८० लाख रुपया कर वसूल किया जाता था। पर जिस वर्ष अङ्गरेज यहाँके शासक हुए उसके दूसरे ही साल उन्होंने इस प्रदेशसे १ करोड़ १५ लाख रुपया वसूल किया। उस समय प्रजापर कैसे अत्याचार किये गये थे, उसका वर्णन सरकारी रिपोर्टमें इस प्रकार है,—

Every effort was made.—Lawful and unlawful,—to get the utmost out of the wretched peasantry, who were subjected to tortures—in some instances cruel and revolting beyond description—if they could not or would not yield what was demanded. Numbers abandoned their homes and fled into neighbouring native states; large tracts of Land were thrown out of cultivation, and in some districts no more than one third of the cultured are remained in ocupation.

"अभागे किसानोंसे अधिक-से-अधिक धन वसूल करनेके उद्देश्यसे हर प्रकारसे कानूनी और बेकानूनी तौरपर प्रयत्न किये जाते थे। गरीब प्रजापर अनेक तरहके अत्याचार किये जाते थे। कभी-कभी वर्णनातीत भयङ्कर अत्याचारकर उनसे मनमाने रुपये वसूल करनेकी चेष्टा की जाती थी। इस प्रकार निदारुण पीड़नसे व्याकुल होकर अभागे किसान नजदीकहीके देशी राज्योंमें भाग गये। अधिकांश

जमीन किसानोंके न मिलनेसे परती पड़ी रही। किसी-किसी जिलेकी तिहाई जमीन जोती भी नहीं गयी।"

उड़ीसामें भी किसान इसी प्रकार चूसे गये थे। सरकारी रिपोर्टसे जाना जाता है कि सन् १८२२ में यहाँके किसानोंसे ८३।) सैकड़ा कर वसूल किया जानेका नियम बनाया गया था।

इस प्रकार धर्म-विरुद्ध अत्याचारकर जो धन संग्रह किया जाता था, उसका बहुत थोड़ा अंश यहाँ खर्च होता था, अधिकांश इङ्गलैण्ड भेजा जाता था। बंगालमें सन् १७६५ ई० तक ४ करोड़ ६४ लाख ४ हजार ९ सौ ८० रुपया घूस में वसूल किया गया था। यहाँके कर्मचारी दोषसे बचनेके लिए पार्लमेण्टके मेम्बरोंको भी रिश्वत दिया करते थे "ब्रिटिश भारत और इङ्गलैण्डकी जिम्मेदारी" नामक ग्रन्थमें लिखा है,—

"इङ्गलैण्डमें भी कम्पनीका सुनाम नहीं रहा था। सरकारकी ओरसे खोज करनेपर मालूम हुआ कि, एक वर्षमें कम्पनीने १५ लाख रुपये केवल घूस देने में खर्च किये थे। पर पार्लमेण्टने यह मामला वहीं दबा दिया। कारण देखा गया कि इङ्गलैण्डके सब बड़े-बड़े आदमियोंने घूस लिया था, (The recipients of bribes were amongst the highest classes and the king himself was seen to have accepted a large sum) —British India and England's Responsibilities By G. Clark M. A. (P. P. 7-9) स्वयम् सम्राट्ने भी बहुत-से रुपये स्वीकार किये थे।"

"इसी बीचमें खासकर नीच नीतिका अनुकरण करनेसे कम्पनीकी अवस्था और भी अच्छी हो गयी। इङ्गलैण्डकी गवर्नमेण्टको उस समय धनकी अवश्यकता थी। कितनोंहीने कम्पनीका कारबार अपने हाथमें कर लेनेके उद्देश्यसे सरकारको घूसमें रुपया भी

देना चाहा था, पर कम्पनीने खूब अधिक घूस देकर इनलोंगोंको चुप किया। उसने ३० लाख रुपये देकर सन् १७६६ ई० तकके लिए और अनुमति पायी।" ध्यान रहे इङ्गलैण्डके उस समयके सम्राट्ने भी घूस लिया था; सुसभ्य और भारतको घूसखोर कहनेवाली अँगरेज-जातिकी नैतिक उन्नतिके इतिहासमें इन घटनाओंका महत्व कम नहीं है।

गजनवी, नादिरशाह, अहमदशाह अब्दाली तथा नागपुरके भोंसलोंने लूटपाट की थी, उसका हिसाब तो स्कूली इतिहासोंमें भी पाया जाता है। पर कम्पनीके राज्यमें भारतके किसानोंसे कितना रुपया चूसा गया था, उसका हिसाब जल्दी कहीं नहीं मिलता।

मि० डिगवीने कहा था कि पलासीकी लड़ाईके बाद पचास वर्षोंमें भारतसे पचास करोड़से अधिक और सौ करोड़से कम पौण्ड (१ पौण्ड = १५ रुपया) इङ्गलैण्ड भेजे गये। मि० ब्रूक्स आदम्स "ला आफ़ सिविलिजेशन ऐण्ड डीके" (Law of Civilization and Decay) नामक ग्रन्थमें लिखते हैं कि,—

Possibly since the world began, no investment has ever yielded the profit reaped from the Indian plunder. P. P. 263.

"पृथ्वी जबसे प्रारम्भ हुई है, तबसे आजतकके किसी व्यवसायसे इतना लाभ नहीं हुआ है, जितना भारतकी लूटसे हुआ है।" इस लूटका परिणाम यह हुआ कि अङ्गरेज तो मालामाल हो गये और भारत दरिद्र हो गया। सन् १८८० ई० में सरकारकी आज्ञासे अर्ल कोमरने हिसाब करके स्थिर किया था कि भारतमें प्रत्येक मनुष्यकी वार्षिक आमदनी २७) है। उसी समय भारतके सच्चे सपूत दादाभाई नौरोजीने हिसाब लगा कर दिखाया कि भारतमें प्रत्येक आदमीकी आय २०) से अधिक नहीं है। लार्ड कर्जनने

३०) बताया है। कुछ दिन हुए मि० डिगवीने अत्यन्त परिश्रमसे यह दिखाया कि भारतवासियोंकी आमदनी आदमी पीछे १८॥-) साल है।

इस आमदनीका अधिकांश-भाग खेतीकी आमदनी है। इसका प्रायः सातवाँ हिस्सा या २।≈) सरकारको कर दिया जाता है। आयके हिसाबसे इङ्गलैण्डके रहनेवालोंको प्रति पौंड १ शिलिङ्ग ८ पेन्स अर्थात् १।) और भारतवासियोंको (लार्ड कर्जनके कथनानुसार वार्षिक आय ३०) रखनेसे, १॥) राज-कर देना पड़ता है। जो हो, मि० डिगवीके हिसाबसे यहाँके धनी, दरिद्र, बालक, वृद्ध, युवक सबकी वार्षिक आय प्रति मनुष्य १५।१६ रुपयेसे अधिक नहीं है। सञ्चित अर्थका हिसाब करके आपने बतलाया है कि भारतवासियोंका सञ्चित अर्थ मय नकद और जेवरोंके प्रति मनुष्य केवल १४) है। अब इसके साथ जरा अन्य देशोंके लोगोंकी वार्षिक आयसे तुलना करके देखिये—

देश		प्रति आदमी वार्षिक आय	देश		प्रति आदमी वार्षिक आय
रूस	,,	१६५)	जर्मनी	,,	३३०)
इटाली	,,	१८०)	कनाडा	,,	३९०)
आस्ट्रिया	,,	२२५)	फ्रांस	,,	४०५)
स्पेन	,,	२४०)	बेलजियम	,,	४२०)
स्वीजरलैण्ड	,,	२८५)	अमेरिका	,,	५८५)
नारवे	,,	३०९)	आस्ट्रेलिया	,,	६००)
हालैण्ड	,,	३३०)	स्काटलैंड	,,	६२५)

इङ्गलैण्डवासियोंकी वार्षिक आय फी आदमी ६३०) है और सञ्चित धन फी आदमी ४५००) है। २२ फरवरी सन् १९२३ में लन्दनके जज मि० मेकर्डीने एक मुकदमेका फैसला करते हुए बतलाया था कि इङ्गलैण्डके धनीपात्रोंका दो हजार पौण्ड यानी ३०

हजार रुपयेसे अधिक केवल कपड़ेका खर्च है। अब इस प्रकार हिसाब करके देखनेसे अँगरेजोंके मालामाल होने और भारतीयोंके दरिद्र होनेका अच्छी तरह पता चल जाता है। आश्चर्य है कि प्रत्येक भारतीयकी वार्षिक आमदनी १५।१६ रु० है। पर यहाँके कैदियोंके लिए सरकार फी कैदी ५०) सालाना खर्च करती है। सारांश यह कि चोरी डकैती करके जेल जानेवालोंसे भी भारतीय किसान अधिक बुरी अवस्थामें हैं। बलिहारी है इस राज्य-प्रबन्ध की।

सन् १८८० ई० में वक्तृता देते हुए प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डा० हण्टरने कहा था कि भारतमें चार करोड़ आदमी रोज आधा पेट खाकर जीवन बिताते हैं। पर यह हिसाब बहुत पहलेका है। इस समय तो आधा पेट खाकर जीवन-निर्वाह करनेवालोंकी संख्या १६ करोड़से भी अधिक है। बङ्गालके छोटे लाट सर चार्ल्स इलियटने युक्त-प्रदेशमें सेटलमेण्ट (स्थायी बन्दोबस्त) अफसरका काम करते समय कहा था कि,—

"I do not hesitate to say that half of our agricultural population never know from year's end to year's end what it is to have their hunger fully satisfied."

अर्थात् "ब्रिटिश-भारतके आधे किसान वर्षभरमें एकदिन भी पेटभर खाना नहीं पाते। पेटभर खानेसे क्या सुख होता है, सो तो बेचारे जानते ही नहीं।"

शासनके कुप्रबन्धसे भारतका सम्बन्ध अकालके साथ दिन-पर-दिन घनिष्ट हुआ जाता है। अङ्गरेजोंके लिखे इतिहाससे ज्ञात होता है कि यद्यपि १८ वीं सदीमें भारतकी दशा बिल्कुल बिगड़ गयी थी, तथापि उन सौ वर्षोंमें चार बारसे अधिक अकाल नहीं पड़ा था—सो भी वे अकाल एक ही प्रदेशमें पड़े थे। पर उन्नीसवीं

सदीमें धीरे-धीरे अँगरेजी राज्यके फैलते ही इस देशमें देश-व्यापी अकालोंका डेरा जम गया। यवन-राजत्व-कालमें अलाउद्दीनखिलजीके समय सन् १२६० में अकाल पड़ा था। बाद १३४३ में दिल्ली तथा उसके आस-पास अकाल पड़ा। फिर २०० वर्षतक कोई अकाल नहीं पड़ा। परन्तु अँगरेजी राज्यमें सन् १८०१ से १६०० तक भारतमें ३१ अकाल पड़े और ३ करोड़ २४ लाख आदमी मरे। सन् १८७७ से १६०१ तक प्रति मिनट २ भारतीय-लाल "हा अन्न ! हा अन्न !!!" कर भूखकी घोर यन्त्रणासे छटपटा-छटपटाकर मर गये, पर सरकारने कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया। इस हृदय-विदारक दुर्घटनापर हत-भागोंको सम्बोधन कर डिगबी महाशयने कहा था—

You have died, you have died uselessly.

अर्थात् "तुम मर गये ! तुम बिना कारण मर गये !"

मि० डिगबीने दिखाया है कि १७६३ से १६०० ई० तक पृथ्वीभरमें युद्धसे पचास लाखसे अधिक आदमी नहीं मरे। पर इसी समय भारतमें सवा दो करोड़ आदमी भूखसे मरे। गाय, भैंस, आदि पशुओंका तो कुछ ठिकाना ही नहीं कि कितने मरे। इन दिनों तो ऐसा कोई वर्ष बीतता नजर ही नहीं आता, जिस वर्ष अकाल अपना भयंकर रूप न दिखाता हो। अभी गत सन् १६२२ में ही पूर्वी बंगालके अकालने लाखों भारतीयोंको निगल लिया है। इधर सन् १६२७ से तो मानो अकालने भारतमें ही अड्डा जमा लिया है। कहा नहीं जा सकता कि इन दो वर्षोंमें कितने आदमी मरे और कितने दु भक्ष पड़े।

पाठक पूछ सकते हैं कि भारतीय अकालोंके साथ अङ्गरेजोंकी वाणिज्य-नीतिका क्या सम्बन्ध है। अतिवृष्टि तथा अनावृष्टिपर अङ्ग-रेजोंका क्या वश ? पर जो लोग ऐसा समझते हैं, उन्हें इस विषयके गूढ़तत्व मालूम नहीं हैं। इस विशाल भारतवर्षके इतिहासमें गत

दो हजार वर्षोंके भीतर ऐसी कोई भी अभावनीय घटना दृष्टिगत नहीं होती, जिससे भारतमें सब जगह एकसाथ अनावृष्टिका होना सिद्ध हो। असल बात यह है कि यहाँका अन्न अँगरेजलोग दूसरे देशको ढो ले जाते हैं। फसलका मरना भारतके अकालका सच्चा कारण नहीं है। पृथ्वीमें ऐसे देश बहुतसे हैं, जहाँ खानेके लिए अन्न बिलकुल ही कम पैदा होता है। विलायतमें ही जो अन्न पैदा होता है, उससे वहाँके लोगोंका वर्षभरमें ९१ दिनसे अधिक पेट नहीं भर सकता। फिर भी अँगरेजोंको वर्षके बचे हुए २७४ दिन भूखों नहीं मरना पड़ता। जर्मनीके लोगोंकी भी यदि वे वहाँके अन्नके भरोसे रहें, तो सालमें १०२ दिन उपवास करना पड़े। पर इन देशोंमें लोग चैनकी वंसी वजाते हैं। किन्तु भारतवासी तो अपनी एक वर्षकी उपज कम-से-कम तीन वर्षतक खा सकते हैं। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यदि अङ्गरेजी सरकार यहाँका माल बाहर न जाने दे तो साल-दो-सालतक भारत-व्यापी अकाल पड़नेपर भी यहाँके लोग भूखों नहीं मर सकते।

मुसलमानोंके राज्यमें अकाल पड़नेपर अबकीसी उदासीनता नहीं दिखायी जाती थी। एकबार शाहजहाँके शासन-कालमें अकाल पड़ा था। उस समय प्रति सप्ताह ५० हजार रुपया बाँटा जाता था। याद रहे कि उस समय १) की क्रय-शक्ति आजकलकी अपेक्षा पांचगुनी थी।

अमेरिकामें जब अनावृष्टि होती है तब वहाँकी सरकार विद्युत् कलासे पानी बरसाती है। क्या यहाँकी सरकार ऐसा नहीं कर सकती? पर अङ्गरेजलोग भारतीय किसानोंके लिए एक कौड़ी खर्च करना चाहें तब तो? सन् १८०५ तक भारतसरकार कृषकोंके लिए दस लाख रुपया वार्षिक खर्च किया करती थी, पर अब तीस लाख प्रति वर्ष खर्च करती है, जो कि एक तरहसे इस विशाल

देशके लिए नहींके बराबर है। अब जरा किसानोंके लिए अन्य देशवालोंका खर्च भी देखिये,—

नाम देश	वार्षिक व्यय
रूस	६ करोड़
अमेरिका	३ करोड़ २० लाख
इटली	४० लाख

ऊपरकी तालिकासे सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि हमारे साथ अङ्गरेजोंकी कितनी अधिक सहानुभूति है। भारतमें ८५ प्रति सैकड़ा कृषक हैं। इसलिए ब्रिटिशको अधिक आमदनी किसानोंसे हैं। पर किसानोंके लिए गवर्नमेण्टकी यह नीति है। एक तो यहाँके किसानोंका रक्त पहले ही ऐसी निर्दयतासे चूस लिया गया था कि अभी बहुत दिनोंतक उनकी दशा योंही न सुधरती, दूसरे इतना रक्त चूसनेपर भी अर्थ-पिपासा कम न होनेके कारण अङ्गरेजलोग भारतीय किसानोंका रक्त अभीतक चूसते ही जा रहे हैं। कौन विचारवान् पुरुष अपने हृदयपर हाथ रखकर कह सकता है कि अङ्गरेजोंके निर्दयतापूर्ण राक्षसी व्यवहारोंके सिवा भारतीय किसानोंके दुःख भोगनेका दूसरा कारण भी है?

जो समाज इस प्रकार दरिद्र है, उस समाजमें रोगका बढ़ना भी अनिवार्य्य है। इसीसे भारतवासियोंके शरीर दिन-पर-दिन रोगोंके घर बनते जा रहे हैं। रोज नये-नये रोगोंका उदय हो रहा है। पहले यूरोपमें भी बार-बार प्लेग होता था और उससे हजारों आदमी मरते थे। पर भारतका धन शोषणकर जबसे यूरोपने अपनी दरिद्रता दूर की, तबसे वहाँ प्लेग नहीं होता। इधर भारतमें दरिद्रताके साथ महामारीका प्रकोप बढ़ने लगा। सन् १८९५ ई० में भारतमें पहले-पहल प्लेग शुरू हुआ। सन् १८९५ और १८९६ दो वर्षोंमें अन्दाजन कोई ढाई हजार भारतीय प्लेगसे मरे थे।

इसके बाद देशी राज्यमें भी प्लेग फैल गया। सन् १८९८ में १ लाख १८ हजार आदमी प्लेगसे मरे। क्रमशः बढ़ते-बढ़ते सन् १९२७ में केवल इस रोगसे १४ लाख १२ हजार आदमी मरे। १९१८ में केवल इनफ्लूएंजासे ८० लाख मौतें हुई थीं। हैजा, शीतला, ज्वर आदिसे कितनी मौतें हुई, विस्तार-भयसे उन्हें नहीं लिखा जा रहा है। इसी दरिद्रताके कारण भारतमें ज्वरका जोर भी बढ़ा। सरकारी मेडिकल रिपोर्टमें लिखा है कि,—

Fever is a euphemism for insufficient food scanty clothing and unfit dwelling.

अर्थात् "अच्छा भोजन और अच्छे वस्त्रका अभाव तथा बुरे स्थानोंमें रहना ही ज्वर-रोगका प्रधान कारण है।" प्रतिवर्ष ब्रिटिश-भारतमें पाँच करोड़से अधिक आदमियोंको ज्वर होता है। जिनमेंसे पचास लाखसे अधिक आदमी मर जाते हैं। आजसे ३० वर्ष पहले प्रति वर्ष ज्वरसे मरनेवालोंकी संख्या १५ लाखसे कम थी। इन रोगोंके कारण भारत-वासियोंकी आयु भी घटती जा रही है। अङ्गरेजोंकी आयुका परिमाण प्रति आदमी ५१·५ वर्ष है। अमेरिका ५७·५ वर्ष, फ्रांस ४८·५ वर्ष, जर्मनी ४७·४ वर्ष, इटली ४७ वर्ष, जापान ४४·३ वर्ष है। पर डिगवी महाशयने दिखलाया है कि भारतीयोंकी आयु प्रति आदमी २३ वर्षसे अधिक नहीं है। सन् १९२८ की रिपोर्टमें भी भारतीयोंकी आयु प्रति आदमी २३·७ वर्ष ही निकली है। महाशय गोपालकृष्ण गोखलेने बड़ी व्यवस्थापिका सभामें सरकारी रिपोर्टसे दिखलाया था कि सन १८८० में ब्रिटिश भारतमें हजार पीछे २३ आदमी मरे थे। किन्तु सन् १८८५ में प्रति हजार २६, १८८९ में २८, १८९२ में ३२ और १९०० में प्रति हजार ३९ आदमी मरे। तबसे बराबर भारतमें मृत्युकी संख्या बढ़ती ही जा रही है। सन् १९२८ की Year Book में निकला है कि

सन् १९२४ में भारतमें प्रति मील ३४·४५ बच्चे पैदा हुए और २८·४९ मरे। इसी प्रकार १९२५ में भी ३३·६५ पैदा और २४·७२ मृत्युयें हुईं। दूसरी ओर उन्हीं दिनोंमें इङ्गलैण्डमें किस कदर मृत्यु संख्या घटी थी, सो भी देखिये,—१८८३ ई० में इङ्गलैंडमें प्रति हजार २१ आदमी, १८८९ में १८ और १८९९ में प्रति हजार केवल १६ आदमी मरे।

इस प्रकार वंशक्षयके साथ पशुओंकी संख्या भी भारतमें घटती ही जा रही है। आस्ट्रेलियाकी लोक-संख्या भी केवल ४० लाख है, पर वहाँके पालतू पशुओंकी संख्या ११ करोड़ ३५ लाख ५० हजारसे भी कुछ अधिक है। उसके अनुसार भारतवर्ष जैसे कृषि-प्रधान और अहिंसावादी गोभक्त देशमें पशुओंकी संख्या कम-से-कम २६,२८० करोड़ चाहिए थी। पर समूचे भारतमें इन पशुओंकी संख्या १४ करोड़ ९६ लाख १२ हजार ही है। इसमें भी गाय-बैलकी संख्या तो केवल ७ करोड़ ६८ लाख ३ हजार ही है। यह संख्या भी दिन-पर-दिन कम होती जा रही है।

इन्हीं कारणोंसे खेतीका भी पतन होता जा रहा है। मि० डिगवी कहते हैं कि १८८२ के बादसे ब्रिटिश-भारतमें ४ करोड़ २० लाख बीघा जमीन बढ़ी है। पर खेतीकी आय २० वर्ष पहलेकी आयसे ६४ करोड़ ११ लाख ६५ हजार ४ सौ ३८ रुपया कम हो गयी। लोगोंके पास यदि पहलेकासा पैसा होता, खाद डालकर जमीनकी उपज बढ़ानेकी शक्ति होती, तो कृषि-योग जमीनकी ऐसी दुर्दशा क्यों होती? मि० हण्टरने कहा है कि पश्चिमोत्तर प्रदेशमें अकबरके समय एक बीघामें ४ मन ३० सेर गेहूँ पैदा होता था, पर अब ३॥ मनसे अधिक नहीं होता। इङ्गलैण्डमें सात मनसे भी अधिक प्रति बीघामें पैदा होता है। वैज्ञानिक प्रणालीसे खेती करनेके कारण बेलजियममें प्रति बीघा ३२ मनसे भी अधिक गेहूँ पैदा होता है।

अङ्गरेजी राज्यके प्रारम्भमें इस देशके हतभाग्य किसानोंका रक्त किस तरह चूसा गया, उसका विवरण पहले दिया जा चुका है। हम पहले कह आये हैं कि सन् १८१० ई० में बम्बई प्रदेशसे भूमि-कर ८० लाख रुपया वसूल किया जाता था। पर सन् १८८३ में अङ्गरेजोंने उसे बढ़ाकर डेढ़ करोड़ कर दिया। किसानोंकी अवस्था बहुत ही शोचनीय हो गयी और प्राणोंपर आ बीतनेपर सन् १८७७ ई० में उन्होंने बलवा कर दिया। स्थान स्थानपर बलवा होनेके कारण अङ्गरेजलोग घबड़ा गये। इस बलवेका कारण जाननेके लिए कमीशन बिठाया गया। स्थिर हुआ कि बार-बार बन्दोबस्तकर हदसे जियादा कर बढ़ाना ही बलवेका कारण है। इतना होनेपर भी अँगरेजोंकी लालच कम नहीं हुई। कुछ तो स्थायी बन्दोबस्त हुआ और अधिकांश अस्थायी ही रह गया।

गत १९ वीं सदीके प्रारम्भमें यहाँके शासकोंने बङ्गालके समान ब्रिटिश-भारतभरमें भूमि-करका स्थायी बन्दोबस्त करनेका प्रयत्न किया। १८०७ में सर टाम्स मनरोने मद्रासकी प्रजाके साथ जो बन्दोबस्त किया था, वह प्रायः बंगालके स्थायी बन्दोबस्तके समान ही था। विलायती अनुसन्धान-समितिके सामने गवाही देते हुए आपने यह बात स्वीकार की है। बम्बई प्रदेशमें भी पहले ऐसा ही बन्दोबस्त किया गया था। १८०३ में इलाहाबाद और अवधके जिले अँगरेजोंके हाथ लगे। उस समय उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि वहाँ भी स्थायी बन्दोबस्त किया जायगा। प्रजाको भी इसकी पूरी आशा थी। इसकी पूरी जाँच करनेके लिए कमीशन नियुक्त किया गया। उसने १३ वीं अप्रैल सन् १८०८ को अपनी रिपोर्ट पेश की। इस रिपोर्टमें स्थायी बन्दोबस्तके सब लाभ स्वीकार किये गये हैं; पर सरकारी आय कम हो जानेके भयसे और प्रजाका भी अनिष्ट होनेके भयसे (!!!) इन खास कमिश्नरोंने उस समय इला-

हाबाद और अवधमें भूमि-करका स्थायी बन्दोबस्त करनेसे सरकारको मना किया। इसी समयसे स्थायी बन्दोवस्तके विरुद्ध सरकारी अफसरोंका आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। १८०७ ई० के जून महीनेमें सरकारने प्रजासे शपथपूर्वक प्रतिज्ञा की थी कि १८०७ का भूमि-कर यदि जमीनकी अवस्था अच्छी रही तो कोर्ट आफ डाइरेक्टरोंकी आज्ञा से चिरस्थायी कर दिया जायगा। पर कम्पनी धनका लोभ सम्वरण नहीं कर सकी। कई सहृदय शासकोंने प्रजाका पक्ष लेकर बहुत कुछ प्रयत्न किया, पर फल कुछ न हुआ। लार्ड हेस्टिंग्सने भी अन्तिम प्रयत्न किया था। आपने कोर्ट आफ डाइरेक्टरोंको लिखा कि—"हमलोगोंकी सबकी यह राय है कि पाये हुए या जीते हुए प्रदेशोंमें अब भूमि-करका स्थायी वन्दोबस्त किया जाना चाहिये। यह बन्दोबस्त चाहे स्थिर लगानके हिसाबसे किया जाय, अथवा भूमि-करकी दर सदाके लिए स्थिर कर दी जाय।"

लार्ड हेस्टिंग्सको उत्तर देते हुए पहली अगस्त १८२१ को कोर्ट आफ डाइरेक्टरोंने साफ-साफ लिखा कि—"अब भारतमें और कहीं स्थायी बन्दोबस्त नहीं किया जायगा।" इस तरह कम्पनीने अपनी पवित्र प्रतिज्ञापर लात मारकर लोगोंको सदाके लिए निराश कर दिया।

चिरस्थायी बन्दोवस्तसे निराश होनेपर इस बातकी चेष्टा की जाने लगी कि गवर्नमेण्ट किस हालतमें कितना राजस्व वसूल कर सकती है, यह सदाके लिए स्थिर किया जाय। तदनुसार लार्ड रिपनने इस विषयमें कुछ नियम बनानेका प्रबन्ध भी किया था, पर उनके भारत छोड़ते ही नौकरशाहीने फिर स्वेच्छाचार प्रारम्भ कर दिया। अथच जमींदारलोग किस हालतमें रैयतसे कितना कर ले सकते हैं, इस बातका उन्होंने फौरन कायदा बना डाला। यदि नौकरशाही अन्यायसे भी जमीनपर कर बढ़ावे तो भी प्रजा चूँ तक नहीं कर सकती। बहुत आपत्ति करनेसे हाँ-में-हाँ

मिलानेवाले कुछ स्वार्थी, विचारके लिये नियुक्त कर दिये जाते हैं। प्रजाके हितार्थ बड़ोदाके महाराज श्रीमान् सयाजीराव गायकवाड़ने जो नियम बनाया है, वह शतमुख सराहनीय है। उन्होंने स्पष्ट घोषणा की थी कि सेटलमेण्टके अफसर यदि किसीकी भूमिपर अनुचित कर बिठावें, तो उन अफसरोंपर साधारण अदालतोंमें नालिश की जा सकती है। पर ब्रिटिश-राज्यमें ऐसा नियम न होनेके कारण अभागे ब्रिटिश भारतीय किसानोंको सेटलमेण्ट (Settlement) अफसर जो करें, उसीको चुपचाप मान लेना पड़ता है।

१६०५ में बजेटकी आलोचनाके समय स्वर्गीय गोखलेने बड़े लाटकी सभामें कहा था कि भारतके किसानोंसे यूरोपकी तुलनामें बहुत अधिक कर लिया जाता है। जिस जमीनमें सौ रुपयेकी फसल पैदा होती है, उस भूमिसे यूरोपमें इस प्रकार कर लिया जाता है,—

इङ्गलैण्डके युक्त राज्यमें	८।-)	आस्ट्रिया	४॥=)
इटली	७)	जर्मनी	३)
फ्रांस	४॥-)	बेलजियम	२॥-)
हालैण्ड	२॥-)		

इसी करमें चौकीदारी, स्टाम्प, जल प्रभृति सब करोंका समावेश है। फ्रान्समें तो पथ-कर (सड़क आदि) तकका इसीमें समावेश है। पर भारतमें इन सब करोंका भूमि-करमें समावेश नहीं किया जाता। सरकारी हिसाबसे मालूम होता है कि यूरोपके किसी भी देशके किसानोंको सब मिलाकर ६) सैकड़ा से अधिक कर नहीं देना पड़ता। पर भारतके अभागे दरिद्र किसानोंको १५) और कहीं-कहीं २०) सैकड़ा केवल भूमि-कर देना पड़ता है। रमेश बाबूने दिखलाया है कि विलायतकी गवर्नमेण्ट को १५ लाख रुपया सालसे अधिक कर नहीं मिलता, पर भारतकी प्रजासे ३० करोड़ रुपये वसूल किये जाते हैं। जहाँ स्थायी बन्दोबस्त है, वहाँ भी लगानके

अतिरिक्त बेचारे भोले-भाले किसानोंसे कहीं एकड़ कहीं बाघ कहीं कुछ कहीं कुछ वसूल किया जाता है। जहाँ बन्दोबस्त नहीं हुआ है, वहाँकी तो बात ही न्यारी है। बार-बार जमीन नापकर लगान बढ़ाया जाता है। करोड़ों रुपये इसी तरह खींचे जाते हैं।

सन् १७९३ में लार्ड कार्नवालिसने बङ्गालमें भूमि-करके सम्बन्धमें चिरस्थायी बन्दोबस्त किया। अन्यान्य प्रदेशोंमें भी वैसा बन्दोबस्त करना तो दूर रहा, उल्टे नौकरशाहीने बङ्गालका बन्दोबस्त भी तोड़नेका विचार किया। पर आन्दोलनके भयसे उसमें असफलता हुई। फिर उसने वहाँ पथ-कर (रोड-सेस) चौकीदारी कर आदिके नामसे अनेक कर बिठाना शुरू किया। कहा गया कि इस करसे गाँवोंके रास्ते दुरुस्त किये जायँगे। यह भी कहा गया था कि ये रुपये 'रोड-सेस फंड' के नामसे अलग रखे जायँगे और गाँववालोंकी रायके बिना इस फण्डमेंसे एक छदाम भी खर्च नहीं किया जायगा। पर सरकार अपनी प्रतिज्ञाको तोड़नेमें ज़रा भी संकुचित नहीं हुई। इसके कुछ ही दिनों बाद यह धन बड़ी-बड़ी सड़कें, स्कूल, अस्पताल आदि बनानेमें खर्च किया जाने लगा। १८८५ ई० में इस फण्डका नाम भी मिटा डाला गया। इसके बाद यह 'डिस्ट्रिक्ट फण्ड' कहलाने लगा। पर यह भी बहुत दिन न चल सका। गत सन् १८९९ ई० में सर हर्बर्ट रिजलेने कहा कि बङ्गालमें "डिस्ट्रिक्ट फण्ड' नामका कोई अलग धन-भण्डार ही नहीं है। इस प्रकार बङ्गालकी प्रजा फँसायी गयी। सड़क आदिके सम्बन्धमें बेचारे किसानोंकी कर देनेके पहले जो दुर्दशा थी; कर लगनेके बाद भी वह वैसी ही बनी रही।

देशमें नहर, खाल आदि खोदकर किसानोंका उपकार करनेके लिए उनपर 'पब्लिक वर्क्स सेस' नामक कर बिठाया गया था। पर इस मदका रुपया भी अनेक तरहकी सरकारी इमारतें बनाने

ही अपव्यय किया जाने लगा। विलायतकी एक गोरी कम्पनी उड़ीसामें अपने लाभके लिए एक नहर काट रही थी। इसमें उसे हानि होने लगी। पर भला गोरी कम्पनीका भारतमें पूँजी लगाकर घाटा सहना, हमारी सरकार कब देखने लगी? झट सरकारने उक्त कम्पनीको मूलपूँजीके ऊपर कुछ और लाभ देकर वह नहर खरीद ली। इसमें पैसे लगे दरिद्र किसानोंके। सर जार्ज काम्बेल सरीखे योग्य व्यक्तियोंने सरकारको यह अन्याय काम करनेसे रोका था, पर सुनता कौन है? गोरी कम्पनीका दिवाला जो निकलता था! अन्यान्य प्रदेशोंकी गरीब प्रजापर भी इसी प्रकारके अन्याय कर बिठाये गये थे। अभी हालहीमें जर्मन-युद्धके समय सरकार भारतीय प्रजासे मदद ले रही थी। उस समय देहातोंमें गरीब किसानोंसे आठ आना फी हलके पीछे यह कहकर लिया गया था कि सरकारने लड़ाईके लिए कर लगाया है। मैंने चर्चा चलनेपर अपने गाँवमें एक आदमीसे पूछा कि यह आठ आना तुमने किस चीजका दिया? उसने उत्तर दिया, भाई हमें यह नहीं मालूम। मैंने कहा बिना समझे तुमने क्यों दिया? उसने कहा—क्या जबर्दस्त सरकारसे अपना घर नीलाम करावें? हाय! कैसा अंधेर है! ऐसे ऐसे झूठे बहाने करके गरीबोंसे पैसे लिये जाते हैं। यदि किसानोंको उस आठ आने पैसेका सच्चा रहस्य समझाया गया होता तो शायद वे लाखों रुपये निश्चय ही गरीब किसानोंके कफनके लिए बच गये होते। हर्ष है कि वे पैसे पीछे बहुतसे लोगोंको वापस मिल गये।

यहाँपर एक करका और भी उल्लेख करना जरूरी है। सन् १८७७ ई० में मद्रास-प्रदेशमें घोर अकाल पड़ा। अकालसे लोगोंकी रक्षा करनेके लिए भारत-सरकारके अर्थ-सचिव सरजान स्ट्राचीने दरिद्र भारतवासियोंपर 'दुर्भिक्ष-निवारक कर' नामक एक कर बिठाया। निश्चय हुआ कि इस करसे प्रतिवर्ष डेढ़ करोड़ रुपया

जमा होगा। फिर जहाँ कहीं अकाल पड़ेगा, वहाँके आदमियोंको इस कोषसे मदद दी जायगी और जिस वर्ष अकाल बिलकुल नहीं पड़ेगा, उस वर्ष इस धनमेंसे कुछ-कुछ सरकारी कर्ज चुकाया जायगा। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि प्रतिवर्ष शासनका कार्य सम्पन्न करनेपर राजकोषमें जो धन बाकी रह जाता है, वही इस काममें खर्च किया जाता है, न कि इसके लिए अलग कर बिठाया जाता है। पर दयालु नौकरशाहीने वैसा न कर अकाल-पीड़ित प्रजापर ही और कर लादना उचित समझा। कर बिठानेके समय सरकारने स्पष्ट कहा था कि दुर्भिक्ष पीड़ित प्रजाका क्लेश दूर करनेके सिवा और किसी काममें ये रुपये नहीं लगाये जायँगे। अकाल-फण्डमें अन्य देशों, खासकर अमेरिका और फ्रांसके धनीपात्रोंने बहुत बड़ा दान दिया था। सन् १९२८ में १०।१२ करोड़ रुपये अन्य देशोंसे प्राप्त दानके रूपमें सरकारके पास जमा थे,—भारतीय दानसे कोई मतलब नहीं।

किन्तु यह प्रतिज्ञा भङ्ग करनेमें सरकारको कुछ भी समय नहीं लगा। सन् १८७८-७९ ई० में यह कर बिठाया गया और उसके दूसरे ही वर्ष इसके रुपये दूसरे कामोंमें खर्च किये जाने लगे। देशके नेताओंने प्रजाकी ओरसे इस अन्यायका बहुत विरोध किया। बाद सरकारने स्वीकार किया कि ये रुपये दुर्भिक्ष-निवारण या कर्ज चुकानेमें ही खर्च किये जायँगे। इसके साथ ही यह भी स्थिर किया कि रेल बनाना और नहर खोदना भी आजसे दुर्भिक्ष-निवारणका काम समझा जायगा। अतः इस काममें भी ये रुपये खर्च किये जायँगे।

किन्तु इस प्रतिज्ञाका भी सरकारने पालन नहीं किया। कारण सन् १८८१ से सन् १८९५।९६ तक १५ वर्षोंमें सरकारने दुर्भिक्ष-निवारण, रेल-निर्माण और नहर खोदनेमें १५ करोड़से अधिक रुपये

खर्च नहीं किये। उधर प्रतिवर्ष डेढ़ करोड़के हिसावसे १५ वर्षोंमें उक्त करसे साढ़े वाईस करोड़ रुपये वसूल हुए थे। इसमेंसे १४ करोड़ रुपये प्रतिज्ञा किये हुए कामोंमें और ८॥ करोड़ रुपये अन्यान्य कामोंमें खर्च किये गये। इन रुपयोंसे सरकार ऋणका कुछ अंश चुका सकती थी। यद्यपि यह कर्ज गवर्नमेएटके फिजूल खर्चके कारण ही हुआ है और हो रहा है, पर हमारी दयालु सरकारने वंगाल, नागपुर और इण्डियन मिडलैंड रेल कम्पनियोंको उनकी नुकसानी भर देनेके लिए गरीव प्रजाके ३ करोड़ ५८ लाख ४० हजारसे भी अधिक रुपया दे दिया। वाद छः वर्षके भीतर ही फिर सरकारने इन्हीं दो रेल कम्पनियोंको १ करोड़ २३ लाख ६४ हजार रुपये दिये। १८९६ से १६०० तक दुर्भिक्ष-निवारणके लिए वहुतसे रुपयोंका कर्ज सरकारपर हो गया। यदि दुर्भिक्ष-निवारण कोषके रुपये पानीकी तरह न वहाये गये होते, तो प्रजापर व्यर्थ इतना कर्जभार क्यों होता? जनताको समझ लेना चाहिए कि सरकारपर जो कुछ रुपये कर्ज होते हैं, वे प्रजासे ही किसी-न-किसी रूपमें वसूल किये जाते हैं। इसलिए किसीका यह समझ वैठना उचित नहीं कि सरकारके कर्जसे भारतीयोंका क्या सम्वन्ध है।

कहना नहीं होगा कि ये रुपये उस प्रजाके थे, जो कभी भी भरपेट अन्न नहीं खाती। पर इसे कहे कौन? स्पष्ट आलोचकोंकी भी तो सरकार जानी-दुश्मन है! पञ्जावके भूतपूर्व कमिश्नर मि० एस० एस० थारवर्न करीव ३८ वर्ष भारतमें रहे थे। आप यहाँकी अवस्थासे पूर्ण परिचित हो गये थे। सन् १८९६ में आपने भारत-सरकारको लिखा कि पञ्जावके प्रायः आधे किसान या तो एकदम चौपट हो गये हैं, या गहरे कर्जमें डूव गये हैं। आपने पञ्जावके भिन्न-भिन्न स्थानोंके ७७५ गाँवोंकी जाँच की थी। आपने दिखलाया था कि पञ्जावपर अङ्गरेजोंका कब्जा होते ही वहाँका कर एकदम

बढ़ा दिया गया। आपकी बातोंसे ज्ञात होता है कि एक तो अधिक लगान, दूसरे लगान वसूल करनेमें निहायत कठोरता और तीसरे उद्योग-धन्धेका सर्वनाश, इन्हीं कारणोंसे प्रजा दुःखी है। आपने लगान कम करनेके लिए बहुत जोर दिया।

पर सरकार साफ बात नहीं सुनना चाहती। इसलिए इस न्याय-प्रिय स्पष्टवादी राजपुरुषको अपनी नौकरीसे इस्तीफा देना पड़ा। मि० स्मीटन ब्रह्मदेशके कर-विभागके कमिश्नर थे। १६००--०१ साल-के आय-व्ययकी आलोचनाके समय आपने बड़े लाटकी सभामें कहा कि—"गत पूर्व वर्षके अकालपर विचार करनेसे कहना पड़ता है कि बम्बई, मद्रास और पञ्जाबके किसानोंसे ६० लाख रुपये वसूल करना अच्छा नहीं हुआ।" इसी समय आपने यह भी कहा था कि गवर्नमेण्टकी कर-नीतिके दोषसे ही देशमें बार-बार अकाल पड़ते हैं। बस इसी स्पष्टोक्तिके कारण स्मीटनकी उन्नति बन्द हो गयी। लोगोंने सोचा था, आप शीघ्र ही ब्रह्मदेशके छोटे लाट होंगे, पर वैसा न होकर आपको नौकरीसे अलग होना पड़ा। आज भी रात-दिन यही देखा जा रहा है कि कितने ही नेता, यहाँतक कि स्वर्गीय लोकमान्य तिलक, महात्मा गान्धी जैसे अवतारी पुरुष भी स्पष्टवादिताके कारण ही सरकारके कोप-भाजन बने और बन रहे हैं।

आजसे पचीस वर्ष पहले देहातोंमें लोग दिनका अधिक समय खेल-कूद दण्ड-कसरतमें बिताया करते थे। सब-के-सब खूब हृष्ट-पुष्ट होते थे। इस समयकी अपेक्षा उस समय खेतीपर भी लोग कम ध्यान देते थे, पर आजसे अधिक सुखी थे; किन्तु आज दिनरात लोगोंको काम करना पड़ता है। दिन-पर-दिन शरीर दुर्बल हुआ जाता है। खेलने-कूदनेका नाम-निशान भी मिटा जा रहा है, खेती भी खूब जोरोंसे हो रही है। पर खानेका ठिकाना नहीं। इन

पंक्तियोंके लेखकका व्यक्तिगत अनुभव है कि इस समय भारतमें ९६ प्रति सैकड़ा किसान कर्जदार हैं। वाकी ४ प्रति सैकड़ामेंसे भी हजारमें १० ही ऐसे निकलेंगे जो सम्पन्नतापूर्वक भरपेट अन्न और आवश्यकतानुसार घी-दूध खाते होंगे। कानपुरके सहकारी कलेक्टर मि० वार्डने कहा था—

I have calculated the cost of food of a male at £ 1. 12 s. per annum, of a female £ 1. 7s. 4d. and a minor 18s. 8d.

अर्थात् "मेरे हिसाबसे एक पुरुषका वार्षिक खानेपीनेका खर्च १६) स्त्रीका १३||=)||| और बालकका ९|~)|| होता है।"

जहाँके पूर्ण-वयस्क आदमियोंको दो वक्त खानेके लिए केवल तीन पैसे रोज मिलते हैं, वहाँके लोगोंके सुख-दुःखका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। जरा विहारके किसानोंका हाल सुनिये। पटनाके कलेक्टरने कहा था कि—जो किसान सात बीघा जमीन जोतता है, वह—

Can take one full meal instead of two.

"केवल एक वक्त पेटभर खा सकते हैं।"

गयाके कमिश्नरने कहा था कि—

Forty percent of the population are insufficiently fed. "चालीस सैकड़ा आदमी भरपेट नहीं खाते।"

किन्तु ये कथन आजसे बहुत पहलेके हैं। तबसे अबकी दशा और भी अधिक बुरी है। इसीसे तो ब्रिटिश-भारतसे कितनेही लोग भाग गये। सन् १८७७ के अकालमें कितने भूखे आदमी देश छोड़ गये, इसका विवरण 'टाइम्स आफ इण्डिया' नामक बम्बईके एक अर्द्ध-सरकारी पत्रमें इस प्रकार निकला था,—

No less than 47400 people migrated into H. H.

the Nizam's territories from the adjoining British districts up to the spring of 1877 only.

Dec. 14—1880

अर्थात् "१८७७ ई० के केवल वसन्त ऋतुतक अँगरेजी राज्यसे ४७ हजार ४ सौ आदमी निजाम हैदराबादके राज्यमें चले गये।" यहाँ तो किसानोंपर महाजनोंका आधिपत्य है, पर देशी राज्योंमें ऐसा नहीं है।

सारांश यह कि जिन किसानोंपर देशका जीवन निर्भर है, उन्हीं किसानोंकी ऐसी दुर्दशा हो रही है। जबतक किसानोंकी दशा देशके लोग नहीं सुधारेंगे, तबतक भारतकी कभी भी उन्नति नहीं होगी। इस विदेशी सरकारने अनावश्यक चीजोंको इस कदर आवश्यक बना दिया कि जिसका कोई हिसाब नहीं। इस समय किसानोंको दोहरा घाटा उठाना पड़ रहा है। पहला घाटा तो यह है कि उनके पाससे व्यापारी सस्ता-से-सस्ता गल्ला खरीदते हैं। फिर नफा लेकर वे व्यापारी अपनेसे बड़े एक दूसरे व्यापारीके हाथ बेचते हैं। ध्यान रखना चाहिए कि वे लेवा-बेंची करनेवाले व्यापारी केवल दलाली रूपमें मौज कर रहे हैं। दूसरा घाटा यह है कि किसानोंके लिए जो आवश्यक चीजें हैं, वे भी क्रमशः बीचमें नफा लेते हुए बहुत अधिक दाममें किसानोंको मिलती हैं। एक कपड़ेको ही लीजिये। विलायत से जो कपड़ा आठ रुपये थानके हिसाबसे यहाँकी अँगरेजी आफिसें मँगाती हैं, उसे कलकत्ता, बम्बई आदिमें वे बड़े दूकानदारोंके हाथ ११) में बेचती हैं। फिर वे छोटे शहरोंके बड़े व्यापारियोंके हाथ नफा लेकर बेचते हैं। तब वे उसे देहातके कपड़े बेचनेवालोंके हाथ लाभ लेकर बेचते हैं। फिर वे दो पैसा तीन पैसा गज लाभ लेकर किसानोंके हाथ बेचते हैं। इस तरह वह ८) का थान किसानोंको २०) में खरीदना पड़ता है। यदि बिचार किया जाय तो एक थानमें

१) से अधिककी रुई नहीं लगती, पर उस एक रुपयेकी रुईका दाम किसानोंको १०) देना पड़ता है। सबसे अधिक लाभ तो बिलायत-वाले बनवाईका लेते हैं, और बाकी हिस्सा कुर्सियों और तकियोंके सहारे लेटनेवाले दलाल—जोकि इस समय महाजन कहे जाते हैं, लेते हैं। यदि ये दलाल दलाली न कर महात्मा गान्धीके कथना-नुसार कपड़ा बनाकर उसका नफा लेने लग जायँ तो गरीब किसानोंके दलालीमें जानेवाले पैसे बच जायँ।

किन्तु इधर सरकार ध्यान दे, तब तो। एसेम्बलीमें भारतीय नेता यदि कुछ कहते हैं तो सरकार फौरन उत्तर देती है कि रुपया नहीं है। अपव्यय करनेके लिए सरकारके पास न जाने कहाँसे रुपये टपक पड़ते हैं, किन्तु प्रजाके हितमें खर्च करनेके समय उसका दिवाला निकल जाता है। यदि सरकार खर्च करना चाहे तो ऐसी बहुतसी मदें हैं, जिनमेंसे रुपया लिया जा सकता है। केवल जर्मन-युद्धके समय भारत-सरकारने १० करोड़ पौंड (डेढ़ अरब 'रुपया') ब्रिटेनकी अत्यन्त आवश्यकताके समय उसे सहायतार्थ दिया था। यदि वही रकम लौटा दी जाय, तो ५ प्रतिशत व्याज-दरसे प्रायः ७ करोड़ रुपया सालाना प्रजाके हितार्थ खर्च किया जा सकता है।



रेल और नहरें

प्राचीन समयमें भारतवासी वैज्ञानिक रीतिसे वर्षा कराते थे। राजालोग बहुत बड़ा यज्ञ करते थे। उस यज्ञकुण्डसे धुआँ पैदा होकर ऊपर जाता और बादल पैदा करता था। फिर उस बादलसे वर्षा होती थी। आज भी अमेरिका-निवासी अपने देशमें इसी वैज्ञानिक शक्तिको दूसरा रूप धारण करा उससे वर्षा कराते हैं। अमेरिकाके लोग यज्ञ नहीं करते; बल्कि यज्ञसे उत्पन्न होनेवाले धुएँको बिजलीके जोरसे पैदा करके अपना काम निकालते हैं।

यज्ञके अतिरिक्त उस समयके हिन्दू राजा किसानोंको वर्षाकी परवाह न करनेके लिए अपने राज्यमें जगह-जगह बड़े-बड़े तालाब और सरोवर खुदवाते थे। इसलिए जब कभी अनावृष्टि होती थी, तब आजकलके समान लाखों आदमी भूखकी ज्वालासे प्राणत्याग नहीं करते थे। पर आजकल इतना अधिक कर लेकर भी अङ्गरेज-लोग किसानोंको अनावृष्टिके भयङ्कर कष्टसे नहीं बचाते। लार्ड वेलेसलीके आज्ञानुसार डाक्टर फ्रांसिस बुकाननने दक्षिण भारतके कृषिकार्यकी अवस्था देखकर जो रिपोर्ट लिखी थी, उसमें लिखा है कि सौ वर्ष पहले भी दक्षिणात्य हिन्दू राज्योंमें जलाशयोंकी बड़ी ही सुन्दर व्यवस्था थी। उस रिपोर्टमें उस समयके राज्यके अधिकारी छोटे-छोटे हिन्दू राजाओंके खुदवाये चार कोस लम्बे और डेढ़ कोस चौड़े बहुसंख्यक तालाब और सरोवरोंका वर्णन पाया जाता है। इसीसे उस समय जब कभी कहीं सूखा पड़ता था, तब वहाँ किसानलोग तालाब और झीलोंसे पानी उलीचकर सिंचाई करके खासा अन्न पैदा कर लिया करते थे।

परन्तु अङ्गरेजोंका कहना है कि नहर और तालावोंकी आवश्यकता होते हुए भी दुर्भिक्ष-पीड़ित देशोंमें अन्न पहुँचानेके लिए (जिस-देशमें खूब अन्न पैदा हुआ हो, वहाँ से) रेलकी सबसे जियादा आवश्यकता है। उनका कहना है कि "रेलसे एक स्थानसे दूसरे स्थानको जानेके लिए तथा व्यापार आदि करनेकी वहुत सुविधा होगी। सब सभ्य देशोंमें ही रेलसे राजकोषमें धन-संचय हुआ है और प्रजाकी सुख-स्वच्छन्दता बढ़ी है। अतः रेल-पथ बढ़ानेकी ओर अधिक ध्यान देना ही गवर्नमेण्ट योग्य समझती है।" इस तरहके युक्तिवादसे अङ्गरेजलोग भारतवासियोंका नाश कर रहे हैं।

सन् १८४९ से ३१ मार्च सन् १९०७ तक भारतीयोंके ४०४ करोड़ १९ लाख ५० हजार रुपयोंके खर्चसे २९ हजार मील लम्बा रेल-पथ भारतीयोंके अकालकी भयङ्करता दूर करनेके लिए बनाया गया था। इसके अतिरिक्त १९०९ तकके लिए १५ करोड़ रुपये और लगानेके लिए स्वीकार किये गये थे। इधर १९ वर्षोंमें कितना धन और लगाया गया, सो जाने दीजिये। अभी हालहीमें १९ फरवरी सन् १९२९ को एसेम्बलीमें रेलवे-मेम्बर सर जार्ज रेनीने सन् १९३० का बजट पेश किया है। इस वर्ष १ अरब सवा ७ करोड़की आय (जो २८-२९ से एक करोड़ ५९ लाख अधिक है) का अनुमान किया गया है। व्ययकी ओर साधारण व्यय ६५ करोड़, पूंजी स्वरूप व्यय ३०॥ करोड़ तथा मुनाफा ११। करोड़ कूता गया है। पूँजीवाले खर्चमेंसे ४ करोड़ बर्मा रेलवे खरीदनेमें, ७ करोड़ पञ्जाब सदर्न रेलवे खरीदनेमें, ८॥ करोड़ नयी लाइनोंके बनवानेमें तथा शेष अन्य ऐसे ही पूँजीवाले कामोंमें खर्च होगा। २८-२९ में २१०० मील नयी रेलवे लाइन पूरी होने और २९-३० में ६०० मील नयी लाइनें बननेका अन्दाजा लगाया गया है। सन् १९०० तक तो नफाको कौन कहे, सरकारको इस काममें ६०

करोड़का घाटा हुआ था और १ अरब २ करोड़ ५० लाख रुपया कर्ज करना पड़ा था।

हाँ, एक फायदा इस रेलसे जरूर हुआ है कि सात हजार गोरोंको बड़ी बड़ी नौकरियाँ मिली हैं तथा इङ्गलैण्डमें लोहेके कारखानेवालोंकी खूब उन्नति हुई है। स्वर्गीय श्रीयुक्त दादाभाई नौराजीने दिखाया है कि भारतमें रेलके लिए जो धन खर्च होता है, उसमेंसे ३१॥) सैकड़ा विलायतके लोहेके व्यवसायियोंको मिलता है। इसके सिवा यहाँ जो २३ विदेशी रेल कम्पनियाँ है, उनके डाइरेक्टरोंके दफ्तर इङ्गलैण्डमें हैं। अतः उनके लिए जो खर्च होता है वह इङ्गलैण्ड जाता है। रेल बनानेके लिए अधिक ऋण विलायतमें लिया गया है, इसलिए उसका सूद भी वहीं जाता है। भारतके राजाओंसे कुलमें छः करोड़ रुपये कर्ज लिये गये हैं। रुपया भी विदेशी कम्पनियोंका ही अधिक लगा है। इसलिए रेलसे जो कुछ नफा भी होता है, वह सब उन्हींके पेटमें जाता है।

तेईस विदेशी कम्पनियोंके सिवा सरकारने भी पाँच रेल-पथ बनाये हैं। सन् १९२८-२९ की रिपोर्टके अनुसार भारतमें कुल ५५ रेलवे लाइनें हैं। जिनमें ५ स्टेट लाइनें हैं, और बाकी ५० लाइनें कम्पनियोंकी। हजार मीलसे ऊपर रेल-पथ बनानेवाली केवल १० कम्पनियाँ हैं। सरकारने पूर्वोक्त कम्पनियोंमें किसी-किसीको वचन दिया है कि उन्हें इस रेलके काममें जो घाटा होगा, उसे सरकार भर देगी। भला इस आग्रहका भी कुछ ठिकाना है! कई कम्पनियोंको और-और तरहसे सहायता देकर भारतमें रेल-पथ बनानेके लिए सरकारने उत्साहित किया था। जी० आई० पी०, बी० बी० एण्ड सी० आई० तथा मद्रास रेल कम्पनीके साथ देखिए सरकारने किस प्रकारका बन्दोबस्त किया था। हर्षकी बात है कि अब जी० आई० पी० रेलवे भी भारत-सरकारकी हो गयी।

इन तीन रेल-कम्पनियोंके साथ जो नया ठीका किया गया है, उनमें लिखा है कि—"कम्पनियोंको उनकी मूल पूँजीपर पाँच रुपया सैकड़ा सूद दिया जाय। एक रुपयेकी जगह उन्हें इङ्गलैण्डमें १ शिलिंग १० पेन्स दिये जायँ। छठे महीना हिसाब किया जाय।" (Paper on Indian Guaranteed Railways. 1900)

सारांश यह कि रेलमें कम्पनियाँ जितनी पूँजी लगावेंगी, उनपर उन्हें पाँच रुपया सैकड़ा लाभ होना ही चाहिए। यदि इससे कम लाभ हुआ तो सरकार उसकी पूर्त्ति अपने पाससे—प्रजाके धनसे—करेगी। यदि इससे अधिक हुआ तो उसमेंसे आधा सरकार लेगी और आधा कम्पनी। इसके सिवा, इस नियमके अनुसार सरकारको एक रुपयेकी जगह १।=) देना पड़ेगा। इङ्गलैण्डके बाजारमें २॥), ३) सैकड़ा ब्याजपर बहुत रुपया मिलता है। कम्पनी वहाँसे रुपये लेकर यहाँ रेलमें लगाती है। कम्पनीको मुफ्तमें २), २॥) सैकड़ा नफा होता है। इसके लिए मारी जाती है, भारतकी गरीब प्रजा। छःमाही हिसाब करनेमें भी सरकारकी हानि है। पहले छः महीनेमें यदि ५) सैकड़ेसे कम नफा हुआ तो वह सरकार भर देगी, पर यदि दूसरे छः महीनेमें पाँच रुपयेसे अधिक नफा हुआ तो उसमेंसे आधा नफा लेनेके लिए कम्पनी तैयार है। यदि वार्षिक हिसाब होता तो सरकारको यह घाटा न सहना पड़ता। इस नियमके कारण सरकारको हरसाल इन तीन कम्पनियोंको १ करोड़ ३० लाख रुपया देना पड़ता था। इस प्रकार सब रेलकम्पनियोंको आजतक ६० करोड़से अधिक रुपया सरकारी खजानेसे दिया गया। इसके अतिरिक्त रेलोंमें जो विदेशी रुपया लगा है, उसके सूद में हमें वार्षिक ६ करोड़ रुपया देना पड़ता है। रेलके बड़े-बड़े पदोंपर यदि देशी आदमी नियुक्त किये जाते तो अन्ततः कुछ घाटा पूज जाता। पर बड़े-बड़े पद भी अँगरेजोंकी पैतृक सम्पत्ति

बन गये हैं। केवल बी० एन्० डब्ल्यू० रेलवेमें ही सन् १९२८ ई० में कुल ५५ ऊँचे पद थे, जिनमें ५१ तो अँगरेजोंको दिये गये थे और सिर्फ ४ भारतीयोंको।

फरवरी १९२८ को बड़ी व्यवस्थापिका सभामें श्रीजमनादास मेहताने पूछा था कि—"जी० आई० पी० रेलवेके बम्बईके दफ्तरमें कितनी यूरोपियन और एंग्लो इण्डियन महिलायें टाइपिस्ट हैं और उन्हें हिन्दुस्तानी पुरुष टाइपिस्टोंसे अधिक वेतन देनेका क्या कारण है?" इसपर मि० पारसन्सने अन्ट-सन्ट बातें करनेके सिवा कुछ भी सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया। सरकार ६२९३ गोरोंका और ८७६५ अधगोरोंका अधिक रुपये देकर भी पालन-पोषण करती है। इसमें सन्देह नहीं कि आजकल रेलमें नौकरी कर ७ लाख ६२ हजार ५ सौ ५३ भारतवासी अपनी जीविका निर्वाह करते हैं, पर रेलके कारण कितने ही बढ़ई मल्लाह और गाड़ीवानोंकी रोजी मारी गयी है, उनका क्या होगा?

कई विद्वानोंका मत है कि भारतमें छः हजार मील रेलकी सड़क बनानेसे काम चल जाता। (Moral and Meterial Progress of British India) नामक सरकारी विवरणके लिखनेवालेने प्रायः साढ़े पाँच हजार मील सड़क बन जानेपर सन् १८७३ ई० में लिखा था—

"Railways are now almost completed so that with the cessation of heavy outlay on constraction, the financial position may be expected to improve."

अर्थात् "भारतमें रेलकी सड़कोंका बनाना अब प्रायः समाप्त हो गया है, इसलिए इस काममें अब अधिक धन नहीं लगेगा। इससे आशा की जा सकती है कि भारतीय राजकोषकी अवस्था कुछ

सुधर जायगी।" सन् १८७८ में इञ्जीनियर सर आर्थर काटनने भारतमें रेलकी नवीन सड़कें बनानेका काम बन्द करनेकी सरकारको सलाह दी थी। इसीके दो वर्ष बाद दुर्भिक्ष-दमनके लिए जो एक कमीशन बैठा था उसने भी सरकारको कहा कि अब रेल बनानेका काम बन्द कर दुर्भिक्ष-दमनार्थ नहर खोदनेकी ओर अधिक ध्यान देना चाहिए। पर नौकरशाहीने इनलोगोंकी बात न सुनी। कारण यह था, कि भारतमें जिसमें रेल-पथ अधिक बढ़े, इसके लिए इङ्गलैण्डके लोहेके व्यापारी वैध-अवैध प्रकारसे प्रयत्न करने लगे। उनलोगोंके प्रतिनिधि पार्लमेण्टमें प्रश्न-पर-प्रश्न पूछकर अपने हितके लिए उद्योग करने लगे। पर भारतके समान दरिद्र देशमें अधिक रेल-पथ बनाना कभी हितकर नहीं हो सकता, यह समझकर भी सरकारने ठीकेका बन्दोबस्त किया। फिर क्या था? नुकसानके रुपये यहाँके राजकोषसे पानेकी आशासे इङ्गलैण्डकी कम्पनियोंने यहाँ रेल बनाना शुरू कर दिया। सन् १९२८ के मार्चतक भारतमें रेलवे लाइन ३९ हजार ७१२ मील बनायी गयी। सरकारी खजानेसे रुपये पानेकी आशासे यहाँकी रेलकम्पनियाँ धनका अपव्यय करने लगीं। इङ्गलैण्डकी अनुसन्धानसमितिके सामने गवाही देनेके समय सन् १८७२ में भारत-सरकारके भूतपूर्व अर्थ-सचिव दि राइट आनरेबुल एन० म्यासीने कहा था,—

"The East India Company cost far more. If not twice as much as it ought to have cost. Enormous sums were lavished and the contractors had no motive whatever for economy. All the money came from the English Capitalist and so long as he was gauranteed 5 P. C. on the revenues of India, it was immaterial to him whether

the fund that he lent were thrown into the Hooghly or converted lnto brick and mor, Tar the result was these large sums were expended and the East Indian Railway cost I think (I speak without book) about £ 30,000 a mile—It seems to me they are the most extra vagant works that were ever under taken."

अर्थात् "ईष्ट इण्डिया कम्पनीने बहुत अधिक व्यय किया है— उचितसे दूना खर्च किया है। उसके चालाक ठेकेदार वगैरह अर्थ-शास्त्रके नियमोंकी कुछ भी परवाह नहीं करते। रुपये विलायतके महा-जनोंके पाससे आते हैं, और जबतक वे भारतीय राजकोषसे ५) सैकड़ा ब्याज पाते हैं, तबतक उन्हें मूल रुपयेकी कुछ भी चिन्ता नहीं है, चाहे वे हुगली नदीमें फेंक दिये जायँ, चाहे मिट्टीमें मिला दिये जायँ। इसका परिणाम हुआ, यही बड़ा भारी खर्च। मैं समझता हूँ (मैं बिना किताब देखे कहता हूँ) ईष्ट इण्डियन रेलवेके प्रत्येक मीलमें साढ़े चार लाख रुपये लगे हैं। आजतक किसी कामसें इतने रुपये नहीं लगे थे।" और भी कई अङ्गरेजोंके रेल-कम्पनियोंके सम्बन्धमें यही मत हैं।

रेल-कम्पनियोंको इस प्रकार ठेका मिल जानेके कारण वे यात्रियोंके सुख-दुःख और व्यापारियोंकी सुविधापर कुछ भी ध्यान नहीं देतीं। क्योंकि वे तो यह जानती हैं कि साधारण यात्री और व्यापारियोंको प्रसन्न न करनेपर भी उनका वाल बाँका नहीं होगा, सरकार उनकी नुकसानी जरूर ही भर देगी। आज रेलके डब्बोंमें भारतवासी भेंड़ और बकरियोंकी तरह कसे जाते हैं। गरमीके दिनोंमें दूरके मुसाफिरोंको कहीं-कहीं पानीके बिना बुरी तरह कष्ट सहना पड़ता है। कितनी ही बार तो इन कष्टोंसे कितने ही आदमी मर भी जाते हैं। पर कम्पनी इसपर कुछ भी ध्यान नहीं देती।

जापानमें रेल-पथका विस्तार बहुतेरे सभ्य देशोंकी तुलनामें कहीं अधिक है। जन-संख्याके हिसाबसे वहाँ प्रति ११४२२ आदमियोंके लिए एक मील रेल-पथ है। पर हम लोगोंसे आधे भूखे, आधे नंगे लोगोंमें—जिनकी वार्षिक आय १५।१६ रुपया है—फी ७९५१ आदमी पीछे एक मील रेल-पथ कभी सुखकर नहीं हो सकता। हमलोगों जैसे दरिद्रको इतनी विलासिता नहीं सोहती। तथापि सन् १८७३ की सरकारी रिपोर्टमें "आवश्यक रेलकी सड़कका बनना प्रायः समाप्त हो चुका है" लिखनेपर भी ५५ वर्षोंमें आवश्यकतासे कितना अधिक रेल-पथ बनाया गया, इसका अनुमान स्वयं ही पाठकगण कर सकते हैं। अब यह देखना है कि यहाँके लोग रेलको अधिक पसन्द करते हैं या नहीं।

गत सन् १९२७ ई० में इङ्गलैण्डसे क्षुद्र देशमें १२४ करोड़ टिकट बिके थे। पर इसी वर्ष भारतकी सब रेलोंमें मिलाकर ३६ करोड़ १० लाख टिकट बिके थे। इन दोनों संख्याओंकी तुलना करनेसे ज्ञात हो जायगा कि भारतके लोगोंको रेल-पथ कितना कम पसन्द है। खेद है कि सरकार जबर्दस्ती रेल-पथ-विस्तार करके भारतीयोंको रेलका आदी बनाती जा रही है। इस तुलनासे यह भी मालूम हो जाता है कि यहाँके लोगोंको रेलसे बहुत कम लाभ हुआ है। पर कम्पनियाँ तो धन बटोर रही हैं न! उन्हें भारतीय हानि-लाभसे क्या काम? १९१९।२० में भारतभरकी रेलवे कम्पनियोंको ३३ करोड़ १६ लाख रुपये लाभ हुए थे। जिसमेंसे २७ करोड़ ६९ लाख तीसरे दर्जेके मुसाफिरोंसे आये थे; परन्तु तीसरे दर्जेके मुसाफिरोंकी दुर्दशापर कम्पनियाँ कुछ भी ध्यान देना पाप समझती हैं। रेलसे इस वर्षमें भी (१९२८।२९) सब खर्च बाद देकर सरकारको पौने ग्यारह करोड़ रुपया मुनाफा हुआ है। इसमें दस-बारह आना लाभ तीसरे दर्जेके मुसाफिरोंसे हुआ समझिये, बाकी

चार-छः आने ऊँचे दर्जेके मुसाफिरों तथा मालसे। एसेम्बलीमें इसपर यदि सवाल भी किये जाते हैं तो सरकार टालमटोल कर जाती है। यह विदेशी सरकार तो हमेशा प्रत्येक विभागके नफेके रुपयेको इङ्गलैण्ड पहुँचानेकी धुनमें ही लगी रहती है। सालभर हुआ (सन् १९२७।२८ में) सरकारने (रेलवे बोर्डने) इङ्गलैण्डमें पब्लिसिटी डिपार्टमेंट (प्रकाशन विभाग) खोला है। उसका काम बड़े-बड़े चित्र एवं पुस्तकें बँटवाकर यूरोप और अमेरिकामें यह प्रचार करना बतलाया जाता है कि भारतमें दर्शनीय स्थानोंकी प्रचुरता है, रेलोंका प्रबन्ध उत्तम है और यात्रियोंकी सुविधाका पूरा आयोजन है। सरकारका कहना था कि ऐसा करनेसे भारतीय रेलोंकी आय बढ़ जायगी। पर रेलोंकी आयमें इस कामसे कुछ भी वृद्धि नहीं हुई, यूरोप आदिसे जितने यात्री पहले आते थे, उतने ही प्रायः अब भी आते हैं। हाँ, इस विभागके खुलनेसे यह लाभ तो अवश्य हुआ कि विलायतमें कई लम्बोदर अङ्गरेजोंका भरण-पोषण घर बैठे हो रहा है। इस प्रकार अङ्गरेजी सरकार भारतीयोंकी गाढ़ी कमाईका रुपया एक-न-एक बहानेसे पानीकी तरह बहाती है। संसारको दिखलानेके लिए तो सरकारने प्रतिनिधि-शासन-प्रणालीकी घोषणा कर दी, पर काम स्वेच्छानुसार ही करती है। रेलोंद्वारा अधिक मुनाफा होता देखकर सरकारको इस सालसे रेलवे बोर्डमें एक और मेम्बर, यानी चारके बदले पाँच—नियुक्त कर देनेकी सूझी। एसेम्बलीमें लोक-प्रतिनिधियोंने एक स्वरसे सरकारके इस प्रस्तावका विरोध किया, किन्तु उसने लोकमतकी कुछ भी परवाह न करके अपना प्रस्ताव पास कराकर ही छोड़ा। इस प्रकार एक मेम्बरके बढ़नेसे ६४ हजार रुपया सालका खर्च बढ़ गया। रेलोंमें काम करनेवाले मजदूरों या नौकरोंकी मजदूरी तो एक पाई भी नहीं बढ़ायी जाती, पर अङ्गरेजोंको बहाल करनेके लिए ऐसे-

ऐसे तरीके निकाले जाते हैं, जिन्हें देखकर महान् दुःख होता है। अब वाणिज्य-विस्तारपर विचार कीजिये। इधर भी हमारा कुछ विशेष लाभ नहीं हुआ। रेलके बनानेसे दूरवर्त्ती गाँवोंमें भी विलायती मालकी बिक्री बढ़ गयी है। मूर्ख गाँववाले विलायती मालकी चमक-दमकमें फँसकर अपना बहुश्रमार्जित धान्य देकर उसे खरीदते हैं। रेलकी कृपासे ही वह बेचा हुआ माल उसी दम समुद्र तीरपर लाया जाकर विदेश भेजा जाता है। रेलके ही कारण अकालके दिनोंमें भी यहाँसे कितना अन्न बाहर भेजा जाता है उसका विवरण नीचे दिया जाता है;—

सन्	चावल	गेहूँ	अन्यान्य धान्य
१८९६-९७ में	३८९५८१७७ मन	२६७४८७६ मन	३७७४८०७ मन
१९०९-१० में	७६३१४५८२ ,,	२८३३५००० ,,	१२३३२२०१ ,,

इसके बाद जर्मन-युद्धमें यह रफ्तनी और भी बढ़ गयी। हाँ, इधर कुछ रफ्तनी फिर घटी है, पर उससे आशा ही क्या? जबतक यह शोषण बन्द नहीं किया जाता, तबतक तो इसका घटना और बढ़ना लगा ही रहेगा। अभी गत अक्टूबर १९२२ में ही २२ करोड़ ९१ लाख रुपयेका माल बाहरसे भारतमें आया था और २१ करोड़ ६३ लाख रुपयेका यहाँसे बाहर गया था। सन् १९२७-२८ की रिपोर्टसे भी यही पता चलता है कि हमेशा भारतको कच्चा माल देनेके लिए विवश करनेके कारण ही इसकी दुर्गति हो रही है। यदि यहाँकी ऐसी निर्दयतापूर्ण रफ्तनी बन्द कर दी जाय, तो भारतवासियोंको भूखों न मरना पड़े। क्योंकि यहाँ इतना अधिक अन्न पैदा होता है कि अकालका असर पहुँच ही नहीं सकता। यहाँ अन्न कितना पैदा होता है सो भी नीचेकी तालिकासे मालूम हो जायगा,—

सन् १९२५-२६ में ८६ करोड़ ४७ लाख मन चावल, २५ करोड़ ९२ लाख ६ सौ मन गेहूँ, १ करोड़ ९६ लाख २३ हजार

मन असली पैदा हुई थी। (अन्यान्य चीजें जो पैदा होती हैं, उनका विवरण यहाँ नहीं दिया जाता है)। आजसे कोई २५ वर्ष पहले १५ करोड़ एकड़ जमीनमें खेती होती थी; किन्तु अब सन् १९२७ से २७ करोड़ एकड़ जमीनमें खेती होती है। बीस साल पहले ५ करोड़ एकड़में धानकी खेती होती थी; १९२३ से वह ८ करोड़ एकड़में हो रही है। पचीस साल पहले ५७ करोड़ ९५ लाख ८२ हजार मन धान पैदा होता था; अब ८६ करोड़ ४६ लाख ७५ हजार मन होता है।*

नीचेकी तालिकामें सन् १९१९-२० के अन्नकी उपजका ब्योरा † दिया जाता है,—

अन्न	एकड़	उपज
गेहूँ	३०४९९०००	९२८८००० टन ‡
चना	१३००५०००	३५४३००० ,,
चावल	७९५१४०००	३२०२५००० ,,
जुआर	२१७६५०००	४९३८००० ,,
जौ	७६१७०००	३१६४००० ,,
बाजरा	१३६०९०००	२३२३००० ,,
मकई	६४६२०००	२३०५००० ,,
मडुवा	४००००००	१७८६००० ,,
अन्यान्य अन्न	३००००००	८०००००० ,,
जोड़	२०६४७१०००	६७३७२००० ,,

* यही चावल सन् १९११-१२ में सिर्फ ६० करोड़ १४ लाख ८० हजार क्वार्टर (१ क्वार्टर = १४ सेर) ही पैदा हुआ था।

† इधर कई वर्षोंसे अकालके कारण पैदावार ठीक नहीं हुई इसलिए हमने पुराने आँकड़ोंको दे देना ही उचित समझा।

‡ १ टन = २७ मन ८ सेर।

अन्नकी इतनी पैदावार * होते हुए भी भारतवासी भूखों मरते हैं, इसका कारण रेल है। अन्यान्य देशोंमें अकालके लक्षण दिखायी पड़ते ही वहाँकी सरकारें देशके अन्नकी रफ्तनी बन्द कर देती हैं।

पर पिछले १०-१२ वर्षोंतक तो रेलका भाड़ा बढ़ाकर विदेशियों-ने इस देशको लूटा, अब इधर दो-तीन वर्षसे यदि भाड़ा घटाया भी गया तो वह ऐसी नीतिसे कि उससे भारतको और भी अधिक हानि

---

* भारतमें हर आदमीके लिए औसत दर्जे आधा पेट खानेको ७ मन अन्न हर साल चाहिए। पर यहाँके लोगोंको २ करोड़ टन अन्न आवश्यकता-से कम मिलता है। अर्थात् सात करोड ७८ लाख ५७ हजार १ सौ ५३ आदमियोंके लिए अन्नका अभाव रहता है। भारतवासियोंको तो इस तरह आधा पेट—प्रति चार आदमियोंमें से एकके लिये वह भी नहीं!—खाकर गुजर करना पडता है, और उधर विदेशी भरपेट माल उड़ाते हैं। इङ्गलैण्डमें एक आदमी वर्षभरमें औसतसे ४०० पौंड गेहूँ ११६ पौण्ड माँस और ४६ पौण्ड (१ पौण्ड = आधा सेर) पनीरसे पेट भरता है। सारांश यह कि भारतमें हर आदमीको कठिनाईसे रूखा सवा पाव अन्न रोज नसीब होता है, किन्तु इङ्गलैण्डमें हर आदमी आसानीसे तीन पाव रोज बढ़िया भोजन उड़ाता है। जहाँ स्काटलैण्डका किसान घी-दूधके अलावा सवा सेर अन्न खाता है, आयलैंडके मनुष्य प्रतिदिन ३-४ सेरतक उड़ा जाते हैं, वहाँ भारतका किसान दिनभर पशुओंकीसी मेहनत करके मोटी और रूखी रोटीके कुछ कौर खाकर लोटे भर पानीसे उदरकी ज्वाला बुझानेके लिये लाचार हैं।

इसके लिये एक सहज उपाय यही है कि हर प्रान्तमें कुछ ऐसी सार्व-जनिक संस्थायें स्थापित हों, जिनके शेयरहोल्डर धनी और धर्मात्मा पुरुष हों। वे संस्थायें समयपर अन्न खरीदें और आवश्यकताके समय नाममात्रके नफेपर गरीब भूखोंके हाथ वह अन्न बेचा करें। जो अन्न इससे बचे, वह विदेशियोंके हाथ अच्छे नफेपर बेचें। देशमें ऐसा प्रबन्ध कर दिया जाये कि किसान अपना पैदा किया हुआ अन्न उन संस्थाओंको छोड़ दूसरेके हाथ न बेचें।

उठानी पड़ रही है। बात यह है कि रेलवेने २०० मीलके ऊपर भाड़ा घटाकर दूर जानेवाले यात्रियोंको उत्साहित कर दिया। किन्तु अधिक यात्री होते हैं, १०-२० मील सफर करनेवाले, सो उनका भाड़ा ज्यों-का-त्यों ही रह गया। इस प्रकार भाड़ा घटनेमें २०० मीलकी शर्त्त लगाकर देशको बर्बाद किया जा रहा है।

रेलके प्रभावसे आज गाँववाले भी विलास-प्रिय होकर अपना सर्वनाश करते जा रहे हैं। देशी शिल्पसे लोग घृणा करने लग गये थे, पर शतशः धन्यवाद है, स्वदेशी आन्दोलनके जन्मदाता स्वर्गीय लोकमान्य तिलक और महात्मा गान्धीको, जिन्होंने इस विषयमें लोगोंके नेत्र खोले हैं। शिल्पकी तो चर्चा ही छोड़िये, विलायती औषधियोंतककी यहाँ इतनी बिक्री बढ़ गयी है, जिसे देखकर विस्मित होना पड़ता है। कलकत्तामें औषधियोंकी दूकानें देखनेसे चक्कर आने लगता है और यह ख्याल होता है कि क्या परमात्माने समस्त रोगियोंको भारतमें ही पैदा कर दिया? इस देशमें करोड़ों रुपयेकी विलायती औषधियाँ बिकती हैं।

जिस प्रकार त्रेता-युगमें रक्षराज रावण पुष्पक विमानकी सहायतासे लक्ष्मी स्वरूपिणी महारानी सीतादेवीको हरकर समुद्रपार अपनी राजधानी लङ्कापुरीमें ले गया था, उसी प्रकार आजकल अँगरेजलोग भी अग्निरथकी सहायतासे यहाँकी शस्य-लक्ष्मी समुद्र-पार ले जा रहे हैं और विदेशी पण्य द्रव्यसे भारतको पूर्ण कर रहे हैं। फलतः सुवर्ण किरीटिनी लंकाके समान इङ्गलैण्डकी श्री-सम्पत्ति दिनोंदिन बढ़ रही है, और भारत एक-एक दानेके लिए तरस रहा है। किन्तु जिस तरह सीता-हरण करनेके बाद लंकेशका नाश हुआ था, क्या वही घटना यहाँ भी चरितार्थ न होगी?

नहर काटकर देशको शस्य-श्यामल करने और शिक्षा-प्रचारकर देशमें ज्ञान-वृद्धि करनेकी ओर अँगरेजोंका कुछ भी ध्यान नहीं है।

केवल रेलवे लाइनें बढ़ानेके लिए वे पूर्ण उत्सुक हैं। "न्यू इङ्गलैण्ड मैगजीन" नामक मासिक पत्रके सितम्बर सन् १६०० के अंकमें अमेरिकन पादरी रेवरेण्ड जे० टी० सडरलैंडने भारतीय अकालोंके बारेमें कहा था—

"शिक्षा-प्रचार, स्वास्थ्य-रक्षा, नहर-खनन आदि कामोंके लिये जिन्हें भारतवासी वहुत अधिक पसन्द करते हैं, उसके लिए भारत-सरकार कङ्गाल ही रहती है। पर भारत-सरकारके पास धनकी चाहे जितनी कमी हो, रेल बनानेके लिए उसके पास खूब धन आ जाता है। क्यों? कारण यह कि भारतकी रेलोंसे अँगरेजोंकी सम्पत्ति बढ़ती है। रेलके कारण भारतके वहुतेरे पुराने कारखाने नष्ट होगये हैं और करोड़ों आदमी राहके भिखारी होगये हैं। पर उससे शासक जातिका धन बढ़ता है और इस अमूल्य अधीनस्थ देशको दृढ़ताके साथ चंगुलमें फँसानेका उन्हें मौका मिलता है। फिर इसके लिए लोगोंकी चाहे जितनी हानि हो।" वास्तवमें यदि-रेल-पथ इस प्रकार अस्वाभाविक वेगसे न बढ़ाया जाता तो हमारे देशके धन-क्षयका प्रवाह भी इतना तेज न होता। हाय! आज रेल भी हमारे सर्वनाशके प्रधान कारणोंमें हो रही है।

विदेशी मालकी आमदनी बढ़नेसे ही देशके शिल्पियोंका सर्वनाश हुआ। अपने देशका जलज, खनिज और कृषिज द्रव्य बेचकर हमें हरसाल दो अरबसे अधिक रुपये मिलते हैं, तथापि हमारा अर्थ-कष्ट और दुर्भिक्ष दूर नहीं होता। इसका कारण खोजनेसे मालूम होगा कि वास्तवमें रफ्तनीके दामका अल्पांश ही हमें मिलता है। रफ्तनीके व्यवसायमें यदि भारतीयोंका मूलधन लगता, यहाँके कारीगरोंका बनाया हुआ माल भी यदि विदेश जाता, तो हमलोग धनशाली हो सकते। सोना, हीरा, लोहा, कोयला, अभ्रक प्रभृति खनिज और शंख मुक्तादि जलज पदार्थोंके विदेश भेजे जानेके

कारण रफ्तनीका अंक बढ़ गया। भारतमाताके गुप्त धन-भण्डारके सब रत्न विदेशी बनिये धीरे-धीरे विदेश उठा ले जा रहे हैं। हमारी रत्नगर्भा-वसुन्धरा धीरे-धीरे अन्तःसार-शून्या होती जा रही है। इन बातोंका परिणाम सोचनेसे कलेजा दहल उठता है। यहाँके जलज और खनिज पदार्थोंका व्यवसाय यदि हमलोगोंके हाथमें होता, तो अवश्य ही भारतकी श्रीवृद्धि हो सकती, नहीं तो केवल मजदूरी करना ही हमलोगोंका काम होगया है। विदेशी व्यापारी ही अपना मूलधन लगाकर मजा उड़ा रहे हैं।

जिन जातियोंका धनैश्वर्य आज दिन-पर-दिन बढ़ रहा है, उन्होंने इसी प्रणालीका अनुसरण किया है। इङ्गलैण्डके खनिज और कल-कारखानोंके बने द्रव्य पृथ्वीके दूर-दूर देशोंमें जाते हैं और वहाँका धन इङ्गलैण्ड आता है। वहाँपर ऐसा नहीं है कि मजदूरी तो करें अङ्गरेज और लाभ उठावें किसी अन्य जातिके लोग। अमेरिका भी अपना गुप्त-धन-भण्डार आपही निकालता है, अपने ही द्रव्यसे उसे अन्यान्य देशोंमें भेजता है। भारतमें भी यदि इसी नियमके अनुसार काम होता तो निश्चय ही भारतके धन और कला-कौशलकी उन्नति होती।

पर आजकी स्थितिसे भारतका धन बढ़ना तो दूर रहा उल्टे घटता जा रहा है। अङ्गरेजलोग भी यदि मुगलोंकी तरह भारतको अपना घर बनाये होते, शासनमें भारतवासियोंका स्वार्थ ही यदि उनकी चिन्ताका प्रधान विषय होता, तो विदेशसे भी मूलधन लाकर व्यवसाय करनेसे हमारे देशका कल्याण होनेकी सम्भावना थी। इङ्गलैण्डकी खातिरदारीसे भारतीय गवर्नमेंटको पृथ्वीके किसी देशमें थोड़े सूदपर रुपये मिल सकते थे। जापान और अन्यान्य वहुतेरी जातियाँ यही कर रही हैं। हमलोग भी यदि विदेशसे रुपया कर्ज लेकर जातीय धनागमके रास्ते खुद खोल सकते तो इस रफ्तनी-के व्यवसाय में हमें जरूर ही फायदा होता।

भारतके वाणिज्यकी आमदनी-रफ्तनीमें ठीक मेल नहीं बैठता है। सन् १९०१ से १९०६ तकका हिसाब देखनेसे मालूम होता है कि इतने समयमें यहाँसे जितना माल विदेश भेजा गया था, उससे भगभग १५० करोड़ रुपये कमका माल बाहरसे यहाँ आया था। यदि कुछ भी न्याय होता, तो इन पाँच वर्षोंमें ही हमलोग बहुत कुछ ऋण-मुक्त हो गये होते, या वही रुपया दूसरेको कर्ज देकर उसका सूद पाते। पर इनमेंसे एक भी नहीं हुआ। अमेरिका ऐसा ही करनेसे ऋण मुक्त हुआ था। एक समय अमेरिका यूरोपका ऋणी था। पर आज वह अपना ऋण चुकाकर दूसरोंको कर्ज दे रहा है। सन् १९२३ में केवल अङ्गरेजोंपर ही ८० करोड़ पौण्ड (१ पौंड=१५ रुपया) अमेरिकाका कर्ज था।

अच्छा, तो हमारा इस वाणिज्यसे बचा हुआ धन जाता कहाँ है? सन् १८३५ से १९०२ तक ६७ वर्षोंमें हमलोगोंने कम-से-कम ७०० करोड़ रुपयेका अधिक माल बाहर भेजा था। पर इसमेंसे एक छदाम भी भारतको नहीं मिला। यह बचत होमचार्ज और गोरे सिविलियनोंको पेन्शन देनेमें ही समाप्त कर दी गयी। अङ्गरेज लोग कृपाकर इस देशपर राज्य करते हैं, इसीसे उन्हें हरसाल २५ करोड़ रुपया हमलोगोंको सलामीमें देना पड़ता है। इसीको 'होमचार्ज' कहते हैं। इसी प्रकार बड़े-बड़े श्वेतांग कर्मचारियोंके वेतनमें इस देशके राजकोषसे प्रतिवर्ष २० करोड़से अधिक देना पड़ता है। मुगल बादशाहोंके समय राजाकी सलामी और राजकर्म-चारियोंके वेतनके रुपये इसी देशमें रहते थे। पर अब सब रुपया बाहर चला जाता है। यह ४५ करोड़ रुपया हरसाल यहाँकी प्रजाको जौ गेहूँ बेचकर देना पड़ता है। रेली ब्रदर्स आदि गोरी कम्पनियाँ यह धान्य खरीदकर रेलके कारण कम मिहनतमें विदेश भेज देती हैं। इसी धान्यकी अधिक बिक्रीके कारण हमारे देशकी

रफ्तनी बढ़ जाती है। पर इस अधिक रफ्तनीका नफा विलायत-वालोंको मिलता है। सारांश, देशमें रेलवे लाइनकी वृद्धिके साथ-साथ भारतीय वाणिज्यका विस्तार जितना बढ़ता है, उतना ही अङ्गरेज धनी हो रहे हैं, और हम निर्धन।

यही कारण है कि सरकार रेलके लिए तो कई अरब रुपये खर्च कर चुकी, पर नहरके लिए आजतक केवल ४२ करोड़ रुपया ही खर्च किया। सन् १९११ में समूचे भारतमें ४७४५३ मील नहर थी। नहर-विभागमें इतना थोड़ा रुपया खर्च करनेपर भी सरकारको गहरा फायदा हुआ है। सन् १९०५।६ में सरकारको इस विभागसे मूलधनपर ८) सैकड़ा नफा हुआ था। साथ ही प्रजाका भी बहुत कुछ उपकार और बड़े-बड़े वेतनवाले अङ्गरेजोंका अर्थ-कष्ट भी दूर हुआ था। जब ईष्ट इण्डिया कम्पनीकी अमलदारीमें भारतमें नहर आदि बनानेका अलग विभाग (पुर्त्त विभाग) बनाया गया था, तब विद्वानोंने हिसाब किया था कि यहाँ रेल बनाने और नहर खोदने-में खर्च बराबर ही पड़ेगा, पर नहरसे प्रतिवर्ष फी मील उन्नीस सौ रुपयेकी आय होगी और रेलसे १७॥ सौसे अधिक नहीं हो सकेगी। दुःख है कि इतना होनेपर भी सरकारकी दृष्टि नहरकी ओर न कभी थी और न है; पर रेल बनानेमें खूब व्यस्त देखी जाती है। कारण यह कि रेल बनानेमें तो विलायतसे सामान मँगाकर वहाँके व्यापा-रियोंको धनसे परिपूर्ण किया जा सकता है, किन्तु नहर बनानेमें तो भारतीय मजदूरोंका ही पेट भरता।

ब्रिटिश-भारतमें खेतीकी जमीनकी नाप प्रायः ७३ करोड़ ७५ लाख बीघा है और खेतीके योग्य जमीनका परिमाण प्रायः ३१ करोड़ २ लाख बीघा है। सन् १९२५-२६ में खेतीकी जमीनमेंसे २ करोड़ ५ लाख ३१ हजार ९ सौ १८ एकड़ जमीन सरकारी नहरके जलसे सींची गयी थी और बे-सरकारी नहरसे ३८ लाख २७ हजार २

एकड़, तालाबोंसे ५८ लाख ६ हजार ६ सौ १८ एकड़, कुएँसे १ करोड़ १७ लाख २० हजार २५७ एकड़ तथा अन्य जरियोंसे ५६ लाख ७६ हजार ९८६ एकड़। लगभग ६० करोड़ वीघा जमीनके अधिकांश भागको सींचनेकी आवश्यकता है। इसलिए यदि इसका प्रबन्ध सरकार कर देती, तो अकालका भय वहुत कुछ दूर हो जाता। सन् १८८० में इस देशमें अकालोंका कारण निर्धारित करनेके लिए एक कमीशन बैठा था। उसने भी यही बात स्वीकार की थी। अधिक नहर खोदी जानेके कारण ही मैसूर (Mysore) राज्यमें अकाल वहुत कम पड़ते हैं। पर इस कमीशनकी रिपोर्ट पढ़नेपर भी सरकारने कुछ ध्यान नहीं दिया।

नहरोंकी खोज करनेके उद्देश्यसे भारतमें जो कमीशन बैठा था, उसकी रिपोर्टमें लिखा गया था कि यहाँ सालमें सब मिलाकर ३७॥ इञ्च पानी वरसता है। इस विषयके विद्वान् कहते हैं कि २० इञ्च पानी बरसनेसे चाहे जिस देशमें खेती की जा सकती है। भारतमें अनावृष्टिके वर्षोंमें भी कभी २० इञ्चसे कम पानी नहीं वरसता। इसलिए अनावृष्टि यहाँके अकालका कारण नहीं कही जा सकती। वास्तवमें पानी जमा करनेका अभाव ही अकालका असली कारण है।

कहीं-कहींपर अधिक वृष्टि होनेके कारण लोगोंको वहुत कष्ट सहना पड़ता है। कितने ही गाँव वह जाते हैं। खाने-पीने और रहनेका किसीको ठिकानातक नहीं रह जाता। सन् १९१८ में उड़ीसा में यही दशा हुई थी। वारह-चौदह कोसोंमें जल-ही-जल दिखायी पड़ता था। पचासों गाँव जलमग्न होगये थे। गायें, भैंसें, वकरियाँ आदि वही जाती थीं। कितनी ही माताएँ दो-दो चार-चार वर्षके अपने दुधमुँहे वच्चोंसे विहीन होगयी थीं। बड़े-बड़े घरोंकी बहू-बेटियाँ, जिन्हें किसीने कभी देखा भी न था और जो कभी अपने दरवाज़ेपर आये हुए भूखोंकी उदर-तृप्ति किया करती थीं,

दाने-दानेके लिये चारों ओर भटकती फिरती थीं। इस भयङ्कर समय-में इन पंक्तियोंका लेखक वहाँ गया था। एक स्त्री तालावके किनारे अपने छः वर्षके बच्चेको खड़ा करके तालाबमें खड़ी सिंघाड़ेकी पत्ती खा रही थी। हमलोगोंको देखकर उस स्त्रीने लज्जासे मुँह ढँकना चाहा। पर हायरे दुर्दैव! कई दिनोंके भींगे रहनेसे वस्त्र विलकुल सड़ गया था। उसके खीचते ही धोती फट गयी। देखनेसे वह स्त्री किसी भले घरकी मालूम होती थी। उस समय हमलोगोंके पास बाँटनेके वाद दो कचौड़ियोंके सिवा और कुछ नहीं था। वे कचौड़ियाँ लड़केके हाथमें देकर हमलोग हृदयपर पत्थर रखकर वहाँसे चल दिये। इतनेमें ही वह स्त्री लड़केके हाथमें कचौड़ियाँ देखकर झपटकर आयी और छीनकर खुद खाने लगी। लड़का रोने लगा। इस भयङ्कर दृश्यको देखनेके सिवा और कोई चारा नहीं था। इस तरहकी दर्दभरी अनेक घटनायें देखी गयी थीं। अतः हम समझ सकते हैं कि यदि नहरोंका प्रबन्ध हो जाये तो अधिक वृष्टि होनेपर भी सब पानी उन नहरोंके जरिये बह जाय और निर्धन भारतवासियों की प्राण-रक्षा हो जाय। ऐसी हृदय-द्रावक घटनाओंको रोकनेके लिए प्रयत्न न करना सरकारकी कितनी कठोरता है?

फ्रान्स, जर्मनी, आस्ट्रिया आदि देशोंमें जब पानीकी आवश्य-कता नहीं होती, तब तोपोंसे बादलोंका जमघट हटा दिया जाता है। पर यहाँकी सरकार उससे भी भारतीयोंकी रक्षा नहीं करती। कुएँ, तालाव, नहर, सरोवरादिकी पर्याप्त सहायता मिलनेसे खेती कभी नहीं मर सकती। इसीसे हिन्दू और मुसलमान राजाओंका इधर विशेष ध्यान रहता था। उस समय समूचे भारतवर्षमें कितने कुएँ और तालाब थे, वह आज नहीं जाना जा सकता। पर मद्रास प्रदेशमें आज भी ४० हजार पुराने कूएँ मौजूद हैं। बम्बई प्रदेशमें २ लाख ५४ हजार कुएँ हैं। चिंगलपट जिलेमें अठारहवीं सदीके

खोदे हुए दो कुएँ आज भी मौजूद हैं। कावेरी नदीकी खाल दूसरी सदीकी बनी है। इसकी लम्बाई एक हजार फुट चौड़ाई ४० से ६० फुट और गहराई १५ से १८ फुटतक है। पंजाब और सिन्धमें मुसलमान और हिन्दू-शासनके समयकी बनी हुई बड़ी-बड़ी खालें आज भी मौजूद हैं। रावी नदीसे १२० मील लम्बी नहर खोदकर मुसलमान बादशाह लाहोरमें पानी ले जाते थे। यमुनाकी ६५० मील लम्बी नहर मुहम्मद तुगलकके समय खोदी गयी थी।

पहलेके भारतीय नरेशोंकी नहर सम्बन्धी व्यवस्थाके सामने ब्रिटिश-राज्यकी कीर्ति छिप जाती है। यदि विचार कर देखा जाय तो ब्रिटिश-सरकारके इस उदासीन कार्यसे इङ्गलैण्डका भी बहुत बड़ा नुकसान हुआ है। क्योंकि किसानोंकी अच्छी अवस्था होनेसे विलायती वाणिज्यकी वृद्धि होती। गत पन्द्रह वर्षोंका हिसाब कर देखनेसे मालूम होता है कि भारतके प्रत्येक आदमीने, विलायतसे सालभरमें २॥८) से अधिकका माल नहीं खरीदा है। इसमेंसे महलोंमें रहनेवाले बाबुओं और उनकी चमकदार बीबियोंकी संख्या घटा देनेसे मालूम होता है कि यहाँ प्रायः २० करोड़ किसानोंमेंसे एकने भी वर्ष भरमें दो पैसेसे अधिकका विलायती माल नहीं खरीदा है। किसानोंकी दरिद्रताका इससे बढ़कर और अच्छा कौनसा प्रमाण दिया जा सकता है? भारतीय किसानोंकी अवस्था अगर अच्छी होती, यदि उनमें दो आनेकी भी विलायती चीजें खरीदनेकी शक्ति होती, तो क्या विलायतके व्यापारियोंकी आमदनी चौगुनी न हो जाती? कनाड़ाके अधिवासी इतने अमीर हैं कि उनमेंसे हरेक आदमी हरसाल इङ्गलैण्डसे ७५ रुपयेका माल खरीदता है। भारतवासी भी यदि इन्हींके समान धनशाली होते तो इङ्गलैण्डको भारतके समान विशाल देशसे व्यापारसे हरसाल २२ अरब ५० करोड़ रुपयेका लाभ होता। इससे इङ्गलैण्डकी महिमा और शक्ति

कितनी बढ़ जाती, जरा सोचिये तो सही। पर जबतक मि० थेकरे-का भूत नौकरशाहीके कन्धोंपरसे न उतरेगा, तबतक वह यह सीधी-सादी बात कभी नहीं समझ सकेगी।

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोहमें अङ्गरेजोंकी नींव बिलकुल हिल गयी थी। यदि उस समय भारत-वासी अङ्गरेजोंका सामना करते तो अङ्गरेजोंका भारतमें टिकना असम्भव था। इङ्गलैण्डके प्रसिद्ध इतिहासज्ञ सर जान सीलीने भी 'एक्सपेंशन आफ इङ्गलैण्ड' नामकी पुस्तकमें * इस बातको स्वीकार किया है। भारतवासियोंकी की हुई सहायताके कारण ही महारानी विक्टोरियाने भारतीयोंको मिलनेके लिए उनके जले हुए हृदयके घावपर अपनी प्रसिद्ध घोषणाका मरहम लगानेका प्रयत्न किया। उस घोषणाका अन्तिम अंश यह था,—

We desire no extension of our territorial possession;...We shall respect, the right, dignity and honour of native princes as our own.

We hold ourselves bound to the natives of our Indian territories by the same obligations of duty which bind us to all our other subjects and those obligations, by the blessing of Almighty God, we shall faithfully and conscientiously fulfil.

And it is our further will, that, so far as may be, our subjects, of whatever race or creed, be

---

* इस महत्त्वपूर्ण पुस्तकका हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ है। मूल्य १॥) है और "मैनेजर साहित्याश्रम, पो० कछवा, मिर्जापुर" के पतेसे मँगायी जा सकती है।

freely and impartially admited to offices in our service, the duties of which they may be qualified, by their education, ability and integrity, duly to discharge.

We know and respect, the feelings of attachment with which the natives of India regard the land inherited by them from their ancestors; and we desire to protect them in all rights connected therewith subject to the equitable demands of the estate and we wish that generally in framing and administering the Law, due regard be paid to the ancient rights, usages and customs of India.

When by the blessings of Providence internal tranquility shall be restored, it is our earnest desire to stimulate the peaceful industry of India to promote works of public utility and improvements, and to administer its Government for the benefit of all our subjects resident therein, In their contentment lies our security and in their gratitude our best reward, and may the God of all Power grant to us and to those in authority under us, strength to carry out these wishes for the good of our people.

"हमलोग भारतमें अपना वर्तमान राज्य अधिक बढ़ाना नहीं चाहते।......हमलोग भारतके स्वत्व, अधिकार और इज्जतको अपने ही स्वत्व, अधिकार और इज्जतके समान समझेंगे।

"हमलोगोंने अन्यान्य स्थानकी प्रजाके साथ जिस राजधर्मके प्रतिपालनकी प्रतिज्ञा की है, उसीके अनुसार भारतीय प्रजाके साथ वर्ताव करनेकी हमलोग प्रतिज्ञा करते हैं। सर्व शक्तिमान् परमेश्वरकी कृपासे सरल चित्त और ईमानदारीसे हमलोग उस प्रतिज्ञाका पालन करेंगे।

"हमलोगोंकी यह भी इच्छा है कि जो लोग सुशिक्षा, कार्य-दक्षता, ईमानदारीसे राजकार्य करनेके योग्य हुए हों, वे जहाँतक हो सके, जातिधर्म आदिका बिना विचार किये, बिना पक्षपात किये हमलोगोंसे अधिक राज्यकार्यमें बहाल किये जायँ।

"उत्तराधिकारीके नातेसे मिली हुई पैतृक-भूमिपर भारतवासियों-की कैसी ममता होती है, वह हमलोग जानते हैं तथा उनके इस भावपर हमलोगोंकी श्रद्धा भी है। भूमिपर उनलोगोंके जो अधिकार हैं, उनकी रक्षा करनेकी हमलोगोंकी इच्छा है। राजाका न्याय-पूर्ण कर लेनेका हमलोगोंको अधिकार है। जमीनके बारेमें कानून बनानेके समय भारतवासियोंके पुराने अधिकार तथा उनकी प्राचीन रीति-भाँतिका हमलोग यथोचित सम्मान करेंगे।

"भगवानकी कृपासे भारतमें शान्ति स्थापित हो जायगी, उस समय भारतमें शान्तिपूर्ण शिल्पादिकी उन्नति करने, नहर खोदने आदि हितकर काम करने, जीर्णोद्धार करने तथा भारतीयोंके लिए मंगलकर शासनपद्धति चलानेकी हमलोगोंकी आन्तरिक इच्छा है। भारतीयोंकी सुख-समृद्धि ही हमलोगोंकी शक्ति है तथा उनके सन्तोषसे ही हमलोगोंका राज्य निर्विघ्न होगा। उनकी कृतज्ञता हम लोगोंको परम पुरस्कार-स्वरूप होगी। सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हम-लोगोंको तथा हमलोगोंके कर्मचारियोंको यह सब प्रजाहितकर पूर्वोक्त काम करनेकी शक्ति दें।"

महारानी विक्टोरियाकी यह सन् १८५८ की उदार घोषणा अनेक

विशेषताओंके कारण भारतीय इतिहासमें चिरस्मरणीय रहेगी। उनकी उपर्युक्त घोषणासे उनके शुद्ध और विशाल अन्तःकरणका पता अच्छी तरह चलता है। उनकी प्रजा-वत्सलताकी कोई भी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता। उनकी इच्छाके अनुसार यदि भविष्यमें यहाँ काम किया गया होता, तो भारत कभी ऐसी अधो-पतित अवस्थापर न पहुँचता। परन्तु भविष्यमें उनके स्वार्थी नौकरोंने कभी भी उनकी इच्छाको कार्यरूपमें परिणित करनेका कष्ट नहीं उठाया।

सन् १८८३ में लार्ड नार्थब्रूकने पूछा था कि पार्लमेण्टके कानून और महारानी विक्टोरियाके घोषणा-पत्रके अनुसार भारतवर्षमें काम क्यों नहीं किया जाता? इसके उत्तरमें उस समयके भारत-सचिव जोकि तीन बार समस्त ब्रिटिश-साम्राज्यके प्रधान मन्त्री भी हो चुके थे,—लार्ड सालिसबरीने कहा कि यह "Political hypocrisy" या 'राजनीतिक कपटता' है। लार्ड कर्जनने भी इस घोषणाको 'Impossible charter' या 'असम्भव सनद' कहकर उड़ा दिया था।

महारानीकी पवित्र घोषणाका इस प्रकारसे बड़े-बड़े राजपुरुषों-द्वारा खून किया जा रहा है। सम्राट् सप्तम एडवर्डने भी राज्यारोहण-के समय और उस दिन महारानीके घोषणा-पत्रकी जुबिलीके समय भी स्वर्गीया महारानीकी प्रतिज्ञाओंके पालन करनेका हमलोगोंको वचन दिया था। किन्तु उन प्रतिज्ञाओंका पालन कहाँतक किया जा रहा है, वह आँखोंके सामने है। अभी हालहीमें जर्मन-युद्धके समय प्रधान मन्त्री मि० लायड जार्जकी बातें पाठकोंको स्मरण होंगी। उन्होंने कहा था कि जर्मनीसे लड़ाई हमलोग अपनी रक्षाके लिए नहीं कर रहे हैं, बल्कि सारे संसारकी स्वतन्त्रताके लिए। युद्धका परिणाम यदि अच्छा हुआ तो भारतीय-किसानोंका अवश्य

"हमलोगोंने अन्यान्य स्थानकी प्रजाके साथ जिस राजधर्मके प्रतिपालनकी प्रतिज्ञा की है, उसीके अनुसार भारतीय प्रजाके साथ बर्ताव करनेकी हमलोग प्रतिज्ञा करते हैं। सर्व शक्तिमान् परमेश्वरकी कृपासे सरल चित्त और ईमानदारीसे हमलोग उस प्रतिज्ञाका पालन करेंगे।

"हमलोगोंकी यह भी इच्छा है कि जो लोग सुशिक्षा, कार्य-दक्षता, ईमानदारीसे राजकार्य करनेके योग्य हुए हों, वे जहाँतक हो सके, जातिधर्म आदिका बिना विचार किये, बिना पक्षपात किये हमलोगोंसे अधिक राज्यकार्यमें बहाल किये जायँ।

"उत्तराधिकारीके नातेसे मिली हुई पैतृक-भूमिपर भारतवासियों-की कैसी ममता होती है, वह हमलोग जानते हैं तथा उनके इस भावपर हमलोगोंकी श्रद्धा भी है। भूमिपर उनलोगोंके जो अधिकार हैं, उनकी रक्षा करनेकी हमलोगोंकी इच्छा है। राजाका न्याय-पूर्ण कर लेनेका हमलोगोंको अधिकार है। जमीनके बारेमें कानून बनानेके समय भारतवासियोंके पुराने अधिकार तथा उनकी प्राचीन रीति-भाँतिका हमलोग यथोचित सम्मान करेंगे।

"भगवानकी कृपासे भारतमें शान्ति स्थापित हो जायगी, उस समय भारतमें शान्तिपूर्ण शिल्पादिकी उन्नति करने, नहर खोदने आदि हितकर काम करने, जीर्णोद्धार करने तथा भारतीयोंके लिए मंगलकर शासनपद्धति चलानेकी हमलोगोंकी आन्तरिक इच्छा है। भारतीयोंकी सुख-समृद्धि ही हमलोगोंकी शक्ति है तथा उनके सन्तोषसे ही हमलोगोंका राज्य निर्विघ्न होगा। उनकी कृतज्ञता हम लोगोंको परम पुरस्कार-स्वरूप होगी। सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हम-लोगोंको तथा हमलोगोंके कर्मचारियोंको यह सब प्रजाहितकर पूर्वोक्त काम करनेकी शक्ति दें।"

महारानी विक्टोरियाकी यह सन् १८५८ की उदार घोषणा अनेक

विशेषताओंके कारण भारतीय इतिहासमें चिरस्मरणीय रहेगी। उनकी उपर्युक्त घोषणासे उनके शुद्ध और विशाल अन्तःकरणका पता अच्छी तरह चलता है। उनकी प्रजा-वत्सलताकी कोई भी प्रशंसा किये विना नहीं रह सकता। उनकी इच्छाके अनुसार यदि भविष्यमें यहाँ काम किया गया होता, तो भारत कभी ऐसी अधोपतित अवस्थापर न पहुँचता। परन्तु भविष्यमें उनके स्वार्थी नौकरोंने कभी भी उनकी इच्छाको कार्यरूपमें परिणित करनेका कष्ट नहीं उठाया।

सन् १८८३ में लार्ड नार्थब्रूकने पूछा था कि पार्लमेण्टके कानून और महारानी विक्टोरियाके घोषणा-पत्रके अनुसार भारतवर्षमें काम क्यों नहीं किया जाता? इसके उत्तरमें उस समयके भारत-सचिव जोकि तीन बार समस्त ब्रिटिश-साम्राज्यके प्रधान मन्त्री भी हो चुके थे,—लार्ड सालिसबरीने कहा कि यह "Political hypocrisy" या 'राजनीतिक कपटता' है। लार्ड कर्जनने भी इस घोषणाको 'Impossible charter' या 'असम्भव सनद' कहकर उड़ा दिया था।

महारानीकी पवित्र घोषणाका इस प्रकारसे बड़े-बड़े राजपुरुषों-द्वारा खून किया जा रहा है। सम्राट् सप्तम एडवर्डने भी राज्यारोहण-के समय और उस दिन महारानीके घोषणा-पत्रकी जुबिलीके समय भी स्वर्गीया महारानीकी प्रतिज्ञाओंके पालन करनेका हमलोगोंको वचन दिया था। किन्तु उन प्रतिज्ञाओंका पालन कहाँतक किया जा रहा है, वह आँखोंके सामने है। अभी हालहीमें जर्मन-युद्धके समय प्रधान मन्त्री मि० लायड जार्जकी बातें पाठकोंको स्मरण होंगी। उन्होंने कहा था कि जर्मनीसे लड़ाई हमलोग अपनी रक्षाके लिए नहीं कर रहे हैं, वल्कि सारे संसारकी स्वतन्त्रताके लिए। युद्धका परिणाम यदि अच्छा हुआ तो भारतीय-किसानोंका अवश्य

उद्धार किया जायगा। किन्तु युद्धमें विजय पाते ही लायड जार्ज सारी बात भूल गये और अपने समूचे कथनपर उन्होंने पानी फेर दिया। यहाँपर अङ्गरेजोंके लिए तो परम देशभक्त लाला लाजपतरायजीकी सन् १९२० की नागपुर काङ्गरेसमें कही हुई बात दोहरा देना ही पर्याप्त होगी। आपने कहा था कि—"मैं संसारको चैलेञ्ज देता हूँ कि कोई भी मुझे यह दिखलावे कि ऐसा कौनसा दस वर्ष व्यतीत हुआ है, जिसमें अङ्गरेजोंने वादा करके उसे नहीं तोड़ा। स्मरण रखना चाहिए कि अङ्गरेजोंकी बात एक पंसौरीकी बातोंसे अधिक मूल्यवान नहीं हैं।"

यहाँ तो यह धारणा है कि भारतवासी चाहे मरें चाहे जीवित रहें, अपना पेट भरना चाहिए। क्योंकि यदि ऐसी धारणा अङ्गरेजोंकी न होती तो निश्चय ही सरकारी प्रतिज्ञाओंका पालन किया जाता। सन् १८५२ ई० में विलायती अनुसन्धान-समितिके सामने गवाही देनेके समय बड़े लाटकी व्यवस्थापक सभाके कानूनी सदस्य मि० हेकेमरने साफ-साफ कहा था—

"मैं जहाँतक जानता हूँ, १८३३ ई० के पार्लमेण्टके नियमके अनुसार एक भी भारतवासी उच्च सरकारी कामपर नियुक्त नहीं किया गया है। यह नियम बनानेके पहले वे जिन पदोंपर नियुक्त किये जाते थे, आज भी उन्हींपर किये जाते हैं—इस नियमके बनानेसे उनकी अवस्था कुछ भी उन्नत नहीं हुई है।"

ऐसा नहीं हो सकता कि बड़े-बड़े कामोंकी योग्यता न होनेके कारण भारतवासियोंको वे काम नहीं दिये जाते हैं। इस देशका धन लूटनेहीके लिए सरकार सब बड़े-बड़े कामोंपर अङ्गरेजोंको बहाल करती है। १७०० भारतवासी एक वर्षमें जितना धन कमाते हैं, उतना धन इस देशमें केवल एक सिविलियन साहबके पोसनेमें खर्च होता है। दुःखकी बात है कि भारतमें अङ्गरेजी शासनके इतिहासमें

कुटिलतापूर्ण घटनायें कम नहीं हुई हैं। सन् १८६९ ई० में ड्यूक आफ आर्जिलने कहा था कि—

"हमलोगोंने (भारतवर्षके सम्बन्धमें) अपना कर्तव्य पालन नहीं किया है। हमलोगोंने जो वादे किये थे, वे पूरे नहीं किये हैं।"

इसी विषयमें लार्ड लिटनने भी कहा था;—

"यह पत्र गोपनीय है, अतः मैं बिना हिचकिचाये कह सकता हूँ कि (भारतमें) अपनी की हुई प्रतिज्ञाओंके भंग करनेके दोषसे भारत-गवर्नमेण्ट या ब्रिटिश-गवर्नमेण्ट दोनोंमेंसे एक भी मुक्त नहीं हो सकती।"

जबतक भारतका खून चूसनेका भाव दिलमें भरा हुआ है, तबतक वादेकी पूर्त्ति नहीं की जा सकती। सन् १८७५ ई० में भारत-सचिव लार्ड सालिसबरीने कहा था कि,—

"India must be bled"

अर्थात् 'भारतका खून अवश्य ही चूसना होगा।'

पं० श्यामकृष्णाजी वर्मा एम० ए० ने हिसाब करके दिखाया है कि इङ्गलैण्डका प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बालक प्रतिवर्ष भारतसे १५) पाता है। खून चूसना और किसे कहते हैं ?

वास्तवमें यदि नौकरशाहीकी बातोंका कुछ भी मूल्य होता तो इतने अनर्थ कभी देखनेमें न आते। क्या महारानी विक्टोरियाकी पवित्र घोषणामें प्रजाकी सुख-समृद्धि बढ़ानेका उद्देश्य नहीं है ? पर सुनता कौन है। यहाँ तो स्वार्थकी झोली लिये नौकरशाही चारों ओर भटक रही है। जिधर झोली भरे, उधर ही अपना कदम बढ़ाती है। रेलके काममें जब वह मालामाल हो रही है, तब भला वह उसे छोड़कर नहर खुदवाने आदिकी झंझटोंमें कैसे फँस सकती है।

अङ्गरेजोंके शासनमें भी जल-सिंचनकी कुछ व्यवस्था हुई है। सन् १८३६ में ईष्ट इण्डिया कम्पनीने १५ लाख रुपया खर्च कर

तंजोरमें एक सरोवर खोदा था। उससे सरकारको ५८॥ लाख रुपया लाभ हुआ। उत्तर-भारतमें गंगाजीकी नहर काटकर भी सरकारने खूब नफा उठाया है। ब्रिटिश-भारतमें अङ्गरेजोंकी खोदी हुई नहरोंकी कुल लम्बाई करीब ५१ हजार मील है। यह संख्या भारत जैसे विशाल देशके लिए कुछ भी नहीं है। नहरोंसे केवल भारतीय किसानोंकी ही उन्नति होगी, सो बात नहीं है; इससे सरकारको भी अकालके दिनोंमें खजाना खाली नहीं करना पड़ सकता।

अब हम यह दिखाना चाहते हैं कि जो कुछ नहरें खोदी गयी हैं, उनके लाभ उठानेमें भी सरकार कैसा विघ्न डाल रही है। कुछ दिन हुए मद्रास-गवर्नमेण्टने नियम बनाया था कि जिनके खेतके पाससे नहर गयी है, वे पानी लें या न लें, उन्हें कर निश्चय ही देना पड़ेगा। भला इससे बढ़कर किसानोंपर और क्या अत्याचार हो सकता है? वाह! यह अँगरेज-सरकार नहरोंका कैसा सदुपयोग कर रही है। सन् १८६६ में सरकारने समूचे भारतके लिए ऐसा ही नियम बनाना चाहा था। पर उस समयके भारत-सचिवकी कृपासे भारत-सरकारकी चेष्टा विफल हुई।

रेल बनानेका चतुर्थांश भी यदि सरकारका ध्यान नहरकी ओर आकृष्ट हुआ होता, तो बहुत उपकार हो गया होता। कारण, रेल बनानेसे जिस तरह देशका धन किसी-न-किसी रूपमें बाहर चला जाता है, नहर खोदनेसे वह नहीं जाता। खर्च होनेवाला प्रायः सब धन देशके मजदूरों और ठीकेदारोंको मिलता। गत १८८२ से १९०२ ई० तक केवल बीस वर्षमें रेल बनानेके लिए ४५८ करोड़का विलायती सामान यहाँ आया था। इससे कहीं अधिक रुपयोंका सामान १९०२ से इधर आया है। इधर विलायती कम्पनियोंकी उन्नतिके लिए रेलवेके उच्चपदाधिकारियोंने एक और ज़रिया निकाला है। वह यह है कि काफी धन खर्च करके स्टेशन बनाना। दो-तीन

वर्ष हुए, इसी नीति के अनुसार एक करोड़ रुपया खर्च करके लखनऊका स्टेशन बनाया गया है। यद्यपि पुराना स्टेशन कोई बुरा नहीं था, फिर भी वह तोड़ दिया गया। सुनते हैं कि इलाहाबाद और कानपुरका स्टेशन भी तोड़कर बनाये जायँगे। ऐसा करनेसे एक लाभ तो यह है कि विलायतके व्यापारियोंको लाभ होगा और दूसरा लाभ यह होगा कि भारत-सरकारके खजानेमें चूहे दण्ड पेलते दिखलाये जा सकेंगे। इस प्रकार यह पर्वतसी धन-राशि विदेशियोंके हाथ लगी और लग रही है। दूसरा फायदा नहरसे यह होता है कि नहरोंकी संख्या बढ़नेसे जल-मार्गसे मालकी आमदरफ्त बढ़ जाती। इससे बहुतेरे मल्लाहोंको रोटीका ठिकाना हो जाता। डा० बुकाननकी रिपोर्टसे ज्ञात होता है कि उन्नीसवीं सदीके प्रारम्भमें पटनासे कलकत्तातक एक नाव माल भेजनेमें १५) से १८) रुपयेतक खर्च होता था, अधिक नहीं। यदि इसका खयाल रखा गया होता तो नावोंका भाड़ा और भी कम हो जाता। पर वही एक नाव माल रेलसे भेजनेमें पटनासे कलकत्तातकका भाड़ा ६०) से कम न लगेगा, साथ ही जो माल बीचमें चोरी होगा, उसकी हानि अलग।

इस विषयमें मिश्र-देशमें बहुत तरहके प्रयोग किये गये हैं। वहाँ नील नदीपर जलमें तैरनेवाले पुल बहुतसे बनाये गये हैं। इन्हीं पुलोंपर रेलवे-लाइनें और साधारण सड़कें बनायी गयी हैं। इन पुलोंके कारण नदीमें बड़ी-बड़ी नावोंके आने-जानेमें किसी तरहकी बाधा नहीं पड़ती। इसका कारण यह है कि कलकत्ताके हबड़ा-पुलके समान ये सब पुल नावोंपर बनाये गये हैं। नौकाओंके आने-जानेके लिए ये दिनमें कई बार खोले जाते हैं। इतना होनेपर भी वहाँके बनिये बराबर शिकायत किया करते हैं कि इस व्यवस्थासे नौ-वाणिज्यकी बहुत हानि हो रही है। पर वहाँका नदी-मार्गका वाणिज्य इतना बढ़ गया है कि स्थानीय रेल-कम्पनियाँ उसके साथ

प्रतियोगितामें ठहर ही नहीं सकतीं। मालका भाड़ा जहाँतक हो सका है, उन्होंने कम कर दिया, तोभी नौकाओंके आगे उन्हें कोई; पूछतातक नहीं। व्यवसायीलोग रेलकी अपेक्षा नदीद्वारा माल भेजना ही अधिक सुविधाजनक समझते हैं।

व्यापारके लिए रेल-मार्गकी अपेक्षा जल-मार्ग अधिक सुविधा-जनक होता है। इसीसे यूरोपके सब सभ्य देशोंमें नदीकी गहराई बढ़ाने और खाल खोदनेमें शासकगण बहुतसा धन व्यय किया करते हैं। छोटेसे आस्ट्रिया-राज्यने सन् १८५० से १६०१ तक नहर खोदनेमें ३४॥ करोड़ रुपया खर्च किया था। हंगरी-राज्यने सन् १८७६ से १६०० तक ३३ करोड़, नीदरलैण्डने १८७० से १६०० तक १७ करोड़ ३१ लाख ४१ हजार ५ सौ और रूसने केवल सन् १६०३ में नदीकी मिट्टी निकालनेमें १ करोड़ १२ लाख ५० हजार रुपया खर्च किया। आस्ट्रिया प्रभृति देशोंमें बड़ी-बड़ी नदियोंको बड़े-बड़े नालोंके द्वारा एक दूसरेसे मिलाकर नौ-वाणिज्यका विस्तार किया गया है और बङ्गालकी सरकार गङ्गाजीके समान प्रसिद्ध नदीकी श्रीवृद्धिके लिए सालमें ५० हजार रुपयेसे कम खर्च करती है। यूरोप और अमेरिकामें शासकगण नहरोंके लिए इतना धन खर्च करके भी प्रजासे जल-कर नहीं लेते और यदि लेते भी हैं तो नाम-मात्रका। किन्तु यहाँपर जल-कर बहुत अधिक लिया जाता है। उदाहरणार्थ, "७॥) से १२) तक प्रति एकड़ ईखकी सिंचाईका, ४) से ७॥) तक धान और ३) से ४।) तक प्रति एकड़ रुईकी सिंचाईका लिया जाता है।" (The Indian year book, 1928. P. 339.) फिर भी यहाँकी सरकार यहाँका नौ-वाणिज्य बढ़ानेके लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं करती। नयी नहर खोदना, पुरानी नदियोंसे मिट्टी निकालकर उसकी गहराई बढ़ाना तो दूर रहा, उल्टा रेलवेके लिए स्थान-स्थानपर नदियोंपर जो पुल

बनाये जा रहे हैं, वे भी हवड़ाके पुलके समान तैरनेवाले नहीं; इसके नीचेसे बड़ी-बड़ी नौकाएँ नहीं जा सकतीं। रेलवे-इञ्जीनियरोंने इन पुलोंकी रक्षाके लिए नदीकी गहराई और उसका वेग कम करनेकी भी व्यवस्था की है। इस नीच कार्यपर सरकार कुछ भी ध्यान नहीं देती।

गङ्गाजीके किनारेकी जमीन खेतीके लिए बहुत ही मुफीद होती है। इसका नाम 'तरी' है। इस जमीनको अधिक जोतने और सींचनेकी जरूरत नहीं होती। केवल बोनेके समय एक बार हल चला कर बीज डाल दिया जाता है। पर इतनी अधिक जायदाद कहीं भी नहीं होती। दुःख है कि आजकल हरसाल ऐसी मुफीद जमीन नदियोंमें कट कटकर मिलती जा रही है। कितने ही गाँव भी नदीमें गिरते जा रहे हैं। यदि सरकार नदियोंकी गहराई बढ़ानेकी ओर ध्यान देती तो नदियोंका पाट अधिक न बढ़ता और किनारेकी जमीन तथा आदमियोंकी रक्षा होती। किन्तु सरकारको इन सब बातोंकी कुछ भी चिन्ता नहीं है।

गत् सन् १९०५ में बजटपर बहस होते समय बंगालकी व्यवस्थापक सभामें माननीय श्रीयोगेशचन्द्र चौधरीने सब बातें साफ-साफ कहकर सरकारसे इसका प्रतिकार चाहा था। पर बंगाल सरकारने उधर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इसके बाद ७ जून सन् १९०५ को कलकत्ताके गोरे 'इण्डियन डेलीन्यूज' पत्रमें निम्न लिखित टिप्पणी भी निकली थी, पर वह भी व्यर्थ हुई।

The question of Railway versus river-born traffic is of great importance in Lower Bengal, where the absence of feeder roads is compensated for by the presence of innumerable small rivers teeming with country boats. These feeder rivers

are being greatly damaged by the efforts of Engineers to construct cheep bridges and the cutting of the headways, to effectuate economy, has seriously interfered with river traffic. It is a mistaken policy in view of the gigantic amount of riverborne trade, and is merely killing the goose that lays golden eggs. The Honorable Mr. Jogesh Chowdhury has repeatedly called attention to this matter in the Bengal council, and as we think, has received extremely unsatisfactory replies dictated in the interest of the Railways without due consideration of the enormous importance of the riverborne trade or a due appreciation of the disastrous results caused by the silting up of rivers by artificial obstructions necessary to protect the Railway bridges. It is now being realised in Germany and in England that it is cheap water transport which makes the country rich and the enormous scheme recently unfolded in Germany is an instance of it. Before all the water-ways of Bengal are ruined by injudicious concessions to the railway interest, it is to be hoped that the Government of India will look into the matter.

अर्थात् "पूर्व बंगालका वाणिज्य रेलद्वारा होना चाहिये या नावोंद्वारा, यह एक बड़े महत्वका प्रश्न है। यहाँ छोटी-छोटी सड़कें तो बहुत नहीं हैं, पर यह अभाव देशी नौकाओंसे परिपूर्ण छोटी-

छोटी नदियोंसे दूर हो जाता है। थोड़े खर्चमें रेलके पुल बनानेके इञ्जीनियरोंकी चेष्टासे इन नदियोंको बड़ी हानि पहुँच रही है। इस भ्रमात्मक नीतिसे यह विस्तीर्ण नौ-व्यवसाय नष्ट हो रहा है। इस प्रकार सोनेके अण्डे देनेवाला हंस मारा जा रहा है। महाशय योगेशचन्द्र चौधरीने कई बार बंगालकी कौन्सिलमें यह प्रश्न उठाया था; पर उन्हें निराशा-जनक उत्तर मिले। इन उत्तरोंमें रेलका पक्षपात साफ पाया जाता है। इसमें न तो नौ-वाणिज्यके महत्त्वकी ओर कुछ भी ध्यान दिया गया है और न पुल बनानेके लिए नदीका वेग रोकनेसे जो भयङ्कर परिणाम होता है, उधर ही ध्यान दिया गया है। नौ-वाणिज्यका महत्व तथा उसका लाभ जर्मनी और इङ्गलैण्डके लोग समझने लगे हैं। हालमें जर्मनीमें इस विषयमें जो एक बड़ी भारी कारखाई की गयी है, वही इसका उदाहरण है। हमें आशा है कि रेलके कारण बंगालके सब जलमार्ग नष्ट होनेके पहले भारत-सरकार इस ओर ध्यान देगी।"

किन्तु सरकारने इस ओर कुछ ध्यान नहीं दिया। विद्वानोंका कहना है कि रेलमें जो रुपया खर्च किया जाता है, उसका दसवाँ हिस्सा भी अगर नहरमें खर्च किया जाय, तो जलमार्गकी बहुत उन्नति हो सकती है। पर दुःख है कि हमारी सरकार प्रजाके कल्याणके लिये यह सामान्य खर्च भी करना नहीं चाहती।

अब हम यहाँपर भारतके नाव बनानेकी कारीगरीका संक्षिप्त दिग्दर्शन करा देना आवश्यक समझते हैं। क्योंकि इससे यह मालूम हो जायगा कि नावोंसे भारतमें पहले व्यापार आदि होता था। ऋग्वेदमें "शत-पतत्र-युक्ता" (शतारित्रां नावम्) समुद्र-गामिनी-नौकाओंका वर्णन पाया जाता है। महाभारतमें भी "मनोमारुत-गामिनी, सर्वबातसहा, यन्त्र युक्ता" नौकाओंका उल्लेख है। 'महावंसो' नामक बौद्ध इतिहासमें लिखा है कि अति प्राचीनकालमें बंगालियों-

ने जहाजोंपर सवार हो सिंहलद्वीपपर आक्रमणकर उसे अधिकृत कर लिया था। 'घटकक्कारिकामें' वर्णित प्रसिद्ध वंगीय वीर प्रतापादित्यके दामादके युद्धमें हारकर भागनेका वर्णन पढ़नेसे ज्ञात होता है कि मुसलमानोंके समयमें भी भारतका नौ-साधन (अङ्गरेजीमें जिसे 'नेवल फोर्स' कहते हैं कालिदासने उसे 'नौसाधन' कहा है; जैसे 'बंगानुत्थाय तरसा नेता नौ-साधनोद्यतान्।" रघुवंश ४।३६) नष्ट नहीं हुआ था।

"चतुःषष्टिदंण्डयुता नौरानीता महामतिः।
नालीकैः सज्जिता स्वैरं सैन्याद्यैरभिरक्षिता॥
तस्यामारोहणं कृत्वा प्रगृह्य नालिकायुधम्।
तूर्णं गमन वार्त्ताञ्चनालिकाध्वनिभिर्ददौ॥"

अर्थात् "चौंसठ नालिकास्त्रों (तोपों) से सुसज्जित सैनिकोंसे रक्षित नौकापर आरोहणकर रामचन्द्र नालिकास्त्रकी ध्वनिसे अपने जानेका समाचार (शत्रुको) जनाकर चले गये।"

उन्नीसवीं सदीके प्रारम्भतक इस देशमें ऐसे मजबूत और सुन्दर जहाज बना करते थे कि उन्हें देखकर विदेशियोंकी आँखें चौंधिया जाती थीं। गवर्नर जेनरल लार्ड वेलेसलीने १८०२ सालके प्रारम्भमें विलायतके कर्तृपक्षको लिखा था कि,—

The port of Calcutta contains about 10,000 tons of shipping built in India, of a description calculated for the conveyance of cargoes to England......From the quality of private tonnage now at command in the port of Calcutta from the state of perfection which the art of ship-building has already attained in Bengal (promising still more rapid progress...) it is certain that this port

will always be able to furnish tonnage to whatever extent may be required for conveying to the port of London the trad of the private British merchants of Bengal.

अर्थात् "दस हजार टन (१ टन=२७ मन) माल ढोने लायक भारतके बने जहाज कलकत्ताके बन्दरमें मौजूद हैं। इङ्गलैण्डमें माल असबाब ढो ले जानेके योग्य ये जहाज हैं। कलकत्तेके बन्दरमें जो व्यापारी जहाज तैयार हैं, उन्हें देखनेसे बंगालमें जहाज बनानेकी पूर्णावस्थाको प्राप्त हुई कला (सिवाय यह कला) बड़ी ही होनहार प्रतीत होती है। इन बातोंका स्मरण करनेसे निश्चय होता है कि ब्रिटिश-व्यापारियोंको यहाँका चाहे जितना माल लण्डन ले जानेके लिए, जितने जहाजोंकी जरूरत होगी, उतने जहाज इस बन्दर में तैयार होंगे।"

कलकत्तामें नहीं, बम्बईमें भी उस समयके बने जहाज विलायती जहाजोंसे कहीं अच्छे होते थे। छत्रपति महाराज शिवाजीने ही सबसे पहले महाराष्ट्रमें नौ-विद्याको उत्साह देकर उसकी उन्नतिका दरवाजा खोल दिया था। मुगलोंके प्रयत्नसे भी इस विद्याकी यहाँ अच्छी उन्नति हुई थी। महाराष्ट्र-नौ-सेनापति आनन्दराव धुलपके अधीन ५० जङ्गी जहाज थे। उनपर तीन सौ बड़ी तोपें हमेशा तैयार रहा करती थीं। प्रत्येक जहाजपर तीन-चार सौ सैनिक रहते थे। उन जहाजोंके सामने अङ्गरेजोंके जहाज तुच्छ मालूम होते थे।

१८११ ई० में कर्नल ए, वाकर-लिखित "Consideration on the affairs of India" नामक पुस्तकमें इस विषयका खासा वर्णन है। उसमें लिखा है कि—"हिसाब करनेसे मालूम होता है कि अङ्गरेजी नौ-सेनाका प्रत्येक जहाज हर बारह वर्षमें बदला जाता है। प्रसिद्ध है कि सागौनकी लकड़ीका बना हुआ जहाज ५० वर्षसे

भी अधिक ठहरता है। पर बम्बईके बने कई एक जहाज १४।१५ वर्ष काममें लाये जानेके बाद नौ-सेनामें खरीद किये गये हैं और नयेके समान मजबूत समझे गये हैं। मैं समझता हूँ कि सर एडवर्ड ह्यूज-नामक जहाज भारतसे इङ्गलैंडतक आठ बार सफर करनेके बाद नौ-सेनामें मोल लिया गया था। यूरोपका बना हुआ कोई जहाज छः सफरोंसे अधिक सही-सलामत काममें नहीं लाया जा सकता।"

स्पष्ट है कि यहाँके बने जहाज इतने मजबूत होते थे कि १४।१५ वर्षतक काममें लानेके बाद भी उन्हें विलायतवाले शौकसे खरीद लिया करते थे। वाकर महाशयने यह भी लिखा है कि "भारतके जहाज इतने पुष्ट होनेपर भी उनके बनानेमें इङ्गलैंडसे कम लागत बैठती है। जिस जहाजके बनानेमें इङ्गलैंडवाले १०००) खर्च करते हैं, उससे चौगुना अच्छा जहाज भारतवासी केवल ७५०) में तैयार कर लेते हैं। इङ्गलैण्डके जहाज १८ वर्षसे अधिक नहीं टिकते, पर भारतके बने जहाज ५० वर्षसे अधिक समयतक ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं। इसलिए भारतमें जहाज बनानेका कारखाना खोलनेसे इङ्गलैण्डका खर्च बहुत-कुछ कम हो जायगा।" वाकर महोदयके कथनानुसार यदि काम होता तो भारतका धनवर्द्धन और इङ्गलैण्डका फायदा साथ-ही-साथ होता। पर अफसोस! कर्तृपक्षने उस बुद्धिमान् व्यक्तिके कथनपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। अब इस विद्यापर वज्रपात होनेका मूलकारण मि० टेलरके शब्दोंके अनुवादमें देखिये—

"भारतके बने जहाज जब यहाँके मालसे लदे हुए पहले-पहल लन्दनमें जा पहुँचे, तब विलायतके एकाधिपत्य-कामी शिल्प-व्यवसायियोंमें बड़ी हलचल मच गयी। इस घटनासे विलायतके लोग जितना घबड़ाये थे, कदाचित् शत्रु-सेनासे लदे जहाजोंके टेम्स नदीमें पहुँचनेसे भी इससे अधिक न घबड़ाते। लंदनके जहाज बनानेवालोंकी भय-सूचक चिल्लाहटसे चारों दिशाएँ गूँजने लगीं। उन्होंने

शोर मचाया कि बस, अब हमलोगोंका रोजगार मारा गया। इसबार अवश्य ही विलायतके सब नौ-शिल्पियोंको सकुटुम्ब भूखों मरना पड़ेगा।"

ईष्ट इण्डिया कम्पनी अपने व्यापारके लिए इस देशमें व्यापारी जहाज बनाती थी। सन् १७७० तक बंगालमें उनका यह कारखाना बढ़ता गया। उस समय खिदिरपुर, टीटागढ़ और कलकत्ताके पुराने डकोंके पास जहाज बनानेका एक-एक कारखाना भी था। इन कारखानोंमें पाँच हजार टन माल लादने लायक जहाज बनते थे। पर उससे लंदन और लिवरपुलके कारीगरोंकी छाती फटने लगी। उन लोगोंकी ओरसे सन् १८१३ ई० में एक अँगरेज लेखकने सरकारसे पूछा कि,—

"It is not a matter to be deplored that the Company should employ the natives of India in building their ships, to the actual injury and positive loss of this nation, from which they received their charter? Mistaken as the Company have been in this particular, it is not very difficult to device what will take place if an unrestrained commerce shall be permitted. If British capital shall be carried to India by British speculators we may expect vast increase of dockyards in that country and a proportional increase of detriment to the artificers of Britain."

"क्या यह दुःखकी बात नहीं है कि जिस जातिसे कम्पनीको भारतमें व्यापार करनेकी आज्ञा मिली है, उसी जातिकी हानिकर कम्पनी जहाज बनानेके कामपर भारतीयोंको नियुक्त करती है? इसमें

कम्पनी भूल कर रही है; पर यदि यह व्यापार इसी तरह वेरोक-टोक चलता गया तो इसका फल क्या होगा, सो आसानीसे जाना जा सकता है। इससे भारतमें जहाज बनानेके कारखाने अत्यन्त बढ़ जायँगे और जिस ब्रिटिशजातिसे उस कम्पनीको सनद मिली थी, उसी जातिका यह शिल्प अत्यन्त क्षतिग्रस्त हो जायगा।"

शिल्पियोंके इस आर्त्तनादसे ईष्ट इण्डिया कम्पनीके स्वदेशभक्त मेम्बर आत्म-विस्मृत हो गये। स्थिर किया गया कि गोरोंके हितार्थ भारतीयोंके पेटपर लात मारी जाय और भारतके उत्तमोत्तम सामान इङ्गलैंड ले जाकर वहीं जहाज बनाये जायँ। उस समय इङ्गलैंडमें "ओक" की लड़कीके जहाज बनते थे; पर इसके वाद सागौनसे काम लिया जाने लगा। आज भी जहाजोंके लिए इस देशसे हर-साल लाखों मन लकड़ी इगलैंड जाती है।

कम्पनीके इस कामसे भारतको बहुत ही बड़ा धक्का पहुँचा। क्योंकि व्यापार तो सब-का-सब अँगरेजोंने कड़े-कड़े कानून बनाकर अपने हाथमें कर लिया था, अतः भारतवासी जहाज बनाकर करते ही क्या। फल यह हुआ कि जहाजोंको कौन कहे छोटी-छोटी नौकाएँ बनानेकी विद्या भी यहाँसे लोपसी हो गयी। सरकारी (Statistical Abstract of British India) और बे सरकारी कागज-पत्रोंसे ज्ञात होता है कि भारतमें सन् १८५७ ई० में ३४२८६ जहाज माल ढोया करते थे। उसकी आज यह दशा! इन जहाजोंके बन्द हो जानेसे कितने आदमियोंकी रोजी मारी गयी होगी, भला इसका भी कोई ठिकाना है। अँगरेजोंने यदि भारतके साथ उचित वर्त्ताव किया होता, आज भी जहाज बनानेके हुनरमें भारत इङ्गलैंडकी नाक काटता। उन्नीसवीं सदीके मध्यतक यहाँका यह शिल्प किस हालतमें था, सो भी सुनिये,—

The correct forms of ships only—elaborated

with in the past ten years by the science of Europe have been familiar to India for ten centuries— Notes on India. By Dr. Buist (Bombay.)

"जहाजोंकी ठीक बनावट जो यूरोपवालोंको अभी दसवर्ष हुए विज्ञानकी सहायतासे मालूम हुई है, भारतवासी उसे एक हजार वर्ष पहलेसे ही जानते थे।" गत १९०३ सालके जनवरी मासमें The Indian Textile Journal पत्रमें ईष्ट इण्डिया रेलवे कम्पनीका जमालपुर-स्थित कारखानेका जो बयान छपा था, उससे सारी बातें स्पष्ट हो गयी थीं।

जमालपुरके कारखानेमें जो भारतके कारीगर प्रारम्भसे अन्ततक समूचा एञ्जिन बना सकते हैं, वे ही जहाज बनानेमें असमर्थ होंगे; यह बात कभी नहीं कही जा सकती। पर इस तरहकी उन्नतिमें राज-शक्तिकी अनुकूलता चाहिए। राज-शक्तिकी अनुकूलता न होती, तो श्याम, जापान और जर्मनीने शिल्प-वाणिज्यमें कभी उन्नतिकी होती या नहीं, इसमें सन्देह ही है। पर दुर्भाग्यसे भारतीय राज-शक्ति देशी शिल्पकी उन्नतिके विरुद्ध है। इसीसे भारतके बहुतसे पुराने शिल्प नष्ट हो गये।

भारतके वाणिज्य-विषयकी रिपोर्ट देखनेसे ज्ञात होता है कि गत १८३४।३५ से १९०२।०३ तक इस देशमें २४ अरब ४४ करोड़ ५० लाख १० हजार ७ सौ ५६ रुपयेका माल आया और यहाँसे ३० अरब ३४ करोड़ ३२ लाख ४७ हजार ४ सौ ४४ रुपयेका माल बाहर गया। गत ६५ वर्षोंमें यह ५४ अरब ७८ करोड़ ८२ लाख ५८ हजार १ सौ ९० रुपयेका माल विदेशी जहाज कम्पनियोंने देश-देशान्तरमें ले जाकर जो लाभ उठाया, उसका अधिकांश—यदि भारतीय नौ-शिल्पपर वज्रपात न हुआ होता तो निस्सन्देह यहाँके लोगोंको ही मिलता। यदि १०) सैकड़ा ब्याज रक्खा जाय, तो भी गत शताब्दीके

वैदेशिक वाणिज्यसे यहाँको कम-से-कम तो १ अरब रुपया नफा हुआ होता। पर नौ-शिल्पके नाशसे वह सब रुपया विदेश चला गया! भारतवासी राहके भिखारी हो गये!! आर्थिक क्षतिके अतिरिक्त रेलवेसे भारतकी सच्चाई भी नष्ट हो रही है। स्टेशनोंमें छः सात रुपये महीनेके नौकर रक्खे जाते हैं, इसलिए उन्हें लाचार होकर घूसखोरी करनी पड़ती और अपने भाइयोंका दुश्मन बनना पड़ता है। फरवरी सन् १९२६ की व्यवस्थापिका सभामें रेलवे-कर्मचारियों-की वेतन-वृद्धिका प्रश्न उठा था, किन्तु सरकारने कुछ भी सुनायी नहीं की। खेतीके काममें मजदूरोंकी दिन-पर-दिन तंगी पड़ती जा रही है। इसके कारणोंमें रेलवेका काम बढ़ना भी है। रेलोंसे भारतमें बीमारी बढ़ती जा रही है। इसका मूल कारण रेलवे-कम्पनियोंका कुप्रबन्ध है। स्टेशनोंके मुसाफिरखानोंमें दुर्गन्ध होनेके कारण लोगोंका बैठना कठिन हो जाता है। टिकट लेने और गाड़ी-में सवार होनेकी भीड़से स्वस्थ आदमी भी अस्वस्थ हो जाता है। तीसरे दर्जेके यूरोपियन मुसाफिरोंके लिए तो रेलवे खूब प्रबन्ध रखती है, पर जब सेकेंड और फर्स्ट क्लासके भारतीय मुसाफिरोंकी ही दुर्दशा होती है तो फिर तीसरे दर्जेके भारतीय यात्रियोंका तो कहना ही क्या। यही कारण है कि राजा दिगम्बर मित्रने मलेरिया कमी-शनके सामने यह बात सिद्ध कर दिखायी थी। पर सरकार तो जान-बूझकर ऐसा काम कर रही है, जिससे भारतीय दुर्बल, रोग-ग्रस्त और निर्धन हो जायँ। जनरल फिशरने लिखा भी है,—

There is we fear very little excuse for us in this matter; "We know the good and chose to follow the evil." And "have reaped as we have sown" the awful famines which have so frequently prevailed in India, accompanied with Plague, Cholera and

Pestilences, are the just judgments of God upon us for neglecting the interests of all the subjects placed under us by Him.

अर्थात् "ऐसा करनेका हम कोई कारण नहीं बता सकते। हमलोग अच्छी तरह जानते थे, पर जानबूझकर हमने बुरी राह ली। जैसा बोया, वैसा फल भी मिला। परमेश्वरने हमलोगोंके अधीन जिनलोगोंको रखा है, उनके कल्याणकी ओर दुर्लक्ष्य करनेके कारण ही देशमें बार-बार अकाल पड़ते हैं और प्लेग हैजा आदि रोगोंने भी उसका साथ दिया है। यह भगवान्ने हमको सजा दी है।"

वास्तवमें यदि ऐसा न होता, तो क्या सरकार इङ्गलैण्डकी धनी प्रजाको कर्ज देती और ऐसी हालतमें जबकि यहाँकी प्रजा भूखों मरती रहती? स्मरण रहे कि सरकार दोसे ढाई रुपये सैकड़े, सूदपर इङ्गलैण्डकी धनी कम्पनियोंको रुपया देती है। क्या यह शोककी बात नहीं है कि साठ करोड़ (३,८३,९०,०१३ पौं०) रुपया सरकारने इङ्गलैण्डमें सूदपर दिया है, जब कि इस देशकी प्रजा ५) सैकड़ा सूदपर रुपया ले सकती थी? हाँ भूल हुई; भारतीय किसानोंको तकावी * देनेके लिए सरकारने कानून बनाकर बड़ी दयालुता दिखायी है। तकावीकी विधि संक्षिप्तमें यों है,—

1. Land Improvements Loan Act (1883)
2. Agriculturists Loan Act (1884)

भूमिकी उन्नति करने, पशुओं, बीज और खेती सम्बन्धी अन्य चीजोंको खरीदनेके लिए किसानोंको जो धन आवश्यक हो, वह राज्यसे ले सकते हैं। पर इस कानूनका उपयोग कभी नहीं हुआ।

---

* राज्य स्वयं किसानोंको बाजार-सूद-दरसे कम सूदपर जो रुपया देता है, उसे तकावी कहते हैं। यह रुपया सरकार सूद और मूल-सहित सालाना किस्त बाँधकर निश्चित समयके भीतर वसूल करती है।

एक तो तकावी जल्द मिलती ही नहीं और मिलती भी है तो राजकर्मचारी तकावीका वास्तविक भाव न समझकर पहले तो जल्द देते ही नहीं और यदि देते भी हैं तो ५)-१०) सैकड़ा रिश्वत लेकर। बाद उसे वसूल करनेमें वे कृषकोंको बहुत तङ्ग करते हैं। पर तकावी-कमीशनके कानूनमें यह है कि यदि किसी कारणसे या फसल न होनेके कारण जमींदार तकावीकी किस्तका रुपया न दे सके, तो उस वर्ष किस्त न ली जाय और न दूसरे वर्ष उसे दूना किया जाय,—बल्कि पिछड़ी हुई किस्त को धीरे-धीरे वसूल किया जाय। किन्तु यहाँ तो जरा भी पिछड़नेसे मुकद्दमा कायम करके १०)-२०) जुर्माना पीट दिया जाता है।

सारांश यह कि यदि सरकार भारतीय प्रजाकी दरिद्रता दूर करना चाहे, तो आसानीसे दूर कर सकती है। किन्तु वह चाहे तब तो ? वह तो रेल बनानेमें भिड़ी है। नहर क्यों बनावे ? हाँ, उसमें इङ्गलैण्डवालोंका यदि लाभ होता तो जरूर ही उसमें भी लगाती। रेल बनानेमें इङ्गलैण्डको अधिक लाभ है, सो सरकारने पास ही कर दिया है कि हरसाल रेलवे लाइन बढ़ानेमें १५ करोड़ रुपया खर्च किया जाय। वाहरी, न्यायी सरकार ! हाय ! जिस देशमें २२ करोड़ ६० लाख ४५ हजार १६ कृषक हैं, उस देशकी सरकार किसानोंके लिए कुछ भी नहीं करती है। बिचारे अभागे किसानोंका हर जगह अपमान होता है, यद्यपि प्रत्येक व्यवसायीकी जीविका किसानोंपर ही निर्भर करती है। देखिये न, रेलवेको ही किसानोंसे कितनी बड़ी आमदनी है। सन् १९२६-२७ की रिपोर्टसे जाना जाता है कि फर्स्ट क्लासके कुल १० लाख १२ हजार टिकट १ करोड़ १६ लाख ६६ हजार रुपयेके बिके थे, सेकंड क्लासके १ करोड़ ६ हजार टिकट, १ करोड़ ८१ लाख ९५ हजार रुपयेके, ड्योढ़े दर्जेके १ करोड़ ४६ लाख ४५ हजार टिकट १ करोड़ ५८

लाख २० हजार रुपयेके बिके थे; किन्तु इसी साल तीसरे दर्जेके ५७ करोड़ ८४ लाख ६ हजार टिकट ३३ करोड़ १ लाख ४७ हजार रुपयेके बिके थे। यह मानी हुई बात है कि तीसरे दर्जेसे सफर करनेवाले लोग अधिकतर किसान ही होते हैं। पर इससे क्या? रेलवे-कम्पनियाँ अपने अन्न-दाताओंके सुख-दुःखकी ओर ध्यान देती हैं? जब सरकारको ही कोई परवाह नहीं है, तो फिर कम्पनियोंको क्या गरज!



आय और व्यय

इस बातका उल्लेख पिछले प्रकरणमें किया जा चुका है कि राजा समाजका प्रतिनिधि और धन-रक्षक है। तदनुसार ब्रिटिश-साम्राज्यमें भारतीय राजकोषका सब धन 'प्रजाकी सम्पत्ति' कहा जा सकता है। इसलिए शासनकी आय और व्ययका जानना, अनुचित आय-व्यय होनेपर उसमें सुधार करनेका प्रयत्न करना, प्रजाका कर्तव्य है। भारत-सरकारका जमा-खर्च असलमें हमारा ही जमा-खर्च है।

किन्तु खेदकी बात है कि यह सब-कुछ होते हुए भी अङ्गरेजी सरकार प्रजाकी सम्मतिके अनुसार कार्य करना तो दूर रहा, उसकी रायतक नहीं लेती। यहाँके शासन-कार्यमें पानीकी भाँति धन बहाया जाता है। ऐसा अन्धेर पृथ्वीके और भी किसी देशमें कभी हुआ था या नहीं, इसमें सन्देह है। ब्रिटिश-भारतके कर्णधार विलायतके प्रधान मन्त्रीको इङ्गलैंडके खजानेसे ५५ हजार रुपया वार्षिक मिलता है; किन्तु उसी ब्रिटिश-भारतके एक भाग दरिद्र भारतके राज-प्रतिनिधि बड़े लाटको २ लाख ५० हजार ८ सौ रुपया सालाना मिलता है। वेतनके अतिरिक्त उनको सफर-खर्च ७५ हजार, अतिरिक्त व्यय ४० हजार, कण्ट्राक्ट एलाउन्स १ लाख ५६ हजार और विशेष सामान वगैरहके लिए ६३ हजार रुपये मिलते हैं। वायसरायके १२४ बाडी-गार्ड हैं। देहरादूनसे दिल्ली आने-जानेका उनका खर्च २ लाख २७ हजार ४ सौ रु० है। अपव्ययका एक नमूना और देखिये। सन् १९२१ से १९२२ के अन्ततक सरकारने भिन्न-भिन्न जाँचोंके लिए पाँच कमेटियाँ मुकर्रर कीं। उनमें कुल मिलाकर १ लाख ६७ हजार ९ सौ ५२ रु० से अधिक खर्च हुआ। ब्योरा इस प्रकार हैं,—

आर्म्स-रूल्स-कमेटीमें १८ हजार, प्रेस-लाज-कमेटीमें १८३१७) रिप्रेसिव-लाज-कमेटीमें १४०५३), जातीय-भेद-कमेटीमें ३५८२१) और सीमान्तकी जाँच कमेटीमें ४०७५०) खर्च पड़ा।

इधर सन् १९२८ में कितनी अधिक कमेटियाँ बैठीं, यह किसीसे छिपा नहीं है। किन्तु कुल कितना खर्च पड़ा, इसका ब्योरा अभी-तक प्रकाशित नहीं हुआ है। बटलर-कमेटीका खर्च १६ हजार पौंड, जोकि भारतके खजानेसे दिया जायगा,—देखनेसे अनुमान किया जा सकता है कि सब मिलाकर बहुत बड़ी रकम हो जायगी। प्रजा तो भूखों मर रही है, चारों ओर अकालने प्रचंडरूप धारण कर लिया है, पर सरकार नयी दिल्लीके बसानेमें १ करोड़ २३ लाख रुपये खर्च करेगी ही। इसके अतिरिक्त १९२६-२७ की भारतीय सैनिक, इञ्जीनियरिंग-विभाग, नौ-सैनिक तथा अन्य केन्द्रीय सरकारके व्ययकी जो रिपोर्ट निकली थी, उसमें इतना अधिक अपव्यय किया गया था कि सभ्यता-के नाते उच्च-पदाधिकारियोंको भी उसकी निन्दा करनी पड़ी थी।

अब इन्हींसे मालूम हो सकता है कि भारत-सरकार किस तरह दोनों हाथोंसे गरीब प्रजाका धन लुटाती है। भारतीय आय-व्ययपर दृष्टि डालनेसे चारों ओर इसी तरहकी लूट दिखायी पड़ेगी।

सन् १९०० के पहले भारत-सरकारकी कुल आमदनी ११० करोड़ रुपयेसे अधिक नहीं थी। पर इधर बराबर बढ़ती ही जा रही है। १९००-१९०१ में ११३ करोड़, १९०५-०६ में १२७। करोड़ और १९०६-०७ में १३३ करोड़ रुपयेकी आमदनी हुई। बाद सन् १९२२-२३ में सरकारको १९८ करोड़ ८५ लाखकी आय हुई। इधर दो-तीन वर्षसे फिर कुछ आयमें कमी हुई है। सन् १९२८-२९ में १ अरब ३१ करोड़ २० लाखकी आय हुई और १९२९-३० में ।) फी मन नमक कर घट जानेके कारण ६५ लाखकी कमी होती देख, वायस-रायने एसेम्बलीकी पास की हुई बातको अपने विशेष अधिकारसे

रहकर नमक-करको पूर्ववत् ही बहाल रक्खा। अतः आगामी वर्षके लिए १ अरब ३३॥ करोड़की आयका अनुमान किया गया है। इतनी अधिक आय होते हुए भी सरकारके अन्यायसे भारतके सिर-पर कर्जका भार बराबर लदता ही जा रहा है। इस ऋणको 'सार्व-जनिक ऋण' कहते हैं। यह ऋण सन् १८५८ ई० में ५ करोड़ १० लाख पौण्ड (अथवा उस समयके हिसाबसे ५१ करोड़ रुपया और इस समय पौण्डकी दर बढ़ जानेके कारण ७६ करोड़ ५० लाख रुपया) था। इस कर्जके कारण देशी और वैदेशिक महाजनोंके पास भारतकी रेल, खाल, नहर, वन और प्रजाके खेत, घर-द्वार प्रभृति धरोधर धरे गये थे। भारत-सरकारने अपने करेन्सी विभागका सन् १६२१-२२ का जो विवरण प्रकाशित किया था; उसमें लिखा था कि सन् १६२२ तक भारतका ऋण ६१३ करोड़ रुपयेका था। अब सन् १६२६ में यह ऋण १२ अरब ४१ करोड़ ६६ लाख हो गया है; किन्तु सन् १६१४ के मार्च महीनेतक यह ऋण केवल ४११ करोड़का ही था। आठ सालमें, इस ऋणमें, १० अरबकी वृद्धि हुई है। ऋण का सूद भी बढ़ता जाता है। सन् १६१३-१४ में सूद १४ करोड़ देना पड़ता था; किन्तु अब, सन् १६२८-२६ में बहुत ज्यादा हो गया। एसेम्बलीमें सन् १६२६-३० का बजट पेश करते हुए अर्थ सद-स्य सर जार्ज सुस्टरने कहा भी है कि व्याजकी मदमें गत वर्षकी अपेक्षा १ करोड़ ३३ लाख अधिक देना पड़ा; क्योंकि कर्ज अधिक लेना पड़ा है। यूरोपके महायुद्धके पहले भारत केवल इङ्गलैण्डका २५५ करोड़ रुपयोंका ऋणी था। तबसे इधर ७५ करोड़ रुपयोंका ऋण और बढ़ गया है। सब मिलाकर ३३० करोड़ रुपये भारतके ऊपर ऋणके रूपमें इङ्गलैण्डके लदे हैं। इस ऋणका सूद कई करोड़ रुपया सालाना भारतको देना पड़ता है।

सरकारी ऋणके इस १२४१ करोड़ ६६ लाख रुपयेमें ६६८

करोड़ ६० लाख रुपया केवल रेलवेके लिए कर्ज लिया गया है। ७६॥ करोड़ रुपया भूतपूर्व ईष्ट इरिडया कम्पनीसे भारतका राज्य खरीद करनेके लिए सन् १८५८ ई० में कर्ज लिया गया था। उस वक्त इसका परिमाण केवल ५१ करोड़ रुपया था। किन्तु अब पौराडकी दर बढ़ जानेके कारण ७६॥ करोड़ हो गया। अगर यह ऋण चुका दिया गया होता तो आज ५१ करोड़की जगह ७६॥ करोड़ न देना पड़ता।

ईष्ट इरिडया कम्पनीने अपने शासन कालमें यहाँके लोगोंसे कई तरहसे एक अरब रुपया वसूल किया था। फिर भी उससे राज्य लेनेके समय उसे ५१ करोड़ रुपया भारतका दाम दिया गया। कम्पनीसे इङ्गलैराडने भारतवर्ष खरीदा, इसलिए इसका दाम इङ्गलैराडके राज-कोषसे देना उचित था। पर असलमें वैसा नहीं हुआ। वह रकम भी भारतवर्षके ही नाम लिखी गयी। इसका खुलासा यह कि हमलोगोंने ही ५१ करोड़ देकर अपनेको इङ्गलैराडके हाथ वेच दिया। एक बूँद रक्त या एक छदाम भी विना खर्च किये इङ्गलैराड ३१ करोड़ भारतवासियोंका मालिक वन वैठा। कैसी लीला है, वेचनेवालेको रुपये मिलते हैं, पर अभागे भारतको अपनेको दूसरेके हाथ वेचनेके लिए भी ५१ करोड़ देने पड़े।

ट्रांसवालमें अपना प्रभुत्व वनाये रखनेके लिए सामान्य वुअरयुद्ध-में अङ्गरेजों ४५० करोड़ रुपया इङ्गलैराडके खजानेसे खर्च करना पड़ा था। इसके सिवाय जो खूनकी नदी वह निकली थी, उसकी तो बात ही जुदी। पर विशाल भारतवर्षके लिए उन्हें एक छदाम भी नहीं खर्च करना पड़ा। साम्राज्य-विस्तारके लिए पैसा दिया हमने, खून वहाया हमने और राजा वन वैठे अँगरेज। सन् १८६० में इङ्गलैराडके 'सार्वजनिक ऋण' का परिमाण ८२ करोड़ ६० लाख पौंड था। पर १८९६ में ही वह घटकर ६५ करोड़ ४० लाख पौंड हो गया। किन्तु इसी समय भारतका 'सार्वजनिक ऋण' आयके बढ़ते रहनेपर भी—

बराबर बढ़ता गया। "जस जस सुरसा बदन बढ़ावा, तासु दुगुन कपि रूप दिखावा।" शिक्षित अँगरेजोंने तो कर्जखोरीमें भी भारतीय किसानोंके कान काट लिये। पहले महारानी विक्टोरियाके समय प्रत्येक भारतवासी 'सार्वजनिक ऋण' का ३) का ऋणी था, पर अब करीब चौदह गुना अधिक अर्थात् ४०) का ऋणी हो गया।

हम मानते हैं कि सभ्य जातिमात्रपर कई करोड़ रुपये ऋणके हैं। पर स्वाधीन जातिके ऋणकी बात और है। स्वाधीन और सभ्य जाति जो कुछ ऋण करती है, वह देश-विजय तथा साम्राज्यकी आय और महिमा बढ़ानेमें, उपनिवेश-स्थापन करनेमें, देशका वैभव बढ़ानेमें खर्च होता है। केवल इसी कामके लिए ही सभ्य जातियाँ ऋण लेती भी हैं। किन्तु भारत तो इस खर्चके लिए ऋणी हुआ ही नहीं। गत सौ वर्षोंमें भारतमें करीव सौ बार अकाल पड़ा होगा और उसमें कई करोड़ आदमी मरे होंगे। पर इस काममें सरकारने कितना धन खर्च किया? प्रजाका स्वास्थ्य सुधारनेके लिए, मलेरिया, प्लेग, हैजा, इन्फ्लूएंजा प्रभृतिके रोकनेमें सरकारने क्या खर्च किया? यहाँके धान्य विदेशी बाजारोंमें अन्य देशोंके धान्यसे हीन समझे जाते हैं, पर इस दशाको सुधारनेके लिए भी सरकारने कुछ नहीं किया! कुछ दिनोंसे जिलोंमें कृषि-विभाग खोले भी गये, तो अँगरेज हौओंसे सीधे किसान कुछ लाभ ही नहीं उठा रहे हैं। कहनेका अभिप्राय यह है कि यदि इन कामोंमें खर्च नहीं किया गया है तो इतना ऋण कैसे हुआ? प्रत्येक भारतवासीको यह पूछनेका पूर्ण न्यायोचित अधिकार है।

सन् १८३७ में जब महारानी विक्टोरिया सिंहासनपर बैठीं, तबसे १८५७ तकके इस देशके राज-कोषका हिसाब बारीकीसे देखनेसे मालूम हो जायगा कि उस समयतक यहाँकी आमदनीमेंसे यहाँका सब तरहका खर्च बाद देकर भी हरसाल अकूत रुपया बच जाता था। पर सरकार होमचार्जेजके बहाने हरसाल यहाँसे अधिकाधिक रुपये

इङ्गलैण्ड भेजती जाती थी। इस प्रकार यहाँका ऋण बढ़ता गया। सन् १८३७ ई० में जिस होमचार्जका परिमाण २ करोड़ ३० लाख रुपया था, वही १८५७ में क्रमशः आयके अनुसार बढ़कर ६ करोड़ सवा सोलह लाख होगया था। यदि भारतके सम्बन्धमें इङ्गलैण्डमें होनेवाला खर्च भी ब्रिटिश उपनिवेशोंके खर्चके समान इङ्गलैण्डके खजानेसे दिया जाता, तब भी भारत ऋण-ग्रस्त न होता और भारतके कोषमें बहुतसे रुपये जमा हो जाते।*

सिपाही-विद्रोह (या सन् १८५७ का बलवा) दमन करनेके लिए इङ्गलैण्ड के ४० करोड़ रुपये खर्च हुए थे। पर यह खर्च भी भारत-वासियोंके सर लादा गया। अर्थात् जिस तरह भारत अपने रुपयेसे अपनेको मोल लेकर इङ्गलैण्डके हाथमें हुआ, उसी तरह उसने सिपाही-विद्रोहमें करोड़ों रुपया कर्ज लेकर, अपने बच्चोंको ही गोलियों का शिकार बना, विद्रोह शान्त किया और चूँकि भारतने अपनेको पहले ही इङ्गलैण्डको दे दिया था, इसलिए उसका शासन दृढ़ किया। विद्रोह शान्त करनेके लिए इङ्गलैण्डसे जो सेना यहाँ आयी थी, उसका इङ्गलैण्ड छोड़नेके छः महीने पहले-तकका वेतन जोड़कर बिचारे भारतसे वसूल किया गया था। कहना नहीं होगा कि इस विद्रोहके मूलकारण अङ्गरेज ही थे। अङ्गरेजी सेनाके भूतपूर्व प्रधान सेनापति स्वयं लार्ड राबर्टस्ने भी स्वीकार किया है कि "विद्रोहके समय कार-तूसके बारेमें जो अफवाह उड़ी थी, वह झूठ नहीं थी। वास्तवमें उस समय कारतूसोंमें गाय और सूअरकी चर्बी लगायी जाती थी।"

---

* उपनिवेशोंका काम देखनेके लिए इङ्गलैण्डमें एक राज-शासन-विभाग है, इसे 'कलोनियल आफिस' कहते हैं। इसमें वार्षिक १५ लाख रुपया खर्च होता है, जो कि इङ्गलैंडके खजानेसे दिया जाता है। पर भारतके लिए जो वार्षिक ७५ लाख रुपया खर्च होता है, उसमेंसे एक छदाम भी इङ्गलैंड नहीं देता। सब भार निर्धन भारतीय प्रजाके ऊपर लादा जाता है।

अब पाठक समझ सकते हैं कि विद्रोह पैदा करनेवाला कौन है। जिन लोगोंने धर्मनाशके भयसे डरकर आत्म-रक्षार्थ तलवार उठायी थी,—कौन ऐसा माईका लाल है जो उन्हें अपराधी ठहरा सकता है! संसारकी सारी जातियाँ सरेआम कहती हैं कि 'जो जाति धर्मपर मरनेके लिए तैयार नहीं, उसका नाम रहना ही संसारके लिए कलंक है।' किन्तु यह सब कुछ होते हुए भी बहुतसे भारतीयोंको प्राण-दान देकर इस पापका (!) प्रायश्चित्त भी करना पड़ा था। जो लोग इस दुर्घटनामें मरे नहीं थे तथा उन्हें प्राण-दण्डकी सजा भी नहीं दी गयी थी, उन्हें और-और तरहसे बहुतेरे दुःख उठाने पड़े थे तथा कई तरहसे लांछित होना पड़ा था। इन लोगोंके साथ कितने ही निर्दोष आदमी गेहूँके साथ घुनसे पीसे गये थे। जिनका किसी भी प्रकारसे विद्रोहके साथ सम्बन्ध नहीं था, उनकी जायदाद भी नौकरशाहीने जब्त कर ली थी। इस प्रकार एक ओर तो सब विद्रोहियोंको थोड़े पापके लिए भयंकर दण्ड दिया गया और दूसरी ओर उनके सिर ४० करोड़ रुपयेका खर्च-भार भी। इस अन्यायका भी कुछ ठिकाना है? जिन्होंने आपके मनसे अपराध किया था, उन्हें तो खैर कठोर दण्ड दिये गये; पर जो लोग निर्दोष थे और जिन्होंने देशके सिपाहियोंके विरुद्ध विद्रोह-दमनके लिए अङ्गरेजी राज्यको तन, मन, धनसे सहायता दी थी, उनके कन्धोंपर ४० करोड़ रुपयेका यह बोझ क्यों लादा गया? और फिर जुर्माना किया सो तो किया ही, किन्तु उनके शस्त्र भी क्यों छीन लिये गये?

कुछ लोगोंका कहना है कि १८५७ का सिपाही-विद्रोह अँगरेजोंकी जड़ उखाड़नेके लिए हुआ था। किन्तु यह केवल भ्रम फैलानेवाली बात है। यदि इस अभिप्रायसे वह विद्रोह हुआ होता, तो यह तय बात थी कि यहाँ अँगरेजोंकी जड़ न रह गयी होती। इस बातको इङ्गलैंडके प्रसिद्ध इतिहासज्ञ सर जान सीलीने 'एक्सपेन्शन

आफ इङ्गलैण्ड' नामक ग्रन्थमें अच्छी तरह सिद्ध कर दिखाया है। इधर भारतकी तो यह दशा हुई, पर उधर बोअरोंको देखिये। उन्होंने अँगरेजोंके साथ युद्ध भी किया, भारतके सिपाहियोंसे बढ़कर अँगरेजोंकी हानि भी की, पर इस कामके बदले पाया उन्होंने स्वराज्य! एक ही बातके दो भिन्न प्रकारके फल क्यों? क्या यही हमारी निर्मल राज-भक्तिका पुरस्कार है? विद्रोह शान्त करनेके लिए स्वदेश-वासियोंके विरुद्ध अँगरेजोंकी सहायता करनेका क्या यही फल है? जिन्होंने धर्म-रक्षार्थ शस्त्र धारण किया था; तथा जिन्होंने उस भङ्कर समयमें भी अँगरेजोंको जी-जानसे मदद दी थी, उन्हींके वंशधर आज भी चालीस करोड़का सूद हरसाल दे रहे हैं। यह देखकर किसका कलेजा नहीं फटता?

इसी तरहके बहुतसे वाहियात खर्च जोड़कर ऋणका परिमाण बढ़ाया गया है। भारतीय प्रजाके इस सरकारी ऋणके लिए यदि इङ्गलैण्डकी गवर्नमेण्ट जामिन होती तो रुपये बहुत कम सूदपर मिल जाते। पर ऐसा नहीं किया गया। खुद राजाने भारतकी प्रजाके कन्धोंपर जो यह बड़ा भारी ऋणका बोझ लाद दिया था, उसके लिए जामिन होनेसे एकदम इनकार किया। फलतः महाजन अधिक सूद माँगने लगे। लाचार होकर भारत-गवर्नमेण्टको विलायती गवर्नमेण्ट के अत्याचारसे अधिक सूदपर रुपये लेकर काममें लाना पड़ा। दरिद्र भारतवासी इस प्रकार जामिनसे वंचित होकर आज भी कड़ा सूद दे रहे हैं। सन् १८५६ में पार्लमेण्टमें लार्ड स्टानलीने यह बात उठायी थी, पर उसके उत्तरमें ब्राइटने कहा कि भारत-गवर्नमेन्ट ऐसी शाह-खर्चा है कि उसका जामिन होनेसे पीछे कभी-न-कभी अँगरेजोंको हानि उठानी पड़ेगी। सारांश यह कि अधिक खर्चके कारण अगर भारत-गवर्नमेण्टका कभी दिवाला निकल गया, तो महाजन इङ्गलैण्डके खजानेसे रुपये वसूल करनेकी चेष्टा करेंगे। ब्राइटके इस

सन्देहपर पार्लमेण्टने भारतके ऋणके लिए महाजनोंके पास जामिनदार होनेसे इनकार किया। लार्ड स्टाली के कथनानुसार यदि इङ्गलैण्डकी गवर्नमेण्ट जामिन होती तो आज हमें ३-४ करोड़ रुपये हरसाल सूदके कम देने पड़ते। इसके अतिरिक्त भारत-गवर्नमेण्टके अपव्ययपर भी इङ्गलैण्डके कर-दाताओंकी कड़ी नजर रहती, जिससे हमारा ऋण भी इस तरह न बढ़ने पाता।

अब हम भारत सरकारकी आयका दिग्दर्शन ब्योरेवार कराना चाहते हैं:—

मद	सन् १९२८-२९		सन् १९२९-३०	
	करोड़	लाख	करोड़	लाख
जकात	५०	४	५१	२२
आय कर	१६	५०	१६	६०
नमक	७	६५	६	३५
अफीम	३	४८	३	६
रेल	३८	६१	४०	५६
नहर		११		१३
डाक तार		३२		५८
ब्याज	३	५८	३	४५
मुल्की प्रबन्ध	१	१	१	१२
सिक्का टकसाल	२	६८	३	५
सिविल वर्क्स		१६		१८
प्रान्तीय कर		५		
खासमदें तथा विविध	६	७१	७	७६
जोड़.........	१३१	२०	१३४	६

खास मदों तथा विविधमें लगभग १ करोड़ रुपया देशी राजाओं से मिलनेवाला कर, आने-जानेवाले मालका कर तथा और भी अनेक तरह के कर शामिल होंगे।

स्मरण रखनेकी बात है कि नमक जैसे आवश्यक पदार्थपर पृथ्वीके किसी भी सभ्य राज्य में कर नहीं लिया जाता, पर भारतमें यह भी अन्धेर है। कुछ दिन पहले जापानमें नमकपर कर लिया जाता था, पर अब एकदम बन्द हो गया। चीनमें नमकपर कर बैठाया गया है, पर जापानवाले चीनकी इस प्रथाको वर्बर कहा करते हैं। अङ्गरेजोंसे पहले भारतके अधिकांश स्थानोंमें २० मन नमक पर डेढ़-पौने दो रुपयेसे अधिक कर नहीं लिया जाता था। उन दिनों नौ आना मन नमक बिकता था। उड़ीसा जैसे समुद्र-तीरवर्त्ती स्थानोंमें तो साढ़े तीन ही आने मन नमक था। उस समय पशुओंको भी अच्छी तरह नमक खिलाया जाता था, पर अङ्गरेजोंने इतना अधिक कर नमकपर बैठा दिया कि पशुओंको कौन कहे, कितने गरीब आदमियोंको भी नमक खाना नोहर हो गया। सन् १८८८ से १९०३ के मार्चतक नमक पर ढाई रुपया फी मन अङ्ग-रेज वहादुर यहाँ कर लेते थे। फिर १९०३ में ही यह कर घटा-कर २) मन कर दिया गया। बाद १९०५ में १॥) मन, १९०७ में १) मन, १९१६ में १।) मन, १९२३ में फिर वढ़ाकर २॥) मन और १९२४ में १।) मन कर लिया गया। १९२४ के बाद १९२८ तक इस करमें किसी प्रकारकी न्यूनाधिकता नहीं की गयी। इस करको हटानेके लिए भारतवासी लड़ते रहे पर फल कुछ भी न हुआ। न तो सरकारने यह टैक्स ही कम किया और न भारतमें खपतके अनुसार नमक बनाने तथा बाहरी नमककी आमदनी रोकने-की व्यवस्था ही की। ७ मार्च सन् १९२९ को नयी दिल्लीकी बड़ी कौंसिलमें पं० नृसिंह चिन्तामणि केलकरने कहा कि—नमकके लिए

भारतको दूसरे देशोंपर निर्भर न रहना पड़े, इसका प्रबन्ध होना चाहिए। भारतको जितने नमककी आवश्यकता पड़ती है, वह यहाँ तैयार हो सकता है या नहीं, यह बात विचारणीय है। श्री दोराव स्वामी ऐयंगरके कथनानुसार भारतमें प्रतिवर्ष ७० करोड़ मन नमककी जरूरत पड़ती है। उसमेंसे ६२ करोड़ मन नमक विदेशोंसे मँगाना पड़ता है। बाकी लगभग ७ करोड़ ९३ लाख मन यहीं तैयार होता है। भारतमें नमक तैयार करनेका हर तरहका सुभीता है। यहाँ न तो समुद्र-तटका अभाव है और न धूप या सस्ते मजदूरोंका ही। नमक तैयार करनेकी कलासे भी यहाँके लोग वंश-परम्परासे परिचित हैं। यह कहना गलत है कि बंगालियोंको देशी नमकका स्वाद अच्छा नहीं लगता। इङ्गलैंडके नमक-व्यवसायकी उन्नति करनेके लिए सरकारने भारतके नमक-व्यवसायको जान-बूझकर चौपट किया। अब सरकारको चाहिए कि विदेशी नमकपर खूब अधिक चुङ्गी लगाकर देशी नमकके कारखानोंको प्रोत्साहन दे। किन्तु केलकरजीकी बातोंपर भी ध्यान नहीं दिया गया। कई दिनों-तक बहस होनेके बाद ता० २२ मार्च १९२९ को नमक-कर १।) से घटाकर १) फी मन किया जाने वाला था। इस ।) मनकी घटतीसे सन् १९२९-३० की आमदनीमें १५ लाख रुपयेकी और उसके बाद हर साल १ करोड़ ३० लाख रुपयेकी कमी पड़ती। अतः लोकमत कुचलकर नमक-कर ज्यों-का-त्यों रक्खा गया—घटाया नहीं गया।

साधारणतः एक मन नमक तैयार करनेमें छः पैसे खर्च होते हैं। सो छः पैसेके मालपर १।) (पीछे १) रुपया) कर! ता० १ मार्च १९२३ को बड़ी व्यवस्थापिकाके अर्थ सदस्य सर बेसिल ब्लैकेटने १९२३-२४ का बजट पेश करते हुए नमकपर ढाई रुपया मन कर बैठानेकी अनुमति देनेकी धृष्टता की थी। क्या यह बात भूलनेके लायक है।

पहले नमकका व्यवसाय भारतके हिन्दू या मुसलमान शासकोंके हाथमें एकदम नहीं चला गया था। समुद्रके किनारे कई जगह देशी महाजनोंके नमक बनानेके कारखाने थे। देशके खर्चके लिए काफी नमक पैदा कर लिया जाता था। यहाँ विदेशसे नमक मँगानेकी कभी जरूरत नहीं पड़ी थी। किन्तु ऐसी आवश्यक चीजका व्यापार भी अँगरेजोंने अपने हाथमें ले लिया। इसमें सरकारका मुख्य उद्देश्य विलायतके नमक-व्यवसायियोंको उत्तेजित करना था। सरकारने बंगाल और बर्मावालोंको जबर्दस्ती विदेशी नमक खानेकी आदत लगायी। सन् १८३२ में सरकारने नमकके व्यवसायको अपने ही हाथमें ले लिया। १८८२ में पहले-पहल नमकपर कर लगाया गया और देशी नमकके कारखानोंको नाना प्रकारका कष्ट पहुँचाया जाने लगा। उस समय बर्मामें तैयार होनेवाले नमकपर फी सदी २५० कर लगाकर सरकारने वहाँके इस व्यापारको नष्ट किया था। उड़ीसाका नमक बनना भी सरकारने ही नष्ट किया। उड़ीसाका बना नमक भारतभरमें सबसे अच्छा समझा जाता था। सरकारने उसका बनना रोक दिया। कारण यह बताया कि नमक बनानेके लिए काफी ईंधन नहीं मिल सकता। इस प्रकार झूठा बहाना और जियादती करके इस व्यवसायको मिट्टीमें मिलाया गया था। इसीसे सन् १८९१-९२ सालमें विलायतसे ६० लाख २ हजार १ सौ मन नमक इस देशमें आया और १९२१-२२ में कुल २ करोड़ ९८ लाख मन नमक विदेशसे आया था। स्वदेशी आन्दोलनके समय बंगालने नमक तैयार करना चाहा, पर सरकारने रुकावट डाल दी। यहाँतक कि जर्मन युद्धके समय विदेशी नमकका अभाव होनेपर भी सरकारने नमक बनानेकी अनुमति नहीं दी। धार्मिक हिन्दू और मुसलमान विदेशी नमकको अपवित्र समझते थे। कितने ही निष्ठावान हिन्दू तो इसे छूते तक नहीं थे। कारण, इसमें कभी-कभी अनेक तरहके

भी प्रायः ऐसी ही बात है। आजकल विद्यालयोंमें नैतिक शिक्षा तो बिलकुल दी ही नहीं जाती। जो कुछ गुलामीकी शिक्षा दी भी जाती है, उसका उचित प्रबन्ध नहीं। इस देशके शिक्षा-विभागमें सरकार बहुत दिनोंतक न्यूनाधिक एक करोड़से अधिक खर्च नहीं करती थी। अर्थात् भारतके प्रत्येक मनुष्यकी शिक्षाके लिए डेढ़ पैसा साल खर्च किया जाता था। हाँ, मादक वस्तुओंके प्रचारकी शिक्षा देनेमें सरकार नहीं चूकती। इसका कारण यह है कि मादक वस्तुओंसे सरकारको खासी आमदनी है। सन् १९११-१२ में मादक वस्तुओंके ठीकेसे सरकारको ७४ लाख ८८ हजार पौंड अर्थात् ११ करोड़ २३ लाख २० हजार रुपयेकी आय हुई थी। सन् १९२८-२९ में भी अफीमसे ३ करोड़ ४८ लाखकी आय हुई है।

शिक्षा-विभागपर ध्यान देनेके लिये भारतवासी बराबर सरकारसे लड़ते रहे। परिणाम यह हुआ कि अब कुछ खर्च किया जाने लगा। सन् १९२५-२६ में सरकारने पबलिक फंडका मिलाकर २२ करोड़ ७७ लाख ९२ हजार ५३२ रुपया खर्च किया अर्थात् फी आदमी लगभग साढ़े ग्यारह आना। खर्च तो बढ़ाया गया; पर शिक्षा-प्रणालीमें कुछ भी सुधार नहीं किया गया। अतः इस व्यय-वृद्धिसे भारतीयोंका कुछ भी लाभ नहीं हो रहा है। पाठकगण यह जाननेके लिए उतावले होंगे कि जब किसानोंके लिए तथा देशकी शिक्षाके लिए खर्च इस तरह किया जाता है, तो फिर आखिर यहाँकी आय किस मदमें खर्च होती है! इसलिए अब उसीका उल्लेख करना आवश्यक है।

पिछले किसी अध्यायमें 'होमचार्जेंज' का अर्थ लिखा जा चुका है। स्वर्गीय दादाभाई नौरोजीने होमचार्जको 'भारतकी लूटके रुपये' कहा है। हम इसे सलामी कह सकते हैं। पहले इस सलामीका परिमाण ३ करोड़ रुपया वार्षिक था। बढ़ते-बढ़ते सन् १९०५-०६ में

इसकी संख्या ४७ करोड़ ४ लाख हो गयी। सन् १९०६-०७ में तो ५० करोड़ १ लाख रुपया भेजा गया। यह रकम हर साल कुछ-न-कुछ घट-बढ़ जाती है। सन् १९१३-१४ में ४६ ६ करोड़ रुपया सन् १९२३-२४ में ४२ करोड़ १८ लाख १२ हजार रुपया भेजा गया था। कहना व्यर्थ है कि इन रुपयोंके बदले विलायतवालोंसे भारतवासी कुछ भी नहीं पाते।

इस होमचार्जके बारेमें सन् १८३८ में मि० माएटगोमरी मार्टिनने लिखा था कि,—"ब्रिटिश-भारतमें प्रति वर्ष ३० लाख पौंड के हिसाबसे गत तीस वर्षोंमें १२) सालाना चक्रवृद्धि ब्याज दरसे ७२ करोड़ ३९ लाख ९७ हजार ७ सौ पौंड यानी १० लाख ८५ करोड़ ९९ लाख ६५ हजार ५ सौ रुपये होमचार्जके नाम इङ्गलैण्ड भेजे गये हैं। यदि गत ५० वर्षोंका सूद जोड़ा जाय तो खूब कम दरसे भी ८४ अरब रुपये होते हैं। इस तरहके बराबर धन-शोषणसे इङ्गलैण्ड भी निर्धन हो सकता है। जिस भारतके मजदूर दिनभर काम करके भी दो-तीन आनेसे अधिक कमा नहीं सकते हैं, उस भारतकी इस प्रकार धनके सोखे जानेसे क्या दशा हो सकती है, इसका अनुमान आसानीसे किया जा सकता है।" आपने और भी कहा है,—

I do not think it possible for human ingenuity to avert entirely the evil effects of a continued drain (for half a century) of three or four million Pounds a year from a distant country like India and which is never returned in any shape.

अर्थात् "पचास वर्षतक बराबर विदेशमें इस प्रकार धनकी नदी बह जानेसे भारतकी जो हानि हुई है, मैं नहीं समझता कि मनुष्यमें उसे सुधारनेकी शक्ति है। कारण, इस धनराशिके बदले भारतवासी इङ्गलैण्ड से कुछ भी नहीं पाते।" सर जार्ज विंगेटने होम-

चार्जके रुपयोंको राजकरका निष्ठुर भार (Cruel barden of tribute) कहा है। प्रसिद्ध अर्थनीतिज्ञ मिल साहबने भारतवर्षके इतिहासके छठे खण्डमें इस धन शोषणपर इस प्रकार अपना विचार प्रकट किया है,—

It is an exhausting drain upon the resources of the country the issue of which is replaced by no reflex; It is an extraction of the life-blood from the viens of national industry which no subsequent introduction of nourishment is furnished to restore.

अर्थात् "इस धन शोषणसे देशकी सम्पत्ति निःशेष हो रही है; इसके परिवर्तनमें उन्हें कुछ भी दिया नहीं जाता है। यह राष्ट्रीय-उद्योग रूपी धर्म-नियमोंमेंसे जीवन-रक्तका सोख लेना है; जिसकी क्षतिपूर्त्ति करनेके लिए कोई भी पौष्टिक औषधि नहीं दी जाती है।" इस प्रकार सहृदय लेखकोंने विचार प्रकट किये हैं।

माण्टगोमरी द्वारा प्रकाशित हिसाबके देखनेसे मालूम होता है, कि सन् १८३३ तक भारतसे ८४ अरब रुपये विलायत गये। उसके बादसे १८५८ ई० तक हर साल तीस-चालीस लाख पौंड देशान्तर जाया करता था। मांटगोमरीके बताये हिसाबसे इन बीस वर्षोंमें मय सूदके कितने रुपये विलायत गये होंगे, उसका हिसाब हमारे पाठक आसानीसे लगा सकते हैं। सिपाही युद्धतक २५ वर्षोंमें ३४ करोड़ रुपया सालाना विदेश गया था। सन् १८५८ के बाद २२ वर्षोंका कोई हिसाब नहीं पाया जाता कि कितना धन यहाँसे बाहर गया। पर यह बात सच है कि इस होमचार्जका परिमाण बराबर बढ़ रहा था। गत ३८ वर्षोंमें होमचार्जके वेतन और पेन्शनके मिस वार्षिक ४५ करोड़ रुपयेके हिसाबसे १७ अरब रुपये विदेश गये।

चक्रवृद्धि ब्याजके हिसाबसे मय सूद यह १७ अरब रुपये कितने हो जायंगे, उसपर जरा विचार करनेकी जरूरत है।

देशके इस वृथा धननाशसे दुखी होकर १६वीं नवम्बर १८८० में स्वर्गीय श्रीयुत दादाभाई नौरोजीने भारतसचिवको जो पत्र लिखा था, उसकी अन्तिम लाइनें ये थीं,—

The thoughtless Past Drain we may consider as our misfortune, but a similar future will, in Plain English, be dellberate Pluder and destruction.

अर्थात् "विना विचारे जो यह धन सोखा गया है उसे हम दुर्भाग्य समझते हैं, पर भविष्यमें यदि ऐसा हुआ, तो उसे हमलोग जान बूझकर की हुई लूट ताराज समझेंगे।" यह तो हुई होमचार्जकी बात, अब सेना-विभागका अपव्यय देखिये।

भारत-सरकार पिछले वर्षोंमें किस प्रकार सैनिक खर्च उत्तरोत्तर बढ़ा रही थी इसका दिग्दर्शन करानेके लिए कुछ वर्षोंका विवरण दे देना ही काफी है:—

सन्	सैनिक व्यय
१८८७-८८	२० करोड़ ४१ लाख रुपया
१८९०-९१	२० करोड़ ६६ ,, ,,
१८९४-९५	२४ ,, ६ ,, ,,
१९०२-०३	२८ ,, २३ ,, १६ हजार ८० रुपया
१९०७-०८	३० ,, ६२ ,, ३६ ,, ८०५ ,,
१९२०-२१	४६ ,, × ×
१९२२-२३	६८ ,, × ×

इस प्रकार ३४ सालके भीतर सैनिक खर्च तिगुनासे भी अधिक

कर दिया गया। यह खर्च कैसे-कैसे खर्च किया जाता है, यह जानने-के लिए दो सालका विवरण भी दे दिया जाता है:—

१९२०-२१	करोड़ रु०	१९२२-२३	करोड़	लाख रु०
स्थायी सेना	१५	स्थायी सेना	५०	१३
फर्स्ट रिजर्व	१०	होम मिलिटरी	१७	३५
टेरिटोरियल रिजर्व	५	जलसेना	१	३७
जल-सेना और हवाईफौज	५	मिलिटरी वर्क	४	६५
शस्त्रागार आदि	३	अतिरिक्त	१७	१४
अतिरिक्त	१	कुल	९० क०	६४ ला०
होमचार्जेज	१०	लेस रिसिस्ट	५ क०	६४ ला०
कुल	४९	शेष	८५ करोड़*	
लेस रिसिस्ट	४			
शेष	४५			

इन दो वर्षोंके बजटोंको देखनेसे ही मालूम हो जाता है कि किस तरह हरसाल सैनिक खर्च बढ़ाकर सरकारने भारतके रुपयोंका अपव्यय किया है। घाटेकी पूर्तिके लिए सरकार अपना खर्च कम नहीं करती। प्रजापर नया कर बैठाकर ही घाटेकी पूर्ति हमेशा करती है। पता नहीं कि इन तरह-तरहके टैक्सोंका बढ़ना कभी बन्द भी होगा या नहीं। गत सन् १९१४ से १९२२ तक ५८ करोड़ २९ लाख रुपयेकी कर-वृद्धि सरकार कर चुकी थी, फिर भी उसे १९२३-२४ में घाटा ही दिखलायी पड़ा। ता० १ मार्च १९२३ को बड़ी व्यवस्थापिका सभाके अर्थसदस्य सर बैसिल ब्लैकेटके सन् १९२३-

* ८५ करोड़ का बजट पास हुआ था, किन्तु ६८ करोड रुपये ही सेना के लिए खर्च किये गये थे,—यह बड़े ही हर्ष की बात है।

२४ के पेश किये हुए नीचेके वजटसे सरकारकी आय और व्ययका अच्छी तरह पता चल जायगा,—

"अनुमान किया था कि १९२२-२३ में ९ करोड़ रुपयेका घाटा लगेगा पर अभी हालके हिसावसे पता लगा है कि करीव १७॥ करोड़का घाटा है। व्यय चार करोड़से कुछ अधिक कम हुआ। इस सालमें जो ऋण लिया गया है उसमेंसे अधिकांशका छःमाही सूद अगले वर्ष देना है। इसलिये वचतका आधा इसी सूदके लिये रखा गया है। वज़ीरिस्तानमें पौने दो करोड़ और अधिक सेना तोड़नेसे दो करोड़ व्यय पड़नेपर भी सेना-विभागके व्ययमें आधे करोड़की वचत हुई। अफीम और नमकके करसे करीव एक करोड़ अधिक आमदनी होनेपर भी कर-वसूलीमें साढ़े वारह करोड़की कमी रह गयी। पुराने इनकम-टैक्सके अनुसार पुनर्व्यवस्था करनेके कारण कलकत्तेमें इनकम-टैक्सकी अधिक रकम लौटा देनी पड़ी, जिसके कारण इनकम-टैक्सकी आमदनीमें साढ़े तीन करोड़का घाटा लगा। चुङ्गी (कस्टम) में तीन करोड़की कमी हुई। इसमें-से आधी कमीका कारण चीनीकी दरका गिर जाना है। पोस्ट और टेलिग्राफ-विभागमें करीव एक करोड़ कम आमदनी हुई; पर सबसे अधिक टोटा रेलवेमें लगा। रेलभाड़ेमें सब मिलाकर साढ़े सात करोड़की कमी हुई। पर रेलवे चलानेके व्ययकी कमी और सूद आदिका हिसाब किया जाय तो इसका परिमाण एक करोड़का घाटा होगा, पर अनुमान किया गया था कि पाँच करोड़ नफा होगा।

"सबसे प्रत्यक्ष बात यह है कि प्रतिवर्ष आयसे व्यय अधिक हो रहा है। जिसका परिणाम यह हुआ है कि पाँच वर्षोंका टोटा मिलानेपर आयसे व्यय १०० करोड़ अधिक हुआ है। इस प्रकारका घाटा बार-बार होनेसे रोकनेका प्रबन्ध होना चाहिये। गत ९ वर्षोंमें रुपया ऋण (हिन्दुस्थानमें लिया हुआ ऋण) २४६ करोड़से बढ़कर

४२१ करोड़, और पौंड-ऋण (इङ्गलैण्डमें लिया हुआ ऋण) १७ करोड़ ७० लाख पौंडसे बढ़कर २४ करोड़ पौंड हो गया है, यद्यपि वर्तमान वर्षमें स्थायी ऋण बहुत कम हो गया है पर तो भी २२ करोड़ ट्रेजरी बिलको जो रकम चुकानी है, उसके कारण भारतकी आर्थिक अवस्थाको बड़ा भय है। सिक्केकी दर गिर जाने और नोटकी बढ़तीकी बुराईसे हिन्दुस्तान बचा नहीं है, पर अन्य दूसरे कई देशोंसे इसकी अवस्था बहुत अच्छी है। गत कई वर्षोंसे लगातार घाटा होनेके कारण अधिक नोट निकालकर और भी कर लोगोंपर बैठाना पड़ा है, जिसके कारण वर्त्तमान और भविष्यके बजटपर भी भारी बोझ लदता जाता है, इसके कारण हिन्दुस्तानकी साख नष्ट होती जाती है, ऋण लेनेका व्यय बढ़ता जाता है और जो सुरक्षित पूँजी उद्योग-धन्धोंकी उन्नतिमें लगा भी दी जाती है उसका ह्रास हो रहा है।

"यदि इस विषयमें बजटका युग समाप्त हो जाय तो मुद्राकी स्थिति कुछ सन्तोष-जनक समझी जा सकती है। भारतका निर्यात व्यापार बढ़ रहा है; मुद्राका 'आधार कोष' सुदृढ़ है। रुपये और पौंड के बीच विनिमयकी दर सुधर चली है और मूल्यमें आशाजनक कमी हुई है। जबर्दस्ती विनिमयकी दर बढ़ानेका प्रयत्न वांछनीय नहीं, क्योंकि इससे आर्थिक सङ्कट उत्पन्न हो जायगा या निर्यात व्यापारमें कमी करनी पड़ेगी। मेरा उद्देश्य स्थिरता प्राप्त करना है। यद्यपि इसके लिये अन्तिम प्रयत्न करनेका समय अभी नहीं आया है।

"सेना-विभाग और कुछ अंशोंमें पोस्ट और टेलिग्राफ विभागको छोड़कर अन्य विभागोंमें इञ्चकेप-कमेटीकी सिफारिशोंका समावेश ब्यौरेवार नहीं किया जा सकता। पर कमेटीकी सिफारिशोंका महत्व अभी समझमें ठीक रीतिसे नहीं आवेगा। इसलिये एक मोटे रकमकी कमी कर दी गयी है और कई विभागोंको बन्द करनेके

लिए कुछ अतिरिक्त व्यय भी रख दिया है। गैरसैनिक विभागमें की गयी कमीपर वोट लेनेके पहले पूरा ब्योरा कुछ दिनोंमें कौंसिलमें पेश किया जायगा। सूद छोड़कर चार करोड़ कम दिया गया है। यह चार करोड़ और ढाई करोड़की जो १६२३-२४ के बजटमें १६२२-२३ के बजटकी अपेक्षा कमी है अगर मिला दिया जाय, तो यह रकम केवल दो करोड़ कम है। सैनिक विभागका व्यय ६२ करोड़ याने अन्तिम बजटमें व्ययसे पौने छः करोड़ कम रखा गया है। गोरे और हिन्दुस्थानी सेनाकी संख्या कम करनेकी बातपर, जिसपर सम्राट्की सरकार अभी विचार ही कर रही है, यह कमी निर्भर है। यदि काटछाँट कमिटीकी पूरी बात मान ली गयी होती तो सेना-विभागका व्यय, ५७॥ करोड़ होता। ४। करोड़के अन्तरका कारण यह है कि वजीरिस्तानमें विशेष व्यय लगेगा (पौने दो करोड़) और दूसरा कारण यह है कि रिपोर्ट देरसे मिलनेके कारण सेनाका व्यय इसके अनुसार कम नहीं किया जा सका।

"औद्योगिक विभागके सञ्चालन व्ययको मिलाकर कुल व्यय २०४ करोड़ ७५ लाख है। यद्यपि सूद पौने दो करोड़ हो गया है, तो भी अन्तिम बजटकी अपेक्षा इसमें ११ करोड़की कमी है।

"आयका अनुमान १६८ करोड़ ५० लाख किया गया है, इसमें वर्त्तमान करके द्वारा वसूल होनेवाली साढ़े पचासी करोड़की कमी शामिल नहीं है। संशोधित बजटमें निश्चित की गयी रकममें इस प्रकार से फेर बदल हुआ है।

"पका हुआ चाम और कच्चे चामपर निर्यात करमें फी सैकड़े पाँचकी कमी करनेपर भी पौने तीन करोड़की वृद्धि पोष्ट और टेलीग्राफमें कर-वृद्धिसे १४७ लाख नफा और रेलवेका भाड़ा बढ़ानेसे ३५ लाख नफा। हिसाब करनेमें वर्तमान वर्षकी तरह अगले वर्षमें भी विनिमयकी दर फी रुपये १६ पेंस रखी गयी है।

"वर्तमान सालमें सरकारको १०८ करोड़ देना था। रेलवेकी पूँजी २१॥ करोड़ प्रान्तीय सरकारोंका ऋण ११॥ करोड़ ट्रेजरी बिलका भुगतान ४०॥ करोड़, चुकता किये जानेवाला ऋण १२॥ करोड़। इनको पूरा करनेके लिये ४७ करोड़ रुपया ऋण और पौंड ऋण (विलायतमें किया हुआ कर्ज) ४७ करोड़ लेना पड़ा। अगले साल भारत-सरकारकी ६७ करोड़की जिम्मेदारी रहेगी। इसमें ५ करोड़ पौण्ड और २५ करोड़ रुपया ऋण रेलवेके लिये ३८॥ करोड़, प्रान्तिक सरकारका ऋण १३॥ करोड़, ट्रेजरी बिलका भुगतान ५॥ करोड़। भुगतान करनेवाले ऋणके लिये ५ करोड़। आगे साल १५ करोड़ लेनेका अनुमान किया जाता है। सरकारको २ करोड़ ७० लाख पौण्ड लन्दन भेजना पड़ेगा।

"प्रान्तिक सरकारें जो रकम भारत-सरकारको देती हैं, उनमें कमी करनेका कार्य्य इस साल प्रारम्भ नहीं किया जा सकता। जो लोग ऐसा चाहते हों, उन्हें भारत-सरकारका आय-व्यय बराबर करनेमें मुझे पूरी सहायता देनी चाहिए। ऐसा करनेसे वे उस दिनके शीघ्र आनेमें सहायता करेंगे जब कि प्रान्तिक सरकारोंसे रकम लेनी बन्द कर दी जायगी। यदि नोटके सम्बन्धकी निधिसे प्राप्त सूदके साथ-साथ सुवर्ण-निधिका ब्याज भी जमाखाते डालनेकी अनुमति सभा दे दे, तो ५ करोड़ ८५ लाखका जो टोटा पड़ रहा है, उसके बदले सवा चार करोड़का ही टोटा पड़ेगा। बजटका टोटा पूरा करनेके लिए नया टैक्स लगाना आवश्यक है। टैक्स केवल व्यावहारिक रूपमें नमकपर ही लगाया जा सकता है। इस लिए नमकपर फी मन ढाई रुपया कर दिया जाय। इस प्रकारके करसे आशा है कि १९२३-२४ में साढ़े चार करोड़की आमदनी होगी, जिससे २४ लाखकी बचत हो सकती है।"

सन् १९२३-२४ के बजटमें १९८ करोड़ ५० लाख रुपया आम-

दनी और खर्च २०४॥। करोड़का (अर्थात गत वर्षसे ११ करोड़ कम) अनुमान किया गया था। इस हिसावसे लगभग छ करोड़की जो घटी आती है, उसके मुकावले (भारत-सचिवके पास रक्षित) सुवर्ण-निधि और नोटके एवज रूपसे रक्खी हुई भारतसरकारकी निधि पर जो व्याज आता है, वह जमाखाते डाल दी जाये! यह बात गत वर्ष व्यवस्थापिका-परिषद्ने स्वीकार भी की थी। अस्तु ऐसा करनेसे केवल ४॥ करोड़की ही घटी रह जाती। किन्तु सरकारने ऐसा नहीं किया। इस घटीको पूरा करनेके लिए सर वैसिल ब्लैकेटने कहा था कि "नमकपर २॥) रुपया मन कर बैठानेके सिवाय और कोई उपाय नहीं है।" पर हम तो यह समझते हैं कि सरकारके शाही खर्चमें दस-बीस करोड़ रुपया आसानीसे घटाया जा सकता है। किन्तु उसके लिए फौजी खर्च कम करना पड़ेगा, जिसके लिए नौकरशाही तैयार नहीं। इसलिए सारीवला गरीबोंके ही सिर आती है। अस्तु, नमकपर २॥) रुपया मन कर लगाने से अर्थ सचिवको यह आशा थी कि घटीको पूरा करके २४ लाख रुपया बचा लिया जायगा।

उस समय अर्थ-सचिवने परिषदसे यह प्रार्थना की थी कि भारत-की वर्तमान दुःस्थिति सुधारनेके प्रयत्नमें मुझे सहारा दीजिये नहीं, तो दिवाला निकलनेकी नौबत आ गयी समझिये।

भारत के आय-व्ययकी व्यवस्था तबतक सुधर ही नहीं सकती, जबतक फौजी खर्च न घटाया जाय। पहले संसारमें एक फ्रान्सको छोड़कर किसी देशका फौजी खर्च इतना अधिक नहीं था जितना भारतका। किन्तु फ्रान्ससे भारतकी तुलना करना सर्वथा अनुचित है। कारण यह कि उन दिनों भारतमें शान्ति थी और फ्रान्स १९१४ से १९२३ तक लड़ ही रहा था; यह बात भी ध्यानमें रखने योग्य है। भारतका फौजी खर्च सदासे ही युद्धकालके हिसाबसे हुआ करता है और उसमें भी प्रत्येक दो भारतीय सिपाहियोंके

पीछे एक-एक गोरा सैनिक रखनेका सिद्धान्त होनेसे यह खर्च इतना अधिक और असह्य हो उठा कि इससे यह समझिये कि भारत का मेरुदण्ड ही टूट गया है। भारतकी आर्थिक सुव्यवस्था का नाश करनेवाला यही खर्च है। परिषद्को इस खर्चपर वोट देनेका अधिकार नहीं है। भारत-सरकारके इस बजटको मिलिटरी बजट कहना ठीक है। सन् १९२३-२४ का फौजी खर्च ६२ करोड़ रुपया था। पिछले वर्ष ६८ करोड़ रुपया था। ५ करोड़ कम हुआ। पर यह कुछ कमी नहीं है। इञ्चकेप कमेटीने * भी यह खर्च घटाकर ५० करोड़ कर देनेकी सूचना दी थी। मगर उसपर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। सरकारकी मस्तानी चाल जरा भी नहीं बदली। यद्यपि सन् १९२२-२३ के बाद सैनिक व्ययमें हर साल कमी की जा रही है, पर हमारा कहना तो यह है कि एक साथ ही खर्च न तोड़कर धीरे-धीरे तोड़नेका क्या अर्थ है। अब यह देखना है कि इधर सैनिक खर्च किस तरह घटाया है।

१९२५-२६	१९२६-२७	१९२७-२८	१९२८-२९
६०३९३७०००	६०२०२३०००	५६७२४९०००	५५१००००

* आर्थिक स्थितिपर विचार करनेके लिए सरकारकी ओरसे सन् १९२२ ई० में एक कमेटी बैठायी गयी थी। उसका नाम था इञ्चकेप कमेटी (Inchcape Committee)। इस कमेटीने सैनिक खर्च आदि कम करनेकी राय प्रकट की थी। लिखा था—"Should a further fall in prices take place we consider that it may be possible after a few years to reduce the military budget to a sum not exceeding 50 crores of rupees, although the commander-in-chief does not subscribe to this opinion." पर सरकारने जरा भी ध्यान नहीं दिया, क्योंकि उसने तो खर्च बढ़ानेके अतिरिक्त खर्च कम करना सीखा ही नहीं।

ऊपरके आँकड़ोंसे स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह खर्च क्रमशः न घटाकर सन् १९२४ में ही ५० करोड़ कर दिया गया होता तो अब-तक लगभग ६० करोड़ रुपयेकी बचत हुई होती। हाय! अभागे भारतको छोड़कर और किसी भी देशमें इस प्रकारका अपव्यय नहीं किया जाता।

अब यह देखना है कि इस समय अन्य देशोंमें सेनाके लिए कितना खर्च किया जाता है। इङ्गलैंड अपनी आमदनीमेंसे सैकड़ा पीछे १४) खर्च करता है; फ्रांस १०), इटली १०), जापान १०॥), जर्मनी ५) सैकड़ा व्यय करता है; पर भारतको ४२) सैकड़ा खर्च करना पड़ता है।

भला इस अन्धेरका भी कोई ठिकाना है। अतुल धनशाली इङ्गलैण्डमें जितना धन करके रूपमें वसूल किया जाता है, उसका कई गुना अधिक यहाँ सिर्फ सेना-विभागमें ही खर्च किया जाता है। सेना-विभागके सब बड़े-बड़े अफसर गोरे हैं। इसलिए इन रुपयोंका बहुत ही अल्पांश यहाँ रह जाता है। अधिकांश रुपये विलायत चले जाते हैं।

सन् १८९४ तक भारत-गवर्नमेण्ट गोरे फौजी सिपाहियोंके लिए हर साल ८९१) खर्च किया करती थी, पर उसी समय देशी सिपा-हियोंके लिए केवल ३४३)। इसके बाद गोरे सिपाहियोंका वेतन १४६) और बढ़ाया गया। गत सन् १९०४ की पहली अप्रेलसे उनलोगोंका वार्षिक वेतन १४३) फिर बढ़ गया था। अर्थात् हर गोरे सिपाहीके लिए सरकार उस समय ११८१) सालाना खर्च करती थी। पर काले सिपाहियोंकी २७) से अधिक तरक्की नहीं हुई;—यद्यपि कई युद्धोंमें देशी सैनिकोंने गोरोंसे बढ़कर शूरता दिखायी है। भारत-सरकारकी ओरसे अभी हालहीमें एक विज्ञप्ति निकली थी। उसमें लिखा था कि भारत-सचिवकी अनुमतिसे १

मार्च सन् १९२६ से भारतीय सेनाके सभी अफसरोंकी फरलो लेकर विलायत जानेकी तनखाहकी शरह बढ़ा दी गयी है; किन्तु अभागे भारतीय सैनिकोंकी ओर सरकारकी दृष्टि भूलकर भी नहीं जाती।

मार्च सन् १९०३ में व्यवस्थापिका सभामें बजटपर बहस होते समय मि० गोखलेने सामरिक विभागका गठन और उसके संस्कारके सम्बन्धमें कई उपयोगी प्रस्ताव उपस्थित किये थे। आपने कहा था कि देशी सिपाहियोंका कार्य-काल घटा देनेसे सरकारका सैनिक बल बढ़ जायगा और खर्च भी कम हो जायगा। गोरोंके लिए ऐसी व्यवस्था की गयी है, पर उससे भारतीयोंका कुछ भी लाभ नहीं होता। कारण, थोड़े दिन काम करनेके बाद गोरे सिपाही स्वदेश चले जाते हैं और उनकी जगह इङ्गलैण्डसे नये-नये गोरे यहाँ आते हैं। इन गोरोंके शीघ्र-शीघ्र आने-जानेका खर्च भारतीयोंको देना पड़ता है। नवागत गोरोंमें अशिक्षितोंकी संख्या ही अधिक होती है। वे भारतमें रहकर भारतवासियोंके खर्चसे युद्ध विद्या सीखते हैं और शिक्षा समाप्त होते ही अपने घर चले जाते हैं। इस प्रकार इङ्गलैण्ड बिना खर्चके भारतसे बराबर सुशिक्षित सेना पाता है—अनायास उसकी रिजर्व सेना बढ़ती जाती है।

देशी सैनिकोंके लिए ऐसा नियम नहीं है। उन्हें प्रायः आजीवन काम करना पड़ता है सरकार यदि दोनों सैन्योंके लिए एक ही नियम बनावे, तो इस देशका बहुत मङ्गल हो और न्यायकी मर्यादा भी रक्षित हो। देशी सिपाही अगर थोड़े दिनोंतक कामकर अवसर ग्रहण करें और उनके स्थानपर नये सिपाही भर्ती किये जायँ, तो देशमें युद्ध-विद्या-कुशल सैनिकोंकी संख्या बढ़ जायगी। इस तरह यदि यहाँ समर-दक्ष लोगोंकी संख्या बढ़ जाय तो सरकारको आजकलके समान इतना अधिक धन खर्चकर इतनी बड़ी सेना रखनेकी जरूरत ही न रहेगी। आजकल जितनी सेना है, उसकी चौथाई सेनासे

काम चल जायगा। कारण, विपत्तिके समय पुरानी शिक्षित सेनाको बुलाते ही चाहे जितनी बड़ी सेना तैयार की जा सकती है। इसलिए अवसर-प्राप्त सैनिकोंको थोड़ीसी पेन्शन देकर उन्हें रिजर्व सेनामें युक्त कर रखना ही अच्छा है। भारतीय सेनामें इस प्रकारका नियम न होनेके कारण हमें शान्तिके समय भी व्यर्थ बहुत बड़ी सेना रखनी पड़ती है और विपत्तिके समय अधिक सेना गठित करना कठिन हो जाता है।

इस प्रस्तावके समर्थनमें मि० गोखलेने जापानकी फौजके नियमोंका उल्लेख किया था। अङ्गरेजोंने सारे देशको निरस्त्र कर रखा है। शस्त्र-विहीन ३१ करोड़ लोगोंमें प्रायः सभी आत्मरक्षा करनेमें असमर्थ हैं। स्वदेश-रक्षाके पवित्र कामसे उन्हें वञ्चित रखना जैसा पाप है, वेतन पानेवाली केवल Standing Army अर्थात् स्थायी सेनापर देशकी रक्षाका भार अर्पण कर चुपचाप बैठ रहना भी वैसाही मूर्खतापूर्ण काम है। राजनीतिके विरुद्ध ऐसी विचित्र प्रथा पृथिवीके और किसी देशमें प्रचलित नहीं है। इङ्गलैण्डके बड़े-बड़े समर-नीति-विशारदोंने भी इस नीतिके दोष दिखाये हैं। १८७६ ई० में शिमलामें "आर्मी कमीशन" बैठा था। उसमें लार्ड राबर्ट्स जैसे युद्ध-नीति-निपुण व्यक्ति सदस्य थे। उस कमीशनने भी इस देशके लिए उक्त सलाह दी थी। उसने दिखाया था कि देशी सिपाहियोंका कार्य-काल घटाकर रिजर्व सैन्य जमा करनेकी यदि चेष्टा की जाय, तो हर दस वर्षोंमें यहाँ ५२ हजारसे ८० हजारतक सेना जमा हो सकती है। उस कमीशनके चतुर सदस्योंके मनमें यह आशङ्का उत्पन्न हुई थी कि भारतमें इस प्रकार युद्ध-कला-पारंगतोंकी संख्या बढ़नेसे अङ्गरेजी राज्यके स्थायित्वको जरा भी धक्का न पहुँचेगा। पर इङ्गलैण्डकी इण्डिया-आफिसके महाप्रभुओंको कमीशनके कथनानुसार काम करनेमें धोखा मालूम हुआ। इसलिए वह प्रस्ताव आजतक काममें नहीं लाया गया।

पहले नियम था कि १५ वर्षतक काम करनेसे देशी सिपाहियोंको पेन्शन मिला करेगी। पर सन् १८८७ से कानून बनाया गया कि विना २१ वर्ष काम किये, उन्हें अवसर नहीं मिलेगा। इस तरह प्रजापर अविश्वास होनेके कारण अङ्गरेजोंको इतना अधिक रुपया खज़ाना खर्चकर बड़ी सेना रखनी पड़ रही है और भारतवासियोंको अपने आधेसे जियादा भाइयोंको आधा पेट खिलाकर यह खर्च देना पड़ रहा है। साम्राज्यकी सामरिक शक्तिके विषयमें इङ्गलैंडको जितनी सहायता भारतसे मिलती है, उतनी और किसी साम्राज्यान्तर्गत देशसे नहीं। अन्य उपनिवेश-रक्षाका भार तो इङ्गलैंडके ही समर-विभागपर है। उनके लिए इङ्गलैंडको बहुत अधिक धन खर्च करना पड़ता है और उनसे इङ्गलैंड कुछ फायदा भी नहीं उठाता। किन्तु भारत, सालमें बहुत बड़ी धनराशि लुटाकर सेना रखता है, उसके लिए इङ्गलैंडको कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ता। इतना ही नहीं, प्रत्युत इङ्गलैंडको एशिया और पूर्व अफ्रिकामें अपना राज्य स्थापन करने या बढ़ानेके कार्यमें भारतकी यह विशाल सेना विना खर्च या नाममात्रके खर्चमें काममें लानेका सुभीता मिलता है। गत १८३८ से १९०० तक अफगानिस्तान, चीन, फारस, आबिसीनिया, पेराक, मिश्र, सूदन, चित्राल, सोमाली, ट्रान्सवाल, तिब्बत प्रभृति देशोंके १२ युद्धोंके कारण अङ्गरेजोंका राज्य बढ़ा है; पर उनके खर्चका बड़ा हिस्सा भारतवासियोंको देना पड़ा है। अभी हालहीके यूरोपीय महासमरमें अङ्गरेजोंके प्राणकी रक्षाके लिए लाखों भारतीय सैनिकोंने अपनी बलि दी है। यह हाल तो भारतीय शासनका है। किन्तु दूसरी ओर उपनिवेशोंकी रक्षाके लिए रक्खी हुई सेना, जहाज, जलसेना प्रभृतिका खर्च बिना चूँ किये इङ्गलैंडके राजकोषसे दिया जाता है।

जब भारतीय साम्राज्यसे इङ्गलैंडको बहुतेरे लाभ हो रहे हैं,

तब यहाँ सेना रखनेका आधा खर्च भी उसे देना मुनासिब है। इस विषयमें भारतीयोंकी ओरसे कई बार प्रार्थनाएँ की जा चुकी हैं; पर विलायतकी सरकारके कानोंमें जूँ तक नहीं रेंगी। सन् १८७३ ई० में पार्लमेण्टद्वारा बनायी हुई फाइनेन्स कमेटीके सामने गवाही देनेके समय सर चार्ल्स ट्रिविलियनने कहा भी था:—

We charge Canada, Australia, Cape of Good Hope and the whole round of British colonies nothing, why should we charge India anything? The only real difference is that Canada or Australia would not hear of it; whereas India is at our mercy and we can charge her what we like.

अर्थात् "कैनेडा, आस्ट्रेलिया, नेटाल प्रभृति ब्रिटिश-उपनिवेशोंसे हमलोग कुछ भी नहीं लेते हैं, फिर भारतसे ही क्यों लेते हैं? इसका कारण एक ही है; कैनेडा, आस्ट्रेलिया प्रभृति उपनिवेश हमारी बात सुनेंगे ही नहीं; पर भारत तो हमारे हाथमें है। उससे हम चाहे जितना वसूल कर सकते हैं।"

इतना खर्च करनेपर भी फौजी अफसर प्रसन्न नहीं। हमारे यहाँके भूतपूर्व सेनापति लार्ड किचनरने रूसके काल्पनिक भारत-आक्रमणसे डरकर सेना-संस्कारके लिए १५ करोड़ रुपये मंजूर करा रखे थे। इसके बाद आपने एकबार कहा था कि मैं जितने रुपये चाहूँगा उतने देने होंगे। इसपर बड़े लाटसे और आपसे झगड़ा भी हो गया था। कारण, सेना-विभागमें इच्छानुसार खर्च बढ़ानेका बड़े लाटने प्रतिवाद किया था। सेनापति जितने रुपये चाहेंगे, बड़े लाटको उतनेका बन्दोबस्त करना पड़ेगा। पर देशका स्वास्थ्य सुधारना शिक्षाकी उन्नति करना आदि कामोंके लिए राजकोषमें रुपया ही नहीं रहता।

बहुतसे तार्किक अङ्गरेजोंका कहना है कि भारतमें जो ब्रिटिश

सेना है, वह बाहरी शत्रुसे रक्षा करनेके लिए नहीं, वरन् भारतकी आन्तरिक शान्तिके लिए है। उदाहरणार्थ सन् १६०४-०५ में पार्ल-मेण्टमें भारतीय बजटकी आलोचना करनेके दो दिन पहले विलायत के सामरिक सचिवने कहा था कि,—"भारतमें जो ब्रिटिश सेना है, उसका उद्देश्य बाहरी शत्रुसे देशको बचाना नहीं है; बल्कि आंन्तरिक शान्तिके लिए उसकी आवश्यकता है। इस कामके लिए कितनी सेना रखनी चाहिए, इसका निर्णय सिपाही युद्धके समय ही हो गया है। चाहे वह संख्या कम हो या अधिक, पर हमलोगोंने वह सिद्धान्त नहीं छोड़ा है।"

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि सामरिक सचिव महोदयकी यह उक्ति बिलकुल निरर्थक है। सिपाही-युद्धके समय यहाँ ३७ हजार गोरी सेना और २ लाख ३० हजार भारतीय सेना थी। सिपाही-युद्ध के बाद स्थिर किया गया था कि यहाँ भारतीय सेनाकी संख्या गोरी सेनाकी संख्याकी दूनीसे अधिक नहीं रहेगी; तथा तोपखानेपर काले सिपाही बहाल नहीं किये जायँगे। सन् १८७३ ई० में लार्ड लारेंसने कहा था कि भारतमें विद्रोह दबानेके लिए ६० हजार सेना बहुत है। पर पाँचदें-नामक स्थानपर रूसवालोंकी लड़ाई छिड़ जानेके कारण भारतमें १० हजार सेना बढ़ायी गई थी। तबसे बराबर सेना बढ़ायी गयी। इन बातोंपर दृष्टि डालते हुए कौन कह सकता है कि भारतमें ब्रिटिश-सेना केवल भीतरी शान्ति-रक्षाके लिए है? भारतमें ऐसी कौन-सी शक्ति है, ऐसा कौनसा विद्रोह-दल है, जिससे सरकारको इतना खौफ है। यदि यह कहा जाय कि पारस्परिक कलहको रोकनेके लिए, तो हम यह पूछते हैं कि क्या अबतक किसी स्थानके झगड़ेको सर-कारने तत्क्षण रोका है? या कहीं भी उसे बहुत बड़ी सेना बुलाने-की जरूरत पड़ी है? कौन कह सकता है कि भारतीयोंपर अङ्ग-रेजोंका विश्वास है? क्या यह शासक जातिके लिए कम लज्जा-

की बात है कि वह अबतक अपनी प्रजाको अपना विश्वास-पात्र नही बना सकी ?

अङ्गरेजलोग अविश्वासके ही कारण सिक्ख, पठान आदि वीर सैनिकोंको उत्तम अस्त्र-शस्त्र देनेका साहस नहीं करते। कितने आश्चर्यकी बात है कि अर्काट-अवरोधके समय जिस देशी सेनाने अपनी खुशीसे अङ्गरेजोंको अन्न देकर स्वयं केवल "माड़" पी उनके लिए घोर युद्ध किया,—भरतपुर और कुदालीके युद्धमें जब गोरी पल्टनने शत्रुओंपर चढ़ाई करनेसे इनकार किया था, उसी समय जिस भारतीय सेनाने अङ्गरेजोंके लिए प्राण देनेमें राजी होकर वीरताकी पराकाष्ठा दिखायी थी,—गोरोंके मतसे ही जिनमें न शराबखोरी है और न चरित्र दोष,—जो लोग अधिकांश अङ्गरेजोंके मतसे ही शौर्य, साहस और आज्ञा-पालनमें गोरोंकी अपेक्षा कई गुने श्रेष्ठ हैं तथा जिस सेनाने जर्मन-महासमरमें अपनी वीरताके सामने अङ्गरेजोंको मात कर दिया,—उसी देशी सेनाके साथ अङ्गरेजलोग दुर्व्यवहार करते और उसपर अविश्वास करते हैं। इससे बढ़कर दुःखकी बात और क्या हो सकती है ? सिपाही-युद्धका इतिहास लिखनेवाले 'की' (keay) साहबने दिखाया है कि अङ्गरेज-सेनापतियोंके दुर्व्यवहारसे पीड़ित होकर ही सन् १८५७ ई० में सिपाहियोंने बलवा कर दिया था। एकबार एक काली पल्टनने उपयुक्त पोशाक (Proper clothing) न मिलनेके कारण कूच करनेसे इनकार किया था। उनके इस अपराधके लिए कप्तानकी, आज्ञासे वे पशुओंकी तरह मार डाले गये ! इतने अत्याचारके बाद विप्लवका न होना ही आश्चर्य-जनक होता। पर इस विप्लवमें भी उल्टा भारतीयोंको ही कष्ट भोगना पड़ा। लोगोंको डरानेके लिए उस समय अङ्गरेजोंने हजारों भारतीयोंकी लाशें पेड़ोंकी डालियोंमें मार-मारकर लटकायी थीं। हथियार छीननेके समय भारतीयोंको जो सजाएँ

दी गयी थीं, बड़े-बूढ़ोंके मुँहसे सुनकर हृदय दहल उठता है। उस समय यदि हिन्दुस्तान अङ्गरेजोंका साथ न देता, तो उसी समय अङ्गरेज यहाँसे रफूचक्कर हो गये होते। इस बातको सर जान सीलीने भी 'एक्सपेंशन आफ इङ्गलैण्ड' नामकी पुस्तकमें सिद्धकर दिखाया है।

१८५७ के बादसे देशी सिपाही-सेनाकी अवस्था और भी खराब हो गयी है। यद्यपि वे लोग शूरतामें गोरोंसे कहीं अधिक हैं तथापि सब बातमें उनका अपमान किया जाता है। गोरोंके ऐश-आरामके लिए जैसा बन्दोवस्त किया गया है, देशी सिपाहियोंके लिए उनका आधा भी नहीं किया गया है। गोरोंके 'बैरक' और कालोंकी लाइनमें (रहनेकी जगहमें) उतना फर्क है, जितना कि राज-प्रासाद और भिखमंगेकी झोपड़ीमें। इस देशमें गोरे सिपाही जैसा आनन्द भोग करते हैं, अपने देशमें शायद वे उसका स्वप्नमें भी भोग नहीं किये होंगे। कूच करनेके समय गोरोंको जितना बोझ ढोना पड़ता है, देशी सिपाहियोंको उससे प्रायः दूना ढोना पड़ता है। जिस प्रकारकी राइफल (बन्दूक) गोरोंको दी जाती है, उससे हल्के दर्जेकी सिपाहियोंको दी जाती है। पर वह निम्न श्रेणीकी राइफल भी देशी सिपाही हर वक्त अपने साथ नहीं रख सकते। गोरे सिपाहियोंकी तरह इच्छानुसार घूमने फिरनेकी भी स्वाधीनता उनको नहीं है। गोरोंके 'बैरक' में रातभर रोशनी जला करती है, पर सिपाहियोंकी लाइनमें दस बजेके बाद रोशनी रखनेका हुक्म नहीं है। फौजी विचारमें अब अपराधी गोरोंको कोड़े नहीं लगाये जाते, पर अपराधी सिपाहियोंको कोड़ेसे जर्जरित करनेकी निकृष्ट व्यवस्था अभीतक प्रचलित है। एक ही तरहके अपराधपर गोरोंकी अपेक्षा भारतीयोंको अधिक दण्ड भी दिया जाता है। वेतन और खुराकमें भी इसी तरहकी विभिन्नता रखी गयी है। गोरोंकी अपेक्षा उन्हें अधिक समयतक कवायद भी करनी पड़ती है। इस कवायदमें

उनका इतना समय नष्ट हो जाता है कि कभी-कभी उन्हें रसोई बनाने, खाने और आराम करनेका समय ही नहीं मिलता। इन्हीं कारणोंसे अभागे सिपाहियोंका स्वास्थ्य भी शीघ्र ही नष्ट हो जाता है और पेन्शन पानेसे पहले ही वे इस संसारसे कूच कर जाते हैं।

इस तरह देशी सेनापर विश्वास न रहनेके कारण ही वह दिन-पर-दिन कमजोर बनती जा रही है। अँगरेजोंने यह स्थिर कर रखा है कि देशी सिपाहियोंके कमजोर किये बिना अँगरेजोंका राज्य स्थिर नहीं हो सकेगा। अँगरेजोंकी इस नीतिके कारण ही भारत-निवासियोंने शारीरिक और मानसिक स्फूर्ति खो दी और उनमेंसे पौरुष-चर्चा भी लोप हो गयी; किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि ऐसा करके अँगरेजलोग स्वयं अपनेको कमजोर बना रहे हैं। पहली बात तो यह है कि प्रजाका बल ही राजाका बल है। वेतन-भोगी सेनापर देश-रक्षाका भार सौंपकर कोई भी शासक निश्चिन्त नहीं हो सकता। कारण स्वदेश-रक्षाके पवित्र व्रतमें दीक्षित होकर जो लोग युद्ध करते हैं, उनके साथ तनख्वाह खाकर युद्ध करनेवाली सेनाकी कभी तुलना ही नहीं हो सकती। पर यदि सरकार इधर ध्यान देती तो फिर रोना ही काहेका था। दूसरी बात यह है कि किसीको हमेशा धोखेमें नहीं रक्खा जा सकता और न उससे अपने अनुकूल आचरण ही कराया जा सकता है। जो चीज जितनी ही दबायी जाती है, अवसर पाकर वह उतनी ही उभड़ती भी है। कठोर शृंखला, स्नेहकी होती है न कि दबाव और पक्षपात की।

ऊपरकी बातोंसे सरकारी आय-व्ययकी संक्षिप्त बातें जानी जा सकती हैं। सारांश यह कि जो कुछ आमदनी सरकार करती है, उसका अधिकांश भाग होमचार्जेंजको दिया जाता है, बाकीका अधिकांश सेना-विभागमें खर्च किया जाता है। बहुत ही थोड़ा हिस्सा यहाँकी प्रजाके लिए खर्च किया जाता है।

कष्ट-दमनका उपाय

यह मानी हुई बात है कि पापका घड़ा किसी-न-किसी दिन अवश्य ही फूटता है। यद्यपि कूटनीतिके प्रभावसे अँगरेजोंने भारतीयोंको धोखेमें डालकर अपना शासन भारतमें दृढ़ कर लिया, भोले भारतवासी उनके चक्करमें बहुत दिनोंतक पड़े रहे, तथापि सृष्टिके नियमानुसार भारतमें कुछ माईके लाल ऐसे पैदा हो गये, जिन्होंने अँगरेजोंकी पोल जनताके सामने अच्छी तरह खोल दी। किसी अँगरेज विद्वान्‌ने सच कहा है कि "बहुत आदमियोंको कुछ दिनोंतक और कुछ आदमियोंको बहुत दिनोंतक धोखेमें डाल रखना सम्भव है, पर सब आदमियोंको सब दिन धोखेमें डाल रखना कदापि सम्भव नहीं।"

उक्त नियम भारतके सम्बन्धमें भी चरितार्थ हुआ। जब अँगरेजोंने टर्की और पेशावरमें भी पक्षपात करना शुरू किया, तब भारतवासियोंकी आँखें खुलीं। इसका श्रेय स्वर्गीय श्रीयुक्त दादाभाई नौरोजीको है, जिन्होंने अपनी वृद्धावस्थामें भारतीयोंको जगानेका सर्व-प्रथम विपुल प्रयास किया। दूसरा श्रेय है वृद्धवशिष्ठ स्वर्गीय लोकमान्य पं० बाल गङ्गाधर तिलक महाराजको, जिन्होंने आमरणपर्यन्त स्वतन्त्रतादेवीकी वेदीपर अपना सर्वस्व बलि दिया और सारे संसारके सामने देश-भक्तिका ज्वलन्त उदाहरण स्वरूप अपनेको रक्खा। उक्त दोनों महापुरुषोंने देशके विद्वानोंके सामने यह जटिल प्रश्न रखा कि हमारी इस शोचनीय अवस्थाका बिना शीघ्र परिवर्तन हुए पृथिवीसे हमलोगोंका नाम-निशानतक मिट जायगा। फिर क्या था, योगी अरविन्द घोष, देशपूज्य लाला लाजपतराय, धर्मप्राण

पं० मदनमोहन मालवीय आदि देशरत्नोंने भारतकी कलुषित शासन-प्रणालीको जड़ से उखाड़कर स्वराज्य स्थापित करनेका दृढ़ संकल्प किया। तबसे यह काम जातीय महासभा (Congress) को सौंपा गया। कहना नहीं होगा कि इस कांगरेसके जन्मदाता मि० ह्यूम हैं। लार्ड डफरिनके मतानुसार भारतके तात्कालिक नेताकी रायसे ह्यूम महाशयने सन् १८८५ में पहले-पहल कांगरेसकी स्थापना की थी। उस समय सरकारके साथ मिल-जुलकर ही काम करनेका मौका था, अतः देशके नेता उसमें सम्मिलित हो गये। सरकारने कांगरेसकी स्थापना करनेके लिए मि० ह्यूमसे क्यों कहा, यह प्रश्न उठ सकता है। इसका कारण यह था कि उस समय देशमें कुछ-कुछ जागृतिके चिह्न दिखायी देने लग गये थे। इसलिए सरकारने यह विचार किया कि काङ्गरेस स्थापित करके भविष्यमें पैदा होनेवाली अशान्तिकी जड़ ही काट दी जाय। यद्यपि मि० ह्यूम थे तो उदार हृदयके और वह यह चाहते थे कि भारत स्वतन्त्र हो जाय; पर अपनी देशभक्तिके कारण उनके हृदयमें यह बात अवश्य थी कि काम ऐसा ही होना चाहिए जिसमें अङ्गरेजोंका स्वत्व भी बचा रहे। ह्यूम महाशयकी यह नीति अवश्य ही प्रशंसाके योग्य थी। पर यह बात अवश्य थी कि वे अपनी उदार-नीतिसे भारतमें ब्रिटिश-साम्राज्यकी नींव मजबूत करना चाहते थे। सर आक्लैण्ड कालविन और मि० ह्यूमके बीच इस सम्बन्धमें जो पत्र-व्यवहार हुआ था, उससे इन अद्भुत रहस्योंका पता चलता है।

कई वर्षोंतक काङ्गरेसकी यह नीति थी कि वह लोकमतकी जरा भी परवाह न कर सरकारकी ही आज्ञाका पालन करती थी। इसका कारण यह था कि उसमें दादाभाई नौरोजी, लोकमान्य तिलक जैसे दो-चार देशभक्तोंको छोड़कर सब-के-सभी हाँ-में-हाँ भरनेवाले अङ्ग-रेज़दाँ भरे हुए थे। इसलिए कांगरेसको उस समय तक कांगरेस कहना उचित नहीं, जबतक कि उसमें 'हाँ हुजूर' भरे थे। उन हाँ

हुजूरोंको निकाल बाहरकर देशके सच्चे प्रतिनिधियोंद्वारा लोकमतका आदर करनेके कारण दादाभाई नौरोजी और लोकमान्य तिलक महाराज ही कांगरेसके असली जनक कहे जा सकते हैं।

इसके बाद उक्त महापुरुषोंने कांगरेस द्वारा अपनी आवाज सारे देशमें पहुँचानी शुरू की। उनलोगोंने स्वराज्यका असली अर्थ लोगोंको बतलाया। कुछ दिनोंके बाद लोगोंकी थोड़ी-थोड़ी आँखें खुलने लगीं। अब लोग यह समझने लगे कि,—

ब्रिटिश-प्रजाके सब अधिकारोंका मूलमन्त्र है—No taxation without representation अर्थात् राजकार्यमें प्रजाका बिना मत लिये राजाको प्रजासे कर वसूल करनेका कोई भी अधिकार नहीं; अर्थात् राजा यदि राजकार्यमें प्रजाका मत न ले तो प्रजा भी कर देनेके लिए बाध्य नहीं होगी। इङ्गलैण्डके उदारनीतिक लोगोंके मतसे भी taxation without representation is tyranny. अर्थात् 'प्रजाके मतके बिना कर बैठाना घोर अत्याचार है।' इसी मूलमन्त्रसे विलायतके पार्लमेण्टकी उन्नति हुई है। जिस पार्लमेण्टकी आज्ञासे इस विशाल साम्राज्यके राज्यसूत्र चलाये जाते हैं, वह वहाँकी साधारण प्रजाद्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियोंसे बनी है। इसमें प्रतिनिधियोंके मताधिक्यके अनुसार ही शासन-विषयक सब बातें स्थिर की जाती हैं। उनके मतके बिना राजपुरुष, यहाँतक कि प्रधान मन्त्री और स्वयं सम्राट् भी राजकोषका एक छदाम भी खर्च नहीं कर सकते। सच्चा स्वराज्य इसीको कहते हैं। इङ्गलैंडके उपनिवेशोंकी प्रजाको यही स्वराज्य मिल गया है। भारतीय नेताओंने यह स्थिर किया कि ब्रिटिश-प्रजाके नाते इस स्वराज्यके पानेका भारतवासियोंको स्वाभाविक अधिकार है। इस प्रकारका स्वराज्य हो जानेपर भारतवासी अपनी व्यवस्था अपने मतानुसार कर सकेंगे। देशवासियोंकी आवश्यकता और अभावके अनुसार देशका आय-व्यय निर्द्धारित

किया जा सकेगा। पर राष्ट्रके साथ भारतका किस प्रकार सम्बन्ध होना चाहिए, केवल यही बात अङ्गरेज सार्वभौम शक्तिसे स्थिर किया करेंगे। तब हमें हरसाल न सलामी देनी पड़ेगी, न विलायतमें स्थापितकी हुई इण्डिया आफिसका खर्च ही। सेना-विभागका खर्च भी परिमित किया जा सकेगा। स्वदेशी व्यापारकी उन्नतिके लिए भारतवासी विदेशी मालपर यहाँतक कि इङ्गलैण्डसे आनेवाले माल-पर भी कर बैठा सकेंगे। इस प्रकारका स्वराज्य होनेपर आजकलकी भाँति भारतकी गरीब प्रजापर हरसाल व्यर्थ खर्चकी पूर्ति करनेके लिए नये नये टैक्स बैठानेकी जरूरत न पड़ेगी। यह अधिकार महारानीकी घोषणामें भी हमलोगोंको दिया गया था। सन् १८५८ में विक्टोरियाने जो घोषणा-पत्र जारी किया था, लार्ड डर्बीको उसे लिखनेकी आज्ञा देनेके समय आपने कहा था,—

And point out the privileges which the Indians will receive in being placed on an equality will the subject of the British crown.

अर्थात् "ब्रिटिश-राज्यको अन्यान्य प्रजाके साथ समतलपर प्रतिष्ठित होनेसे उन्हें जो अधिकार मिलेंगे, वह उन्हें अच्छी तरह समझा दीजिये।" पर यहाँ तो प्रजाकी आँखोंमें धूल झोंकना है, ऐसे अधिकार भला प्रजाको क्यों बतलाये जाने लगे?

कहना नहीं होगा कि अँगरेजोंकी हमेशासे भारतवासियोंको धोखेमें डाल रखनेकी ही नीति रही है। क्षमताप्रिय राजपुरुषोंकी ऐसी कपटतासे ही हमारी स्वराज्य पानेकी इच्छा उत्तरोत्तर बढ़ने लगी। उस समय नेताओंने देशवासियोंको समझाना शुरू किया कि राजाने शपथ खाकर हमलोगोंको जो अधिकार दिया है, जिस स्वराज्यका प्राप्त करना मनुष्यमात्रका ईश्वर-प्रदत्त जन्मसिद्ध अधिकार है, जिस स्वराज्यके बिना मनुष्य कभी सुखी हो ही नहीं सकता, उस स्वराज्य-

के पानेकी हमें हर हालतमें जी-जानसे कोशिश करनी होगी। चेष्टा करनेपर भी न मिल सके, ऐसा जगतमें पदार्थ ही नहीं है। "नर जो पै करनी करे, तो नारायण ह्वै जाय;" और विषयोंकी तो बात ही क्या है? सारांश हमलोगोंका न्याय, राजिविधि-संगत और ईश्वर-दत्त अधिकार-प्राप्तिके लिए यदि हम तेंतीस करोड़ भारत-वासी मन-वचन-कर्मसे चेष्टा करें, तो हमारी वह चेष्टा जरूर ही फलवती होगी—देशकी वर्तमान दुर्दशा दूर हो जायगी।

यद्यपि ये सब बातें पुरानी हैं, तथापि इनका जानना इसलिए अत्यन्तावश्यक है कि हमारा राजनीतिक आन्दोलन पहले किस रूपमें था और अब हम कहाँ पहुँचे हैं। लोकमान्य तिलकने जनताको बतलाया कि राजाकी दी हुई सनदमें, १८३३ ई० के पार्लमेण्टके कानूनमें और १८५८ सालके महारानीके घोषणापत्रमें हमलोगोंको जो सब अधिकार मिले हैं, जिस सुशासनके बारेमें प्रतिज्ञा की गयी है, वह बहुत ही कम आदमी अच्छी तरह जानते हैं। इसीसे हम-लोग उन अधिकारोंसे वञ्चित होकर अवनतिके भयङ्कर प्रवाहमें बहे जा रहे हैं। देशके प्रत्येक सुसन्तानका यह कर्तव्य है कि वह ईश्वर-दत्त अधिकारकी बात ब्रिटिश भारतके प्रत्येक आदमीको—नीच-से-नीच आदमीको भी समझाकर उन्हें उस अधिकारके पानेके लिए आतुर कर डाले। अज्ञानके कारण ही एक दिन हमारा सर्वनाश हुआ है। "बन्देमातरम्"मन्त्रके ऋषि और बङ्गदेशके सुप्रसिद्ध लेखक स्वर्गवासी बङ्किम बाबूने भी एक जगह यही बात कही है। आपका कथन यह है,—

"सुशिक्षित (मनुष्य) जो कुछ जानते हैं, वह अशिक्षितोंको समझानेसे ही लोग शिक्षित होते हैं। यह बात भारतमें सब जगह प्रचलित होनी चाहिए। पर सुशिक्षित यदि अशिक्षितोंसे न मिलें-जुलें, तो यह नहीं हो सकता। सुशिक्षित अशिक्षितोंमें समवेदनाकी आवश्यकता है। बंगालमें ६ करोड़ ६० लाख (अब आठ करोड़)

लोगोंका किया भी जो कुछ काम नहीं होता है, उसका कारण यही है कि बंगाल में लोक-शिक्षा नहीं है ।"

श्रद्धेय नौरोजीने कहा था कि इस काम के लिए एक धन-भण्डार खोला जाय और उसके धनसे भारतके गाँव-गाँवमें राजनीतिक उपदेश भेजे जायँ। ये उपदेशकगण गाँव-गाँव में जाकर अज्ञ लोगों को कांगरेस की उपयोगिता, देशकी दुरवस्था, उसे दूर करनेके उपाय, उनके राजदत्त और ईश्वरदत्त अधिकार और उन्हें पानेके उपाय आदि बातें समझावें। भारतके जनसाधारणमें स्वराज्य-प्राप्तिकी इच्छा इस प्रकार उत्पन्न और बलवती करनेके बाद उनकी इच्छा इङ्गलैण्ड-के लोगों को भी समझानेकी व्यवस्था करनी चाहिए। अङ्गरेज यदि जानें कि भारतवासी स्वराज्य पानेके लिये सचमुच व्याकुल हुए हैं, बिना स्वराज्य पाये न उनकी इच्छा पूर्ण होगी न कष्ट दूर होंगे, तो वे भी हमें उक्त अधिकार अवश्य दे देंगे। एक बार प्रजा साधारणकी आशा और आकांक्षाकी उपेक्षा कर अमेरिकामें अङ्गरेजोंने खूब धोखा खाया है। सो भारतमें भी वे फिर वही भूल कभी नहीं करेंगे।

किन्तु दुःख है कि अङ्गरेजोंसे जिस भूलकी आशा दादाभाई नौरोजी जैसे दूरदर्शी पुरुष भी नहीं करते थे, स्वार्थके वश अङ्गरेज लोग कहीं उससे भी बढ़कर भूल कर रहे हैं। गत १९०४ ई० के जून मासमें लण्डनकी इण्डियन सोसाइटीमें वक्तृता देते हुए परलोक-वासी मि० डिग्वीने कहा था:—

I say again, India might obtain Philipine Self-Government within ten years from now. But how? By every Indian throwing himself whole heartedly into the struggle, by exhibition of a like energy to that which the Japanees have exhibited in obtaining their present position.

अर्थात् "मैं फिर भी कहता हूँ कि भारत आज से दस वर्षोंके भीतर फिलीपाइन देश जैसा स्वराज्य पा सकता है। पर कैसे ? प्रत्येक भारतवासी को स्वराज्य पानेके आन्दोलन में प्राणपनसे चेष्टा करनी चाहिए. जिस प्रकारके उत्साह और कार्य्य-शीलतासे जापानियोंने आजकी उच्च-स्थिति पायी, उसी प्रकारके उत्साहसे देशके कार्य्यमें कटिबद्ध होनेसे स्वराज्य मिल सकेगा।"

इस समय जिससे देशवासियोंकी वर्त्तमान अज्ञता दूर हो, यहाँके आपामर जनसाधारण देशकी सच्ची अवस्था समझें, उनके दूर करने के उद्योगमें सब आदमी जातीय महासमितिकी मदद करें, स्वराज्य लाभ करनेकी आकांक्षा जिसमें सबके मनमें प्रबल हो, जिसमें राजपुरुषगण हमें मुट्ठी भर आन्दोलनकारी कहकर हमारी आकांक्षा और आशाकी उपेक्षा न कर सकें, उसीका उपाय करना हमारा कर्त्तव्य है। इस बड़े भारी पवित्र कार्य्यके साधनेमें जो लोग जातीय महासमितिका साथ न देकर उसका उपहास किया करते हैं, वह लोग जरूर ही देशके शत्रु कहे जायँगे।

जो लोग यह भी नहीं समझते कि जातीय महासमितिकी आवश्यकता क्या है, उनके बारेमें तो यहाँ आलोचना भी नहीं की जा सकती। पर जो लोग महासमितिकी कार्य्य-प्रणालीमें परिवर्तन करना चाहते हैं, पुरानी प्रथासे जिन्हें घृणा हो गयी है, उनकी बातें जरूर ही सुनने लायक हैं। इन लोगों में एक सज्जनका मन्तव्य युक्ति-संगत समझकर यहाँ उद्धृत कर दिया जाता है,—

"राजकार्य्योंकी समालोचना कर तथा राजपुरुषोंको उपदेश देकर ही पदावनत जातिका राजनीतिक कर्त्तव्य समाप्त नहीं हो जाता है। यह बात कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता कि राजनीतिक आन्दोलन ही राजनीतिकी शिक्षाका प्रधान उपाय है। और किसी कामके लिए हो या न हो, पर इसी शिक्षाके लिए राजनीतिक आन्दोलनकी

आवश्यकता है। परन्तु हमारा कहना यही है कि केवल इसीमें हमारी सब शक्ति खतम न हो जाय, केवल इसीको हम अपना सर्व-प्रधान कर्त्तव्य न समझ बैठें। भिक्षावृत्ति तो एकदम ही छोड़ देनी चाहिए। हमलोगोंके राजनीतिक प्रस्ताव केवल respectfully request (सविनय प्रार्थना करते हैं) कहकर खतम न हो जाया करें, समय-समयपर जिसमें firmly demand (जोरके साथ माँग) करनेमें भी हम हत-साहस न हो जाया करें। कारण जो दावा नहीं कर सकता, उसकी प्रार्थना किसी कामकी नहीं होती। हम कांगरेसके विरोधी नहीं हैं। भारतके राजनीतिक क्षेत्रमे कांगरेसने वहुतेरे महत्कार्य किये हैं। हमारी प्रार्थना केवल यही है कि उसकी कार्य्य-प्रणाली कुछ बदल दी जाय। जिस खाद्यसे पाँच वर्षके बालकका ही पेट भर सकता है, उससे बीस वर्षके युवकका काम कैसे चलेगा ? हमलोग यह चाहते हैं कि राजनीतिक अधिकारलाभ करनेमें केवल प्रार्थना न कर, दावा करनेके लिए उसके पीछे जिस शक्तिकी आवश्यकता है, काङ्गरेस अब वही शक्ति सञ्चय करनेकी चेष्टा करे। इस काममें हाथ डालनेके पहले काङ्गरेसकी प्राचीन कार्य्य-प्रणाली और प्रस्तावोंका संस्कार करनेकी आवश्यकता है। शिल्प प्रदर्शिनीको अपना एक अङ्ग बनाकर काङ्गरेसने इसके पहले ही समय-गतिका अनुसरण किया है। हम कहते हैं, कुछ और आगे बढ़ चलिये। राष्ट्रीय जीवन-स्रोतके साथ-साथ रहनेकी अगर उसकी इच्छा है तो काङ्गरेसको भी अपने मत कुछ-कुछ बदलने होंगे। कारण पचीस वर्षके अनुभवसे हमें बहुत कुछ शिक्षा मिल चुकी है।" ("मध्यभारत" नामक बङ्गाली मासिकपत्रमें प्रकाशित श्रीयुत धीरेन्द्रनाथ चौधरी एम० ए० लिखित "भारतेर प्रजानीति" शीर्षक लेखांशका अनुवाद।)

... इसी लेखमें साधारण जन-मण्डलीमें शिक्षा-प्रचारके बारेमें धीरेन्द्र बाबूने जो कुछ लिखा था, उसका भी अनुवाद दिया जाता है—

"हमें इस बातपर बिलकुल विश्वास नहीं कि जन-साधारणमें मामूली शिक्षा-प्रचारके बिना भी उनमें राजनीतिक शिक्षाका प्रचार या स्वदेश-प्रीति जागृत नहीं हो सकती। हरिकीर्त्तनादिद्वारा साधारण लोगोंमें नीति और धर्म्मकी बड़ी-बड़ी महत्वपूर्ण बातोंका प्रचार हो रहा है, लोग उसे समझ सकते हैं, उसके अनुसार काम भी करते हैं और ऐसा करनेमें उन्हें बिलकुल कष्ट भी नहीं होता; सो अन्न-वस्त्रकी, सामान्य सुख-दुखकी बात समझानेपर भी वे नहीं समझेंगे, यह बेसिर-पैरकी बात है। कौन नहीं जानता है कि जीवन-संग्राम दिन-ब-दिन बढ़ रहा है! हालमें मैं एक गाँवमें गया था। वहाँ लोगों-को बुलाकर उन्हें अपनी वर्तमान अवस्था कुछ-कुछ समझानेकी चेष्टा की। देखा तो, उस चेष्टाका फल आशातीत हुआ। जब लोग अपने कष्टका कोई कारण समझ नहीं सकते, तब भाग्यकी दुहाई देकर चुप हो रहते हैं; पर समझानेसे समझते कुछ भी देर नहीं लगती। खोजकर देखा तो ऐसा एक भी किसान नहीं मिला, जिसे वर्षके अन्तमें एक, दो या तीन महीनेतक अन्न खरीदकर नहीं खाना पड़ता है। अतिवृष्टि है न अनावृष्टि, फिर यह अकाल आया कहाँ-से? साधारण आदमी खोजनेपर भी जब इसका कारण नहीं जान सकता, तब भाग्यकी दुहाई देकर चुप हो रहता है पर कारण अदृष्ट नहीं है—वह मानुषी है और दूर भी किया जा सकता है; यह बात जब उन्हें समझा दी गयी, तब मालूम हुआ कि बहुतोंके हृदयपरसे एक बोझसा उतर गया। अब यदि इस दुःख-दुर्दशाके निवारणार्थ उनसे जब मदद माँगी जाय तो वे उसे खुशीसे देंगे, इसके लिए और किसी प्रकारकी शिक्षाकी जरूरत नहीं होगी। दुःखका कारण समझनेपर नीलके साहबोंके अत्याचारके समय जिन लोगोंने कठोर प्रतिज्ञाएँ की थीं, कौन कह सकता है कि वे ही फिर अत्याचारके निवारणार्थ प्रतिज्ञा-बद्ध नहीं होंगे? जो लोग तुलना कर सकते हैं

वे सहजहीमें समझ सकते हैं कि दैन्यका कारण अदृष्ट नहीं है। कुछ दिन मैंने कटकके एक अत्यन्त बूढ़े मछुएसे पूछा था,—मराठोंका राज्य अच्छा था या अङ्गरेजोंका अच्छा है? वृद्धने लम्बी साँस लेकर कहा, 'बाबू' बाबाके मुँहसे सुना है, उस समय दो पैसेके दूध-घीमें लोग तैरने लग जाते थे; अब दो महीनेमें एक बार भी दूधका मुँह नहीं दीखता। उड़ीसामें मराठी राज्य खतम हो जानेके बाद ही बूढ़ेका जन्म हुआ था। हमने पूछा ऐसा क्यों हुआ? वृद्धने कहा,—'कम्पनी सब लूट ले गयी।' अब यदि इनको समझा दिया जाय कि कम्पनी इस प्रकारसे धन लूट ले गयी तो वे क्यों नहीं समझेंगे तथा समझनेपर उसका प्रतिकार करनेमें मदद क्यों नहीं देंगे; इसका कारण हमने खोजकर भी नहीं पाया। हमलोग प्रयत्न नहीं करते हैं, इसीसे यह अनर्थ हो रहा है। स्वदेशके हित-साधनमें यदि अशिक्षितलोग शिक्षितोंको सहायता दें, तो शिक्षित समाजको "बालानां रोदनं बलम्" नीतिका अनुसरण नहीं करना पड़ेगा। यही निद्रा दूर करनेकी चेष्टा काङ्गरेस करे। इङ्गलैंडमें Political deputaion (राजनीतिक डेपुटेशन) न भेजकर साधारण लोगोंमें राजनीतिक समाचार फैलानेका यदि प्रयत्न किया जाय, तो कम खर्चमें करोड़गुना अधिक काम हो सकता है।"

माननीय मिष्टर गोखलेने भी इलाहाबादकी वक्तृतामें कहा था कि हमें दस भागोंमें नौ भाग काम यहीं देशमें रहकर और एक भाग विलायतमें जाकर करना होगा। जो हो, एक और बड़े भारी विषय-की ओर धीरेन्द्र बाबूने जातीय महासमितिकी दृष्टि आकर्षित की है। आपका कथन है कि सबसे पहले गाँव-गाँवमें ग्राम्य-समितियों-की प्रतिष्ठा करनी होगी।

"हम बङ्ग-विभागके विरुद्ध घोर आन्दोलन कर रहे हैं, पर धीरे-धीरे एक और अनर्थका सूत्रपात हो रहा है, उधर हमारा ध्यान नहीं

है। स्यावेज साहबके मतानुसार पञ्चायतोंकी व्यवस्था करनेके बहाने कठोर शासनके शूल हमारे गाँवोंके कलेजेमें बैठानेकी तैयारी की जा रही है। उधरसे हमारे राजनीतिक नेतृवृन्द ऐसे उदासीन क्यों हैं? हमने पहले ही कहा है कि विदेशी राजा जिस परिमाणसे हमारे भीतरी कामोंमें हस्तक्षेप करेंगे, उसी परिमाणसे देशकी अवनति होगी। यह नयी पञ्चायत हमारे दासत्व और बन्धनकी पूर्णता करना चाहती है। देशमें यदि कुछ भी तेज, वीर्य्य स्वावलम्बन और निर्भीकता है, तो वह गाँवोंमें ही है। उसका भी नाश कर राष्ट्रीय जीवनकी नींव ही काटी जा रही है। समय रहते औषधिका बन्दोबस्त न करनेसे रोग असाध्य हो जायगा। कहाँ तो ग्राम्य-समिति स्थापनकर हमलोग स्वराज्यकी वृद्धि करना चाहते थे, कहाँ जो था वह भी जाना चाहता है। हमारे राजनीतिक नेतागण समय रहते सावधान हो जायँ और ग्राम्य-समितियोंकी प्रतिष्ठाकर सरकारी समितियोंकी जगह पहलेसे ही छेक रखें।"

इस विषयमें श्रीयुक्त रवीन्द्रनाथ ठाकुरने भी "अवस्था और व्यवस्था" शीर्षक निबन्धमें लिखा था,—

"एक दिन पञ्चायत हमारे घरकी चीज थी, अब पञ्चायत सरकारी दफ्तरोंमें बनी चीज होना चाहती है। यदि परिणामका विचार किया जाय, तो मालूम होगा कि इन दो पञ्चायतोंकी प्रकृति परस्परमें एकदम विरोधी है। जिस पञ्चायतकी शक्ति गाँववालोंकी दी हुई नहीं है, सरकारकी दी हुई है, वह बाहरकी चीज होनेके कारण अशान्तिके समान गाँवकी छातीपर चढ़ बैठेगी—उसमें ईर्षा उत्पन्न करेगी—इस पञ्चायतका पद पानेके लिए अयोग्य आदमी ऐसे-ऐसे काम करेंगे कि उनसे बराबर विरोध उत्पन्न होता रहेगा और वे मैजिष्ट्रेटसे वाहवाही पानेके लिए चुपचाप गाँवसे विश्वासघात करेंगे। ये लोग गाँवके आदमी होकर बाहरी आदमियोंका काम करेंगे और

जो पञ्चायत गाँवमें बलस्वरूप थी, वही उसकी दुर्बलताका कारण होगी। भारतवर्षके बहुतेरे गाँवोंमें अबतक पञ्चायतोंका प्रभाव वर्त्तमान है। जो पञ्चायतें समय पाकर शिक्षा-प्रचार और अवस्था-परिवर्तनसे स्वभावतः ही स्वदेशीय पञ्चायत हो जाती—जिन ग्राम्य पञ्चायतोंके एक दिन परस्परमें मिलकर देशके कामोंमें कटिबद्ध होनेकी आशा की जा सकती है, उन पञ्चायतोंमें यदि एकबार सरकारका प्रवेश हो जाय, तो पञ्चायतोंका पञ्चायतत्व सदाके लिए नष्ट हो जायगा। देशकी चीज बनकर उनसे जो काम होगा, सरकारकी चीज बनकर वे उससे ठीक उल्टा काम करेंगी।"

भारत-हितैषी ह्यूम साहबने कांगरेसके गत १६ वें अधिवेशनके कुछ ही दिन पहले राजनीतिक अधिकार-लाभ करनेके उपायोंके बारेमें हमें जो सारगर्भ उपदेश दिया था, वह भी सबको याद रखना चाहिए। आपने कहा था,—

"क्या तुमलोग कभी इस बातका खयाल भी करते हो कि कोई भी राजशक्ति आप-ही-आप तुम्हें राजनीतिक अधिकार देगी? जोहो सब अधिकार तुम्हें देनेसे शक्ति-प्रिय अधिकारियोंकी शक्ति घट जाती है, न्यायतः उसपर तुम्हारा हजार दावा होनेपर भी क्या सरकार वह अधिकार तुम्हें सहजमें देगी? जिन अधिकारोंके त्याग करनेसे राज-जातिके आदमी उच्चपदसे वञ्चित होंगे, वे अधिकार राज-पुरुषगण सहजमें नहीं छोड़ेंगे। क्या तुमलोग कभी स्वप्नमें भी सोचते हो कि उदारनीतिक अथवा और कोई भी गवर्नमेण्ट केवल न्याय-धर्म्मके अनुरोधसे तुम्हारे दुःख दूर करनेकी चेष्टा करेगी? ऐसी झूठी बातोंसे कभी आत्म-वञ्चना मत करना। भारत और विलायतमें तुम्हें लगातार अदम्य अध्यवसाय और उत्साहके साथ आन्दोलन करते रहना पड़ेगा। इस प्रकार दीर्घ कालतक बराबर गवर्नमेण्टको यदि हैरान करते रहोगे, तो तुम्हारी इष्ट-सिद्धिकी राह खुल जायगी। राजनीतिक

आन्दोलनके सफल होनेमें मेरा पूर्ण विश्वास है, पर जिस उदासीनताके साथ तुमलोग आन्दोलन करते हो, उससे तो कभी कुछ भी फल नहीं होगा। आन्दोलनमें जी-जानसे लग जाओ, कांगरेसका आन्दोलन बारहो महीने बराबर जारी रखो, राज-पुरुषोंकी भ्रूभङ्गीसे डरो मत। प्राणपनसे चेष्टाकर अङ्गरेज-जातिके मनमें यह धारणा उत्पन्न कर दो कि तुमने जो एकबार पकड़ा है, उसे कभी नहीं छोड़ोगे, बिना प्रार्थना पूरी हुए एक दिनके लिए भी अङ्गरेजोंको दम नहीं मारने दोगे। जगतके लोगोंको दिखा दो कि तुम स्वतन्त्रताके लिए तन-धन को कौन कहे जीवनतक विसर्जन कर सङ्कल्प-साधनमें प्रवृत्त हुए हो। उन्नति पथपर अग्रसर होनेके कार्य्यद्वारा अपनी योग्यता प्रतिपादन करो। देखोगे ग्रीष्मके बाद वर्षाके समान तुम्हारे राजनीतिक उन्नति-पथके कण्टक दूर हो जायँगे।

"तुम्हारी उन्नति तुम्हारे ही उद्योग पर निर्भर करती है। तुमलोग सब प्रकारके साम्प्रदायिक और व्यक्तिगत मतभेद भूल जाओ; आपसमें विश्वास करो; बदमाशी और कपटता छोड़ दो; सभी एक महामन्त्रमें दीक्षित हो; रातदिन सब भूलकर एक मन, एक ध्यानसे उद्देश्य-साधन-पथपर अग्रसर हो; अविचल, निर्भय और निःशङ्क-चित्तसे कार्यमें लग जाओ; देखोगे, तुम्हारी इच्छा बहुत शीघ्र पूर्ण होगी। इस समय तुम्हारे आन्दोलनमें जिस एकाग्रता और आन्तरिकताका अभाव प्रबल हो रहा है, उसके बिना दूर किये कुछ भी फल नहीं होगा।

"अन्यान्य देशकी गवर्नमेण्ट भी अपनेको साधारण लोगोंसे अधिक ज्ञानवान और शक्तिसम्पन्न समझती है। अङ्गरेजलोग खुद अपनी इच्छासे तुमलोगोंको कभी तिलार्द्ध अधिकार भी नहीं देंगे, वरन् दिये हुए अधिकारोंको भी धीरे-धीरे कम करनेकी चेष्टा करेंगे। जिस देशमें प्रजाशक्ति हीनबल होती है, वहाँ राजशक्तिका व्यवहार

ऐसा ही हुआ करता है। राजशक्तिके ऐसे अत्याचारोंको रोकनेकी चेष्टा प्रजाको सर्वदा करनी चाहिए। याद रखना कि प्रजा यदि राजाके अविचार बन्द न कर सके तो यह दोष प्रजाका है—राजाका नहीं।"

गत १६०५ ई० के नवम्बर मासके प्रारम्भमें माननीय मि० गोपालकृष्ण गोखलेको विलायतमें विदा करनेके समय मि० ओडोनेलने भी ऐसी ही बातें कही थीं। आपकी उक्तिका एक भाग यह है कि,—

"विधिसङ्गत उपायोंसे अँगरेज गवर्नमेण्टका गला यदि कसकर न दबा सकें, तो राजशक्तिसे किसी प्रकारका अधिकार पानेकी भारतवासियोंको आशा नहीं है, यह बात आप (गोखले) अपने देशवासियोंको अच्छी तरह समझा दीजिये। वङ्ग-विभागका प्रतिकार-स्वरूप विलायती मालका आपलोगोंने जो बहिष्कार किया है, वह रोगका ठीक औषध हुआ है। यदि आप कुछ दिनतक यह बहिष्कार स्थायी कर सकिये तो इङ्गलैण्डवासी समझ जायँगे कि भारतीय शासन-प्रणालीका आमूल संस्कार करनेकी आवश्यकता है।"

मि० ह्यूम और मि० ओडोनेल साहबका यह उपदेश ग्रहण करना हमारे देशके विज्ञताभिमानी कितने ही लोग अभी उचित नहीं समझते! सरकार चिढ़ेगी, इसी भयसे वे भीत हो रहे हैं। पर क्या सरकारके अकारण क्रोधसे डरकर हमें न्याय-अधिकार प्राप्त करनेसे हट जाना चाहिये? न्याय और कर्त्तव्य-पालनमें डर किस बातका? डरना चाहिये पापसे। राज-पुरुषोंके बेकानूनी कामोंको आश्रय देकर क्या सचमुच इस विशाल भारतवर्षको हम महाश्मशान बनते अपनी आँखोंसे देखेंगे? जो लोग नहीं जानते कि भूखोंकी वेदना कैसी भयङ्कर होती है, वे लोग आधे पेट खाकर छटपटानेवाले बीस करोड़ किसानोंके कष्ट और रोग-शोकसे आक्रान्त लोगोंके दुःख अच्छी तरह नहीं भी समझ सकते हैं, पर जो लोग स्वयम् वही कष्ट भोग रहे हैं, जो लोग खूनका पसीना होनेतक परिश्रम करके भी

अपने बाल-बच्चोंको दो शाम पेटभर अन्न नहीं दे सकते, अथवा जिनकी कमाईका अधिकांश परदेशियोंके पोषणमें और विदेशी वनियोंका खजाना भरनेमें खर्च होता है, वे महापुरुषोंकी अकारण लाल आँखें देखकर कर्त्तव्य-पथसे क्यों हट जायँगे ?" यदि भारतसन्तानें जगत्में अपना अस्तित्व बनाये रखना चाहती हों, यदि हिन्दू-जातिका लोप करना उन्हें इष्ट न हो, तो उन्हें मनुष्योचित अधिकार वसूल करनेके लिए कांगरेसके आदेशानुसार काम करना होगा।

पृथिवीकी सब सभ्य जातियाँ जानती हैं कि भारतमें जैसी शासन-प्रणालीके चलानेसे भारतीय प्रजा समय पाकर स्वराज्य पानेके उपयुक्त होगी, वैसी शासन-प्रणाली यहाँ अँगरेजलोग कभी न चलावेंगे। इसीसे स्टेट सेट्लमेण्टके अँगरेज शासक सर एण्डरू क्लर्कसे अमेरिका देशान्तर्गत वोष्टन नगरके अधिवासी मि० मूरफील्ड स्टोरने एक बार पूछा था,—

Have these centuries of British rule brought the Indian people any nearer to Self-Government than they were when British rule began ?

अर्थात् "भारतमें जब ब्रिटिश-शासन प्रारम्भ हुआ, उस समय वहाँके आदमियोंमें स्वराज्य पानेकी जितनी योग्यता थी, ब्रिटिश-शासनके इन कोई दो सौ वर्षोंमें उनकी वह योग्यता कुछ और अधिक बढ़ गयी है या नहीं ?" उत्तरमें सर एण्डरू क्लर्कने कहा,—"ब्रिटिश-शासनमें रहकर भारतवासियोंको टुक भी (Not a bit) स्वराज्य नहीं मिला है।" यह उत्तर सुनकर बहुतेरे सहृदय अँगरेजोंको लज्जित होना पड़ा था। पर भारतके राज पुरुषगण कहा करते हैं कि 'भारतवासी शिक्षा और मानसिक-बलमें इतने हीन हैं कि अभी बहुत दिनोंतक उन्हें स्वराज्यके अधिकार नहीं दिये जा सकते। पहले यह लोग योग्यता लाभ करें, बाद उन्हें स्वराज्यके अधिकार

दियें जायँगे।' पर "पहले तैरना सीखे और पीछे पानीमें उतरे" कहना जितना युक्ति-युक्त है, भारतीय राज-पुरुषोंका कथन भी उतना ही युक्ति-युक्त है। साधारण बुद्धिका आदमी भी यह बात समझ सकता है कि जिस तरह पानीमें उतरे विना तैरना नहीं सीखा जा सकता, उसी प्रकार स्वाधीनताके कुछ अधिकार विना पाये, मनुष्य स्वाधीनताके लायक भी नहीं होता। इसीसे महामति ग्लाडस्टन बराबर कहा करते थे,—

It is liberty alone which fits men for liberty.

अर्थात् "केवल स्वाधीनतासे ही मनुष्य स्वाधीन होनेके उपयुक्त हुआ करता है।"

गत १६०६ ई० में इङ्गलैण्डमें औपनिवेशिक प्रतिनिधियोंकी जो एक सभा हुई थी, उसमें इङ्गलैण्डसे अपनी खास जल-सेना तैयार करनेकी अनुमति चाहनेके समय आस्ट्रेलियाके प्रधान मन्त्री मि० डिकिन्सने कहा था,—

They could not have manhood without the responsibilities of manhood.

अर्थात् "मनुष्योचित दायित्वके विना ग्रहण किये किसीमें मनुष्यत्व उत्पन्न नहीं होता।" और भी एक महात्माका कथन है,—

Liberty is the best educator. Its atmosphere is pure and bracing through which the lark of genius sores high beyond the reach of the shafts of despotism and clouds of ignorance.

अर्थात् "स्वाधीनता ही मनुष्यका सर्वोत्तम शिक्षक है। स्वाधीनता निर्म्मल आनन्ददायी आकाश है, जिसमें यथेच्छाचाररूपी तीर और अज्ञानरूपी वादलोंकी पहुँचसे बहुत दूर मानवीय प्रतिभारूपी पक्षी आनन्दसे विहार किया करता है।" अर्थात् स्वाधीन देशमें ही मनु-

ष्यकी प्रतिभा पूर्ण-उन्नत अवस्थाको प्राप्त हो सकती है; यहाँ शासकोंका यथेच्छाचार और लोगोंका अज्ञान उनके उन्नति-पथमें कण्टक रूप नहीं होता।

भारतवासियोंको स्वराज्य देनेके, विशेषतः भारतीय राज-कोषसे रुपये खर्च करनेके, समय भारतवासियोंकी सलाह लेनेका प्रस्ताव मद्रासके भूतपूर्व गवर्नर सर चार्ल्स ट्रिव्हेलियन महोदयने सन् १८७२ ई० में अनुसन्धान समितिके सामने उपस्थित किया था। कहना नहीं होगा कि वह अस्वीकार किया गया। ट्रिव्हेलियन महोदयने उस समय कहा था,—

Give them the raising and spending of their own money, and the motive will be supplied, and leaf and reality will be imported into the whole system. All would act under real personal responsibility, under the eye of those who would be familiar with all the details and would have the strongest possible interest in maintaning a vigilant control over them, and it would be a school of Self-Government for the whole of India—the longest step yet taken towards teaching its 20,00,00,000 of people to govern themselves, which is the end and object of our connection with that country.

भावार्थ—"भारतवासियोंको कर बैठाने और राजकोषसे रुपये खर्च करनेके अधिकार देनेसे उसको सह्य करनेकी बुद्धि उनमें आप-ही-आप आ जायगी। समूचे भारतीय समाजमें जान आ जायगी और वह अपना अस्तित्व समझ सकेगी, सब आदमी अपनी-अपनी

जवाबदेही पहचानकर काम करेंगे। जो लोग प्रवीण हैं, जरूर ही उनकी अधीनतामें रहकर दूसरोंको काम करना पड़ेगा। इस प्रकारकी व्यवस्था हो जानेसे भारतवर्षकी बीस करोड़ प्रजाके लिए भारत आत्म-शासन शिक्षा पानेका विद्यालय या स्वराज्य-प्राप्तिका एक सोपान हो जायगा। कहना नहीं होगा कि भारतवासियोंको आत्म-शासन-विद्यामें पारदर्शी करना ही भारतके सहित हमारे वर्तमान सम्बन्धका प्रधान उद्देश्य है।"

पार्लमेण्टकी अनुसन्धान-समितिके सामने यह मन्तव्य प्रकाश हुए ५७ वर्ष हो गये; पर इतने दिनोंमें भी प्रजाको राजकोषके रुपये खर्च करने-न-करनेका कुछ भी अधिकार नहीं मिला। अब भी राज-पुरुषगण प्रजाके मतामतकी कुछ भी परवाह न कर प्रजाका धन मनमाना उड़ाया करते हैं।

हमारे राज-पुरुषगण कहा करते हैं कि भारतवर्षमें शिक्षित लोगोंकी संख्या बहुत कम है; इसीसे भारतवासियोंको स्वराज्यके अधिकार नहीं दिये जा सकते। लण्डनके ईष्ट इण्डिया एसोसियेशनके सभापति लार्ड रे साहबने गत १९०६ ई० की ११ वीं जुलाईको लण्डनमें वक्तृता देनेके समय कहा था,—

Self-Government in England at the Colonies is the result of compulsory and general education. The masses in India are not fit to exercise the voting power and until they are, I will strongly deprecate an attempt to govern India on principles of Self-Government which is applied to races in a totally different stage of development.

अर्थात् "इङ्गलैण्ड और उपनिवेशोंमें जबर्दस्ती शिक्षा दी जानेके कारण ही वहाँ आत्म-शासन-प्रणालीका चलाना सम्भव हुआ था।

भारतके जनसाधारणमें शिक्षाका अभाव होनेके कारण वे प्रतिनिधि चुननेके अधिकार पानेके योग्य नहीं हैं। जबतक उनमें वह योग्यता न आ जाय, तबतक भारतमें आत्म-शासन-प्रणाली नहीं चलायी जा सकती।

लार्ड रेका यह कहना बिलकुल सच नहीं। इतिहासके पाठकोंको मालूम होगा कि सन् १८६० ई० तक खास लण्डन शहरके तीन चतुर्थांश बालकोंको किसी प्रकारकी शिक्षा नहीं मिलती थी। जब राजधानीकी ही यह हालत थी, तब गाँवोंकी अवस्थाका अनुमान पाठक ही करलें। अथच छठे एडवर्डके समय ही, जब समूचे इङ्गलैण्डमें ३५९ से अधिक पाठशालाएँ नहीं थीं, इङ्गलैण्डके लोगोंको "हाउस आफ कामन्स" महासभा या सम्पूर्ण आत्मशासनके अधिकार मिल गये थे। पक्षान्तरमें यह बात भी सबलोग जानते हैं कि क्यूबा, फिलिपाइन और साइबेरिया-प्रदेशसे भारतकी शिक्षा-दीक्षा किसी हालतमें कम नहीं है। पर अमेरिकाकी सरकारने उन देशोंके लोगोंको जो सब अधिकार दिये हैं, वही अधिकार पानेमें अँगरेज हमें अयोग्य समझते हैं। पश्चिम अफ्रिका-देशान्तर्गत लाइबेरिया-प्रदेशके अधिवासी नीग्रो २५ वर्षतक ही अमेरिकाके अधीन रहकर प्रजातन्त्र शासन-प्रणाली (republic) पानेके योग्य हो गये और १८४७ ई० के जुलाई महीनेमें स्वाधीन भी हो गये; और १७० वर्षके ब्रिटिश-शासनके बाद बहुत कुछ माथापच्ची करनेपर केवल एक भारतवासी (लार्ड सिंह) बिहारके गवर्नर बनाये गये। इससे क्या जाहिर होता है—ब्रिटिश-शासन-प्रणालीका दोष, या गोरे राज-पुरुषोंकी कुटिलता, अथवा भारतवासियोंमें शिक्षा-दीक्षाका अभाव? भारतवासी मानसिक शक्तिमें क्या लाइबेरियाके नीग्रो-लोगोंसे भी अधिक हीन हैं? यदि यह बात सच है तो भारतीय इञ्जीनियरोंमें अग्रगण्य काटनने जलपूर्त्त और स्थापत्य विद्यामें भारतवासियोंको विशेष पटु क्यों बताया है?

Note—"The natives have shown practical talent (in Engineering) and on the main point of all, that of irrigation, nothing can be better than the ancient irrigation works of southern India. In fact they have been a model to ourselves. Sir Arthur Cotton is merely an imitator on a grand scale and with considerable personal genius, of the ancient native Indian Engineers." Sir Charles Trevellvan. Report of 1873. Question 1547.

लार्ड रे चाहे जो कहें, इङ्गलैंएडका इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है कि राजनीतिक अधिकार पानेके बाद ही वहाँके लोगोंमें साधारण शिक्षाकी कल्पना उत्पन्न हुई। अनन्तर जैसे-जैसे उनके राजनीतिक अधिकार बढ़े हैं, वैसे-ही-वैसे उनकी शिक्षा-विस्तार-वासना भी बढ़ती गयी है। अमेरिकन युक्तराज्यके इतिहासमें भी देखा जाता है कि उन्हें पहले राजनीतिक अधिकार मिले, पीछे वहाँ शिक्षाका विस्तार हुआ। प्रसिद्ध कोषकार वेबष्टरका कथन है कि—"स्वाधीनताके लिए युद्ध-घोषणा करनेके समय भी अमेरिकामें शिक्षकोंकी अवस्था साधारण मजदूरोंसे किसी बातमें अच्छी नहीं थी। उस समय शिक्षकोंकी संख्या भी बहुत कम थी। लोग भी शिक्षकोंकी कदर मजदूरोंसे अधिक नहीं किया करते थे।" शिक्षा-विषयमें उस समयके अमेरिकावासियोंसे वर्तमान भारतवासी निःसंशय बहुत अधिक उन्नत हैं। तो भी जब उस समयका अमेरिकन-समाज अङ्गरेजोंसे युद्ध कर रण-जयी हो, सम्पूर्ण स्वाधीनता लाभ कर सकता था, तब यह कैसे सम्भव हो सकता है कि हमलोग आज भी स्वराज्य पानेके अयोग्य हैं ?

इस विषयमें सुविज्ञ आनन्दमोहन वसु महाशयने इङ्गलैएडके

कृषक-समाजके साथ भारतके किसानोंकी तुलना करते हुए कहा था कि,—

I have had, I think I may say a fair amount of acquaintance with the English agricultural labourer with whom I have come into contact, and whom I have addressed inconnection with several election meetings, and I know our ryots, at least in Bengal and I have not the slightes, hesitation in saying that whether in intelligence, sobriety or power of grasp over different questions, the average Indian ryot is superior to the average English labourer who delights in the possession of a vote. And for me quite unexpectedly, I have had the testimony of many Anglo-Indians whom I have met in England to the same effect.—*Open Letter to the President of the 19th National Congress.*

अर्थात् "इङ्गलैंडमें रहनेके समय वहाँके किसानोंसे मेरा बहुत कुछ परिचय हुआ था। पार्लमेंटके सदस्य चुननेके मामलेमें उनके सामने व्याख्यान देनेका सुयोग भी मुझे मिला है। भारतके अन्ततः बङ्गालके किसानोंसे भी मेरा परिचय है। इन दोनों देशोंके किसानोंकी तुलना कर मैं निःशङ्क चित्तसे कह सकता हूँ कि इङ्गलैंडका कृषि-समाज प्रतिनिधि चुननेके अधिकार पानेपर भी भारतके कृषि-समाजसे बुद्धिमत्ता, गाम्भीर्य्य और तरह-तरहकी समस्याओंका अर्थ समझनेमें निकृष्ट है। आश्चर्यकी बात तो यह है कि बहुतेरे भारत-प्रवासी अङ्गरेज भी यह बात स्वीकार किया करते हैं।"

अमेरिकाके सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ ब्राउन साहब स्वयं भारतकी यात्रा कर गये हैं। आप भारतवासियोंकी स्वराज्य पानेकी योग्यताके बारेमें यही कहते हैं,—

There are enough informed college trained men in India, not to speak of those who like our ancestors a few centuries ago have practical sense and good judgment without book learning to guide public opinion.

अर्थात् "भारतमें विद्वान् और कालेजमें शिक्षा पाये हुए आदमी बहुत हैं। इसके सिवा हमारे पूर्व-पुरुषोंके समान बिना पुस्तकीय विद्याके भी वहाँ बुद्धिमान और विवेकशील बहुत आदमी हैं।" ब्राउन साहबने स्थानान्तरमें साफ कहा है कि भारतवासियोंमें स्वराज्य-प्राप्तिकी पूरी योग्यता है। केवल योग्यता ही क्यों? इङ्गलैण्ड आदि पाश्चात्य देशोंमें आज जो लोक-प्रतिनिधिमूलक शासन-प्रणाली प्रचलित है, उसका जन्म ही भारतमें हुआ है; हमारी स्वाधीनताके समय यहाँ भी उसी प्रणालीके अनुसार शासन-कार्य परिचालित होता था, हमारे धर्म्म-ग्रन्थोंमें इसके बहुत प्रमाण हैं। पर यह बात जाने दीजिये। देखिए चीन देशके सुप्रसिद्ध अँगरेज अफसर मि० आनस्टे एशिया-खण्डकी शासनप्रणालीके बारेमें बहुत दिनकी खोज और अनुभवके बाद क्या कहते हैं:—

We are apt to forget when we talk of preparing people in the East by education, and all that soft of thing, for Municipal Government and Parliamentary Government, that the East is the Parent of Municipalities. Local Self-Government, in the widest acceptation of the term, is

as old as the East itself. No matter what portion of that country, there is not a portion of Asia, from west to East, from North to South, which is not swarming with municipalities; and not only so, but like to our municipalities of old, they are well bound together as in a species of net-work, so that you have ready made to your hand the frame-work of a great system of representation, and all you have to do is to adopt what you have there... Take Bengal; open that most admirable of all collections of State papers, the celebrated Fifth Report of the committee of 1811, and read there if you wish to know of what mighty things the Municipal system of India is capable. Now let me go to what we call political Representative Government on a large scale. Can any man who has in his memory the marvellous history of the Sikh Common-wealth tell me that the natives of India are incapable not only in sending delegates to a Council sitting in Calcutta or Bombay or Madras or Agra, but if the emergency required it, of governing themselves ? What was the case of the Sikh Commonwelth ? Who were the Sikhs when then their prophet first found them out ? Poor miserable stravelings from Bengal, of whom their great fonnder, knowing well the stuff from which Asia-

tics were made, looking with a prophetic eye into the future, said, I will teach the sparrow to strike the eagle. In comparison with the great dynasty of Aurangzeb, it was the sparrow as compared to the eagle, and in less than a century the sparrow did strike the eagle......We ought to profit by the moral and we ought to believe that those poor Bengalees who in three generations (for it only required three generations to effect that marvellous change) were able to found a Commonwealth, may be reasonably considered to be fit to exercise the much less exalted function of meeting village by village, *taluq by taluq* and there, electing in their own quiet way, some spokesman on their behalf to go and confer with the Sirkar. For that is the meaning of Representative Government."

अर्थात्—हमलोग प्राच्य देशके लोगोंको स्थानीय आत्म-शासन (Municipal Government) और लोक-प्रतिनिधि मूलक (Parliamentary) शासन-प्रणालीके योग्य बना रहे हैं, यह कहनेके समय हमलोग प्रायः भूल जाया करते हैं कि, स्थानीय आत्म-शासनका पूर्वीय देशोंमें ही जन्म हुआ है। प्राच्य देशोंके अस्तित्वके साथ-ही-साथ स्थानीय स्वराज्यका वहाँ जन्म हुआ था। चाहे जो देश लीजिये, एशिया-खण्डमें पूर्वसे पश्चिमतक और दक्षिणसे उत्तरतक कहीं ऐसा स्थान नहीं मिलेगा जो म्युनिसिपलिटियोंसे भरा न हो। केवल यही नहीं, वरन् हमारी पुरानी (पाश्चात्य)

म्युनिसिपलिटियोंके समान ये भी सब-की-सब एक जालमें बँधी हैं। इस प्रकार लोक-प्रतिनिधि-मूलक प्रथाका सब मसाला आपके सामने है, सिर्फ उसको उसी प्रकार काममें लाना आपका काम है। * * * (यहाँ लेखकने चीन देशका एक उदाहरण दिया है) बंगालको ही लीजिये; और भारतकी म्युनिसिपलिटियाँ कैसे-कैसे बड़े काम कर सकती हैं, यह जाननेकी यदि आपकी इच्छा हो तो १८११ सालकी पार्लमेण्टरी-कमिटीकी वह मशहूर पाँचवीं रिपोर्ट खोलकर पढ़िये। हमलोग जिसे लोक-प्रतिनिधि-मूलक शासन-प्रणाली कहते हैं, उसका अब विचार कीजिये। जिसे (Sikh Commonwealth) सिक्ख-प्रजातन्त्रका वह आश्चर्य-कारक इतिहास याद है, क्या ऐसा एक भी आदमी कह सकता है कि भारतवासी—केवल कलकत्ता, बम्बई, मद्रास या इलाहाबादकी व्यवस्थापक-सभामें अपना प्रतिनिधि भेजना ही क्यों, प्रत्युत समय पड़नेपर अपना राज्य भी आप नहीं चला सकते? सिक्ख-प्रजातन्त्र क्या था? सिक्खोंके पैगम्बरका जब जन्म हुआ था, तब वे किस हालतमें थे? वे गरीब घर-द्वार हीन मनुष्य थे, जब उनके गुरुने, जो एशिया-निवासियोंका पानी अच्छी तरह जानते थे, उनके भविष्यका विचार करके कहा था कि मैं एक समान्य गौरैयासे गरुड़को पराजित कराऊँगा। औरङ्गजेबके उस बड़े खानदानकी तुलनामें उस समयके सिक्ख गरुड़के सामने गौरैयाके समान ही थे। पर सौ वर्षसे भी कम कालमें उसी गौरैयाने गरुड़पर हमला किया! हमलोगोंको इस घटनासे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए और हमें विश्वास करना चाहिए कि वे गरीब अकाली जो तीन ही पुश्तोंमें (कारण, उस आश्चर्य-जनक परिवर्तनके होनेमें तीन ही पुश्त लगे थे) एक प्रजा-तन्त्रकी पञ्जाबमें प्रतिष्ठा कर सके थे, गाँव-गाँव और तालुके-तालुकेमें सभा कर अपनी-अपनी सरकारके साथ परामर्श करनेके लिए अपना एक-

एक प्रतिनिधि जरूर ही चुन सकने हैं—और इसीको तो लोक-प्रतिनिधि-मूलक शासन कहते हैं।"

इतना होनेपर भी स्वराज्य-प्राप्तिकी चेष्टा करनेसे भारतवासियोंको विमुख करनेके उद्देश्यसे कुछ गोरे हमलोगोंको बराबर समझाया करते हैं कि भारतसे जाति-भेद, भाषा-भेद, धर्म्म-भेद, जनसाधारणकी अज्ञता, सामाजिक कुसंस्कार, नैतिक बलका अभाव प्रभृति दोष जब-तक दूर नहीं होंगे, तबतक भारतवासी कभी स्वराज्य पानेके योग्य नहीं होंगे। इन बड़े भारी दोषोंके दूर होनेके पहले ही यदि भारतवासी अङ्गरेजोंके पाशसे किसी प्रकार मुक्त हो भी जायँ, तो वे अपनी उस स्वाधीनताकी रक्षा नहीं कर सकेंगे। परम दार्शनिक पण्डित मारलेने कई बार कहा है कि भारतवासियोंके हाथमें अगर दायित्व-भार दिया जाय, तो उसकी वे एक सप्ताह भी रक्षा नहीं कर सकेंगे। पर यही सब दोष अमेरिकन, इटालियन, लाइबेरियन आदि अनेक जातियोंके लिए स्वाधीनता-प्राप्तिकी राहमें विघ्नकर नहीं हुए थे। इस ज्वलन्त सत्यकी ओर यह लोग देखकर भी नहीं देखते हैं। भारतका ही उदाहरण लीजिये; महात्मा शिवाजीके समय महाराष्ट्र देशमें ये सब दोष पूर्ण मात्रामें विद्यमान थे, तथापि महाराष्ट्रमें स्वातन्त्र्य-प्रतिष्ठा करना सम्भव हुआ था। बड़े दुःखकी बात है कि लोग यह बात स्मरण नहीं रखते।

जिस अमेरिकन-जातिने आज ज्ञान, विज्ञान, धन, सम्पत्ति, शिक्षा, दीक्षा, सभ्यता प्रभृति सभी बातोंमें जगतमें शीर्षस्थान अधिकृत किया है, वही जाति जब इङ्गलैण्डके शासन-पाशसे व्याकुल होकर स्वाधीनताके लिए रण-भूमिमें अवतीर्ण हुई थी, उस समय भी उसमें उपर्युक्त दोष-समूहका कैसा प्राबल्य था, वह लेकी-प्रणीत इङ्गलैण्डके इतिहासके चतुर्थ खण्डमें विस्तारके साथ वर्णित हुआ है। वह वर्णन पढ़नेसे साफ मालूम हो जाता है कि उस

समयके गोरे अमेरिकावासियोंकी अपेक्षा आजकलके हम भारतवासी स्वराज्य पानेके बहुत अधिक योग्यतर हैं। इस बातकी यहाँ जरा विस्तारके साथ आलोचना करनी होगी।

भारतवर्षमें नाना जातियाँ रहती हैं तथा उनमें तरह-तरहके मतभेद भी हैं। अङ्गरेजोंके मतसे इसीके कारण भारतवासी स्वराज्य पानेके अयोग्य हैं। पर १८ वीं सदीमें अङ्गरेजोंके विरुद्ध युद्ध-घोषणा करनेके समय अमेरिकाके अधिवासियोंकी कैसी अवस्था थी, जरा वह भी देखिए। ऐतिहासिक लेकी कहते हैं,—"वर्त्तमान युक्त-राज्यके तत्कालीन अङ्गरेज वंशधरोंके साथ डच, जर्मन, फरासी, स्वीडिश, स्काच, आयरिश प्रभृति नाना जातियोंके मिल जानेके कारण उस समयके अमेरिकन-समाजने बड़ा विराट् रूप धारण किया था। इस समाजके लोगोंमें धार्म्मिक विश्वासका वैचित्र्य, सामाजिक रीति-नीतिका वैषम्य, वाणिज्य व्यवसाय-सम्बन्धी स्वार्थका विरोध और शासन-व्यवस्थाका पार्थक्य इतना अधिक था कि राष्ट्र-विप्लवके प्रारम्भतक इस बातपर कोई भी विश्वास नहीं कर सकता कि इनमें भी एकता होना कभी सम्भव हो सकता है।"

सन् १७६० ई० में बर्णावी नामक एक यात्रीने अमेरिका भ्रमण-कर वहाँके समाजका इस प्रकार वर्णन किया है,—"अमेरिकाके विभिन्न जातीय औपनिवेशिकोंमें जैसी शत्रुता दीख पड़ी, वैसी आग और पानीमें भी शायद ही हो। वह लोग आपसमें मात्सर्य्य और विद्वेष बहुत ही अधिक दिखाया करते हैं। अपनी जमीनकी सीमाके बारेमें उनमें बार-बार खून खराबियाँ हुआ करती हैं। राज-नीति, धर्म्म-विश्वास, स्वभाव, हिताहित-दृष्टि प्रभृति सब बातोंमें ही इनमें बड़ा भारी वैषम्य दीख पड़ता है। इस प्रकारके वैषम्य जिनमें हैं, ऐसी अमेरिकन-जातिको स्वाधीनता देनेसे देशके एक छोरसे दूसरे छोरतक अशान्तिकी आग जल उठेगी और उस अराजकताका

मौका पाकर "लाल इण्डियन" और काले नीग्रो आपसमें लड़नेवाले इन श्वेताङ्गोंका जड़-मूलसे संहार कर डालेंगे।"

आजकल गोरे शासकोंके मुँहसे भी क्या हमलोग ठीक ऐसी ही बातें नहीं सुनते हैं? अधिकतर आश्चर्यकी बात यह है कि आजकल हमारे देशके कई पाण्डित्याभिमानी व्यक्तियोंका भी खयाल है कि अभी हमलोग स्वराज्य पानेके लायक नहीं हुए हैं; उस समय अमेरिकाके भी कतिपय-पंडित-मूर्खोंका यही मत था! अपने देशवासियोंको स्वाधीनताके लिए चञ्चल होते देख ओटिस नामक एक अमेरिकावासीने सन् १७६५ ई० में लिखा था,—"हमलोगोंकी मातृभूमि इङ्गलैण्डके विरुद्ध विद्रोह करनेकी प्रवृत्ति इन औपनिवेशिकोंमें भगवान् कभी न उत्पन्न करें। यदि कभी इनमें ऐसी दुर्बुद्धि उत्पन्न हुई तो समझना होगा कि उपनिवेशोंके बुरे दिन आये हैं। औपनिवेशिकगण यदि स्वाधीन हो जायँ, तो अमेरिकाभरमें लहूकी नदी बह निकलेगी, अमेरिका देश अराजकताका लीला-क्षेत्र हो जायगा।" *

* सन् १७७५ ई० तक अमेरिकाके बहुतेरे लोगोंकी ऐसी ही धारणा थी। पर सन् १७७६ ई० के प्रारम्भमें टामस पेन नामक एक प्रतिभाशाली लेखकने 'कामन सेन्स' नामक एक छोटीसी पुस्तक लिखकर जनसाधारणका यह भ्रम दूर कर डाला। आपने इस मतका प्रचार किया कि एकता होनेका एकमात्र उपाय है—स्वाधीनता। स्वाधीनता-लाभमें जितनी देर होगी, उतनी ही वह दुष्प्राप्य भी होती जायगी। इस विषयमें 'एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटानिका' नामक वृहत् कोषमें लिखा है!

Thomas Paine turned the scale (Jan. 9th, 1776) by the publication of his pamphlet *Common Sense.* His argument was that independence was the only consistent line to pursue; that "it must come to that sometime or other"; that it would

कहना नहीं होगा कि इन लोगोंकी ये भविष्य वाणियाँ सच होनेके बदले अङ्गरेजोंकी शृङ्खलासे मुक्त होते ही अमेरिका जातिने सभ्य-जगत्‌में सर्व्वोच्च स्थान अधिकृत किया।

जाति-भेदके समान भाषा-भेद भी अमेरिकन-जातिके स्वाधीन होनेकी राहमें कण्टक-स्वरूप नहीं हुआ। ऐतिहासिक लेकी कहते हैं,—"न्यूयार्क और तन्निकटवर्त्ती स्थानोंमें उस समय १८ भाषाएँ बोली जाती थीं और आज भी १२।१३ बोली जाती हैं।" पाठक शायद जानते नहीं होंगे कि आज भी अमेरिकामें सभापति निर्व्वाचन-के समय प्रत्येक दलके लोगोंको कर-दाताओंका अनुकूल मत पानेके लिए १२।१३ भिन्न-भिन्न भाषाओंमें किताबें छपवानी पड़ती हैं। इस विषयमें भारतकी अवस्था क्या किसी तरह भी अमेरिकासे खराब है?

उपदेश-भक्तिके बारेमें भी यही बात कही जा सकती है। लेकी-के इतिहासमें लिखा है,—"उन दिनों थोड़े ही समयसे उत्तर अमेरिका-में जो भिन्न-भिन्न यूरोपियन जातियाँ जा बसी थीं, उनके धर्म्म-विश्वास परस्परमें मिलते-जुलते नहीं थे; देशमें सड़क आदिका अच्छा बन्दो-बस्त न होनेके कारण उन्हें परस्परमें मिलनेका मौका भी बहुत ही कम मिला करता था। व्यवसायी होनेके कारण स्वभावसे ही उनमें अर्थ-पिपासा अधिक थी, उनमें स्वदेश-प्रीति या स्वजाति-प्रीति होनेकी सम्भावना भी बहुत कम थी।" इस दृष्टिसे तो भारतवासियोंकी

---

only be more difficult the more it was delayed; and that independence was the surest road to union. Written in simple language it was read everywhere, and open movement to independence dates from its publication,—*Encyclopoedia Britannica*—United States PP, 742. (9th Ed.)

वर्तमान अवस्था उस समयके अमेरिकावासियोंकी अवस्थाकी अपेक्षा स्वराज पानेके पक्षमें अधिक अनुकूल है, इसमें सन्देह नहीं।

इसके पहले ही प्रसिद्ध कोषकार वेबस्टरकी उक्तिसे दिखाया जा चुका है कि उस समयके अमेरिकन आजके भारतवासियोंकी अपेक्षा शिक्षा-विषयमें भी बहुत पीछे थे। अबसे कुछ पहलेकी हमारी कांगरेसमें जैसे प्रधानतः वकील, मुख्तार और बैरिष्टर योग दिया करते थे, उस समयकी अमेरिकन-कांगरेसमें भी यही लोग शामिल हुआ करते थे। यहाँके राजपुरुषोंके समान वहाँके राजपुरुषगण भी अमेरिकन-कांगरेसको वकील-मुख्तारोंकी सभा कहकर नीचा दिखानेका प्रयत्न किया करते थे। अमेरिकाका इतिहास पढ़नेसे यह भी मालूम हो जाता है कि उस समयके अमेरिकन अमीर आजकलके भारतीय अमीरोंसे भी बढ़कर आलसी, विलास-प्रिय और देशके मङ्गलामङ्गलके विषयमें उदासीन रहा करते थे। मि० लेकीने अपने अमेरिकन इतिहासके चतुर्थ खण्डके ३५ वें पृष्ठपर तत्कालीन अमेरिकनोंके नैतिक बलके बारेमें जो कुछ लिखा है, उसे देखनेसे यह कहना ही पड़ता है कि वर्त्तमान भारतवासी तत्कालीन अमेरिकनोंकी अपेक्षा स्वराज्य पानेके अधिक योग्य हैं, कारण उन दिनोंका अमेरिकन समाज यूरोपसे निर्वासित असच्चरित्र लोगोंसे ही भरा था। लेकीने उन लोगोंकी नीतिहीनता और भ्रष्टताके जैसे उदाहरण दिये हैं, वैसी नीति-हीनताकी हमलोग भारतीय समाजमें कल्पना भी नहीं कर सकते। इतने दोषोंके रहते हुए भी जब अमेरिकन जाति स्वाधीनता पाने और भोगनेमें अयोग्य नहीं हुई, तब उससे हजार दर्जे उन्नत हमलोग स्वराज्य पानेके अयोग्य क्यों होंगे? *

---

* स्वदेश शिल्प-वाणिज्यकी रक्षा करनेके उद्देश्यसे आजकलके भारत-

सिर्फ अमेरिकाकी बात ही क्यों कहें ? स्विजरलैण्डके समान अति क्षुद्र देशमें दो धर्म्म और तीन भाषाओंका प्रचार रहनेपर भी वहाँके अधिवासियोंमें जातीय भाव, स्वदेश-प्रेम और स्वाधीनताका अभाव नहीं है। फ्रान्समें भी धर्म्म-गत और भाषा-गत पार्थक्य बहुत अधिक है। हालैण्डकी भी ऐसी ही अवस्था है। आष्ट्रियामें भारतवर्षकी अपेक्षा भी जाति-भेद, धर्म्म-भेद, भाषा-भेद अधिक ही है, कम नहीं है। इटली और जर्मनीके उदाहरण भी हमारे पक्षके अनुकूल हैं। इन देशोंमें भिन्न-भिन्न जातिके भिन्न-भिन्न प्रकृतिवाले लोग यदि धर्म-गत और भाषा-गत वैषम्यके रहते हुए भी एकविध राष्ट्रीय सूत्रमें आबद्ध रहकर स्वराज्य चला सकते हैं, तो

वासियोंने बायकाट अर्थात् बहिष्कारका जैसा अवलम्बन किया है, उस समय के अमेरिकनोंने भी इसका इसी प्रकार अवलम्बन किया था। केवल एक बातम अमेरिकन लोगोंको हमलोगोंसे अधिक सुविधा थी। अमेरिकन जाति हमारे जैसी निरस्त्र नहीं हुई थी – अमेरिकामें अस्त्र-आईन प्रचलित नहीं था। पर इस विषयमें एक बात हमेशा याद रखनी चाहिए Pearson's National Life and National Character नामक ग्रन्थके ६६ वें पृष्ठपर लिखा है कि:–

The supremacy of the inferior races in futures is likely to be achieved by industrial progress rather than by military conquest.

अर्थात् 'जैसे दिन आ रहे हैं, उससे तो भविष्यत्‌में जगतमें निर्बल जातियाँ शिल्प-वाणिज्यकी उन्नतिसे ही प्रबल जातियोंपर प्रधानता स्थापन कर सकेंगी – शारीरिक युद्धकी अब आवश्यकता ही नहीं रही है।' सारांश हम-लोगोंने स्वदेशी और बहिष्कारका जो अवलम्बन किया है, उसपर यदि हम दृढ़ बने रहे, तो थोड़े ही दिनोंमें हमारी स्वराजप्राप्तिकी योग्यतासम्बन्धी अङ्गरेजोंका सन्देह दूर हो जायगा।

केवल भारतवासी ही क्यों नहीं चला सकेंगे? भारतवासियोंके राष्ट्रीय स्वार्थके एक सूत्रमें आबद्ध होनेकी राहमें हमें तो कोई भी विपत्ति नहीं दिखती। यदि कुछ आपत्ति हो भी, तो स्वराज्य पानेके बाद ही वह दूर हो जायगी। यथेच्छाचार राजपुरुषोंद्वारा अवलम्बित कुटिलनीतिके कारण वह भेद अभीसे दूर होने लग गया है।*

हमारे राजपुरुषगण कहा करते थे, यहाँतक कि प्रसिद्ध उदार-नीतिज्ञ भारत-सचिव लार्ड मारलेने भी कहा है कि प्राच्य देशके अधिवासियोंकी प्रकृति यूरोपके अधिवासियोंके समान प्रजातन्त्र-मूलक शासन-प्रणालीके अनुकूल नहीं है। पर हम देखते हैं कि जापानमें भी यूरोपके अनुरूप पार्लमेण्ट बन गयी है और उसकी सहायतासे देशका शासन-भार उत्तम प्रकारसे चलाया जा रहा है। रूस और फारसकी मुसलमान प्रजाको भी पार्लमेण्टके अधिकार मिल गये हैं और इन देशोंके अधिवासियोंके ये अधिकार पानेपर इङ्गलैण्ड-सहित यूरोपकी सब महाशक्तियोंने उनका अभिनन्दन भी किया था। जापानका उदाहरण देखकर प्रजा-वत्सल चीन-सम्राट् भी उक्त देशवासियोंको आप ही धीरे-धीरे प्रजातन्त्र-प्रणाली-के अधिकार दे रहे हैं। श्याम और अफगानिस्तानके नरपतिगण जिस उत्साहके साथ अपने-अपने देशकी उन्नति कर रहे थे, उससे पहले ही आशा की गयी थी कि इन देशोंमें भी शीघ्र ही प्रजातन्त्र-शासन-प्रणाली चल जायगी। रूसकी प्रजाको भी डूमा अर्थात् पार्लमेण्टके नये अधिकार मिल गये थे। अब तो रूसकी उन्नतिपर संसार चकित हो रहा है। समूचा संसार रूससे भयभीत रहता है। बहुत थोड़े दिनतक अमेरिकाके अधीन रहकर फिलीपाइन द्वीपके अधिवासियोंको भी स्वराज्य मिल गया है। पर सभ्यताभिमानी

* पर मारले साहबके संस्कारोंमें प्रच्छन्न कुटिलनीति अंशतः सफल हुई है, यह बात समाचार-पत्रोंके पाठक जानते हैं।

अङ्गरेज हमारी प्रार्थनाओंके उत्तरमें अबतक कभी तो यह कहते रहे कि—"तुमलोग अभी बुद्धिमान् और शिक्षित नहीं बने हो ?" कभी यह कहते कि—

"East is East and West is West—You can't transplant British institutions wholesale in India. Even if it could be done, it would not be for the good of India."

अर्थात् "भाई ! आखिर तो पूरब-पूरब ही और पश्चिम-पश्चिम ही है; ब्रिटेनकी सब प्रणालियाँ भारतमें चलायी नहीं जा सकतीं और यदि चलायी भी जायँ तो उनसे भारतवर्षकी भलाई नहीं होगी। (पूर्वी देशोंमें यथेच्छाचार-प्रणाली ही मंगलकर है और पाश्चात्य देशोंमें प्रजातन्त्र।)" कभी-कभी यह भी कहते हैं कि भारत में जाति-भेद, धर्म-भेद और भाषा-भेद इतना प्रबल है कि उन्हें यदि स्वराज्यके अधिकार मिल जायँ तो वे परस्परमें ही मार-पीट करके अपना सर्वनाश कर डालेंगे।

बुद्धि और शिक्षा-विषयक आपत्तियोंका उत्तर पहले ही दिया जा चुका है। दूसरी आपत्ति जापान, चीन, रूम और फारसके उदाहरणोंसे ही अमूलक हो जाती है। अमेरिकाके इतिहाससे सिद्ध कर दिखाया गया है कि तीसरी आपत्ति भी भित्ति-हीन है। एक और बात है; भारतके देशी राज्य तो प्रायः देशवासियोंद्वारा ही परिचालित हो रहे हैं। सिवाय एक रेजिडेण्टके वहाँके शासन-कार्य्यमें और कोई भी अङ्गरेज दखल नहीं देता। पर क्या कभी किसीने सुना है कि देशीराज्योंकी प्रजा धर्म्म-भेद और जाति-भेदके कारण परस्परमें मारकाट करके मर गयी है ? सुतरां यदि ब्रिटिश-भारतकी प्रजाको भी सन् १९२८ की कलकत्ता कांग्रेसके पास किये हुए प्रस्तावके अनुसार औपनिवेशिक स्वराज-(Dominian Sta-

tus) यानी नेहरू-रिपोर्टको सरकार स्वीकार कर ले, तो भविष्यमें आनेवाली विपत्तियोंसे भारतीयों और अङ्गरेजोंकी रक्षा हो जाय। क्योंकि अब केवल धाँधलेबाजीसे काम नहीं चल सकता। अब भारतवासियोंकी योग्यता किसी भी चीजमें अङ्गरेजोंसे कम नहीं है। महामना पं० मदनमोहन मालवीयने एकबार अपने भाषणमें कहा था कि—"मुझे बहुतसे अङ्गरेज विद्वानोंसे मिलने और घुल-घुलकर बातें करनेका अवसर मिला है। मैंने यह अच्छी तरहसे देख लिया कि अब हम भारतवासी अङ्गरेजोंसे पीछे नहीं हैं। भीतर-ही-भीतर अङ्गरेजलोग भी इस बातको मजेमें समझते हैं।" इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतीयोंमें प्रत्येक विषयकी योग्यता अङ्गरेजोंके समान ही है—बल्कि किसी-किसी विषयमें तो हमलोग बहुत आगे हैं। हाँ, यह बात अवश्य है कि अनेक तरहके बन्धनोंमें जकड़े रहनेके कारण हमारी प्रतिभाका विकास नहीं होने पा रहा है। किन्तु क्या यह बन्धन अब अधिक दिनोंतक रहनेकी आशा हमारे शासक-गण करते हैं? यदि हाँ, तो कहना पड़ेगा कि यह उनकी नादानी है और यह नादानी स्वार्थान्धताके कारण पैदा हुई है—जो कि उनका संहार करके छोड़ेगी। एक बात और भी याद रखनी चाहिए कि एक समय यूरोपमें भी धर्म्म-भेदके कारण भयङ्कर विप्लव और रक्त-पात हो चुका है। इङ्गलैण्डकी महारानी मेरीके राज्यमें बहुतेरे प्रोटेस्टेण्ट-पन्थी क्रिस्तान जीते-जी चितामें जलाये गये थे! पर इसके बाद ज्ञान और सभ्यता-वृद्धिके साथ-साथ पाश्चात्य देशोंमें धर्म्म-विषयक बातोंमें उदारता और सहिष्णुता उत्पन्न हो गयी। कौन कह सकता है कि विलायतके प्रोटेस्टेण्ट कैथोलिक धर्मावलम्बियोंके समान भारतमें भी विभिन्न धर्मावलम्बियोंके बीच झगड़ा होता है? और फिर जो कुछ झगड़ा यहाँ होता है, उसे कौन कराता है, यह बात किसे नहीं मालूम है! एक समय वह था, जब स्वराज्यका

नाम लेनेवाला मनुष्य ही भारत-सरकारकी नजरोंमें अपराधी दीखता था और उसे कठोर दण्ड दिया जाता था। 'वन्देमातरम्' का अर्थ 'बाँधो' मारो लगाया जाता था। किन्तु उस समय भी भारत स्वराज्य पानेके योग्य था, यह बात दावेके साथ कही जा सकती है।

जो लोग सदासे हृदयसे शत्रुता करते आये हैं, जो लोग सदासे हमारी उन्नतिके विरोधी हैं, जो लोग सदासे हमें पदावनत और पद-दलित रखना चाहते हैं, उन्हींके कलकत्ताके "इङ्गलिशमैन" नामक समाचार-पत्र को भी ये बातें स्वीकार करनी पड़ी हैं। गत १९०६ सालकी अन्तिम सच्ची राष्ट्रीय महासभामें श्रद्धेय दादाभाई नौरोजीने जब भारतमें स्वराज्य-प्रतिष्ठा विषयक प्रस्ताव उपस्थित किया था, उस समय "इङ्गलिशमैन" ने लिखा था कि:—

Out of the turmoil of political and social strivings, at present confusing India, some sane ideal must presently emerge. What? That is a question puzzling many thoughtful men in this country. One thing may be asserted with some kind of certainty. The present form of administration cannot endure. It is obsolete in a country, rapidly advancing in education and where the antagonism between caste and caste class is steadily decaying, ** India as a whole has begun to show a definite, consciousness of herself, and one begins to see the beginning of an Indian nationality, as opposed to the racial types that were prominent in the last century. ** On the whole. India is at the present moment not less civilised

than Japan or Persia, both of which countries have a constitutional form of Government.

अर्थात् "भारतमें आजकल राजनीतिक और सामाजिक आन्दोलनका जो गोलमाल देखा जाता है, उसीके भीतरसे शीघ्र ही एक युक्ति-सङ्गत आदर्श प्रकट होता है। वह आदर्श क्या है? वर्तमान समयमें बड़े-बड़े चिन्ताशील लोग इसका विचार कर रहें हैं। पर एक बात तो निश्चित है कि भारतमें वर्तमान राज्यपद्धति और अधिक दिन नहीं टिक सकेगी। इस देशमें शिक्षाका जैसा प्रचार हो रहा है तथा जाति-गत और सम्प्रदाय-भेद जिस प्रकार लोप हो रहे हैं, उससे वर्तमान शासन-प्रणाली इस देशके लिए सर्वथा अनुपयुक्त हो गयी है। * * * * समूचा भारतवर्ष जाग उठा है, तथा भारतवासियोंमें गतशताब्दीके सम्प्रदायोंकी जगह अब राष्ट्रीय भावका उदय देखा जाता है। सारांश यह है कि जिन जापान और फारस राज्योंमें प्रजातन्त्र शासन-प्रणालीकी प्रतिष्ठा हो गयी है, उनसे भारतवर्ष किसी भी हालतमें कम सभ्य नहीं है।"

प्राय: ९६ वर्ष पहले सन् १८३३ ई० में भारतमें इस नव-भावके उत्पन्न होनेकी सम्भावना देखकर शासन-संसार विषयक पाण्डुलिपि (Reform Bill) की आलोचनाके समय लार्ड मेकालेने कहा था,—

We are free, we are civilised, to little purpose, if we grudge to any portion of the human race an equal measure of freedom and civilisation. Are we to keep the people of India ignorant in order that we may keep them submissive? Or do we think that we can give them knowledge without awakening ambition? Or do we mean to awaken amdition and to provite it with legitimate vent? Who

will answer any of these questions in the afirmative ?.........I have no fears. The path of duty is plain before us and it is also the path of wisdom, of national prosperity, of national honour......It may be that the public mind of India may expand under our system till it has out-grown the system, ...they may in some future age demand European institutions. Whether such a day will ever come I know not. But never will I attempt or avert to retard it. Whenever it comes it will be the proudest day in English history. It would indeed be a title to glory all our own.

अर्थात् "यदि हम मनुष्य-समाजके किसी अंशको सभ्यता और स्वतन्त्रताका अपने बराबर अधिकार देनेमें आगा-पीछा करें, तो हमारा सभ्य और स्वतन्त्र होना व्यर्थ है। क्या भारतवासियोंको सदैव गुलाम बनाये रखनेके लिए उन्हें अज्ञानके अँधेरेमें डुबो रखना होगा ? अथवा क्या हम समझते हैं कि हम उन्हें ज्ञान देंगे, पर उनके मनमें उच्चाकांक्षा उत्पन्न नहीं होने देंगे ? अथवा क्या हमारी यह इच्छा है कि उच्चाभिलाषा उत्पन्न होनेपर भी न्यायके साथ उसे पूरा न करेंगे ? ऐसा कौन है जो इन प्रश्नोंमें एकके भी उत्तरमें "हाँ" कह सकता है ? * * * * मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि हमारे कर्त्तव्यकी सीधी राह हमारे सामने पड़ी है। यही राह जातीय ज्ञान, जातीय उन्नति और जातीय सम्मानके लिए खुली है। * * * * हो सकता है कि कुछ दिनोंमें हमारी जारीकी हुई शिक्षा-प्रणालीके फलसे भारतवासियोंके मनका इतना विकास हो जाय कि फिर वे अधिक दिनोंतक हमारी इस शासन-प्रणालीसे प्रसन्न न रह सकें।

* * * * भविष्यमें शायद वे पूर्ण यूरोपियन शासन-प्रणाली जारी कराना चाहेंगे। मैं नहीं जानता, वह दिन भी आवेगा या नहीं। पर मैं ऐसे दिनके आनेमें कभी बाधा नहीं डालूँगा। जिस दिन सचमुच भारतमें ऐसी अवस्था उपस्थित होगी, इङ्गलैण्डके इतिहासमें वही दिन सबसे बढ़कर गौरव-जनक समझा जायगा। वस्तुतः हमलोग ही उस गौरवके पूर्ण अधिकारी होंगे।"

ये ऊँची बातें उदार-हृदय तेजस्वी अङ्गरेजहीके योग्य हैं। भारतवासियोंके नवजीवन-लाभ करनेके बारेमें मेकालेकी वह भविष्यवाणी इतने दिनोंके बाद सफल हुई है। बहुत दिनसे सोये हुए भारतवासी अज्ञान और आलस्यको छोड़कर पाश्चात्य ज्ञान-सूर्य्यके प्रकाशमें कर्त्तव्य-पथपर अग्रसर होनेके लिए अब पूरी तौरसे योग्य हो गये हैं। किन्तु दुःख है कि मेकालेकी बातोंपर यहाँके शासकोंने जरा भी ध्यान नहीं दिया और वे बराबर हमारी जागृतिको अमानुषिक उपायोंसे कुचलते ही आ रहे हैं। ऐसी दशामें भी भारतीय आन्दोलन कितनी तेजीसे आगे बढ़ रहा है, इसे देखकर भी शासकोंकी आँखें नहीं खुल रही हैं। ऐ अँगरेज शासको! यदि मेकालेके कल्पनानुसार तुम्हारा कार्य होता तो, अवश्य ही इङ्गलैण्डके लिए बड़े गौरवकी बात होती। किन्तु तुम ठीक उसको उलटा करते आ रहे हो। इसका परिणाम यही होगा कि भारत तो ललकारकर पूर्ण स्वाधीन होगा—होगा, पर इतिहासमें तुम्हारा अक्षय कलंक अंकित हो जायगा।

अवश्य ही इस कलंकका भय हमारे शासकोंको नहीं है। क्योंकि इन्हीं कलंकोंका सेहरा बाँधकर तो वे भारतमें अपना शासन स्थापित कर सके हैं। भला जिस शासनका शरीर ही कलंकोंसे बना हो, उसे कलंकका क्या भय है! इसीसे तो इङ्गलैण्डके प्रसिद्ध दार्शनिक लार्ड मारलेने भारत-सचिवका पद पानेपर कई बार कहा था कि 'भारतमें चिरकालतक अङ्गरेजोंकी यथेच्छाचार शासन-प्रणाली

ही चलानी होगी और इसके लिए यदि जरूरत हुई, तो वे भारतवासियोंके स्वाधीन भावसे अपने विचार प्रकट करने और सभासमिति करनेके अधिकार छीन लेनेके लिए भी प्रस्तुत हैं !' लार्ड मारलेने अपनी धमकी अक्षरशः सच कर दिखायी थी। हमारे बहुतेरे स्वाभाविक अधिकारोंपर लार्ड मारलेके समयमें गदाघात हुआ था। इसीसे जाना जा सकता है कि इङ्गलैण्डकी साम्राज्यलिप्सा कितनी अधिक बढ़ी हुई है। अब जरा शासकोंकी बुद्धिका एक नमूना और देखिए। भारतवासी इङ्गलैण्डमें जाकर पार्लमेण्टके सदस्य-निर्वाचनमें वोट भी दे सकें और स्वयम् अङ्गरेजोंके प्रतिनिधि बनकर पार्लमेण्टमें आसन ग्रहण कर सकें; पर भारतमें वापस आते ही उनके वे अधिकार गायब हो जायँ ! क्यों ? इसलिए कि वे इसके योग्य नहीं। समझमें नहीं आता कि एक ही व्यक्तिको इङ्गलैण्डमें रहनेपर योग्य और भारतमें आते ही अयोग्य कहनेमें अङ्गरेजोंको क्यों नहीं शरम आती है। किन्तु यह ऐन्द्रजालिक माया समझ ही कौन सकता है ? इससे बढ़कर आश्चर्यदायिनी और अत्याचारमूलक व्यवस्था और क्या हो सकती है ?

असल बात यह है कि प्रजाको जिन अधिकारोंके देनेसे राजपुरुषोंका यथेच्छाचार रोका जा सकता है, ऐसे अधिकार अङ्गरेज हमें सहजमें कभी नहीं देंगे। इसीसे भारत-सन्तानोंकी अयोग्यता प्रभृति तरह-तरहकी कपोल-कल्पित आपत्तियाँ खड़ी की जाती हैं। इन सब कल्पित आपत्तियोंका पुनः-पुनः उत्तर देनेपर भी उसका फल कुछ भी न होते देखकर आजसे बहुत पहले श्रीयुत दादाभाई नौरोजीने एकबार एक विलायती समाचार-पत्रमें लिखा था कि—

It would be better for the Indian people to be governed by their own "corrupt" countrymen than by the Angelic European leeches.

अर्थात् "अपने देशके भ्रष्ट लोगोंसे शासित होना भारतवासियों-के लिए देवतुल्य सच्छील अङ्गरेजोंद्वारा शासित होनेसे कहीं अच्छा है।" इङ्गलैण्डके भूतपूर्व उदारनीतिक प्रधान मन्त्री परलोकगत सर हेनरी कैम्बेल ब्यारमैनकी निम्नलिखित उक्ति ध्यानपूर्वक पढ़नेसे श्रीयुत दादाभाईके कथनकी सारवत्ता मालूम हो जायगी। आपका कथन है,—

To secure good administration was one tning, but good Government could never be a substitute for Government by the people themselves.

इसका भावार्थ यह है कि "वैदेशिक सुशासन चाहे जैसा अच्छा क्यों न हो पर वह देशवासी जनसाधारणके स्वायत्त-शासनकी बराबरी कभी नहीं कर सकता।" इसीसे भारतवासी स्वराज, वा स्वायत्त-शासन या प्रजातन्त्र-शासन-प्रणाली पानेके लिए अकुला उठे हैं। पर इस विषयमें हमारी व्याकुलता जितनी ही बढ़ती जाती है, राजपुरुष-गण भी उतने ही यथेच्छाचार-शासनके भरोसे प्रजा-पुञ्जकी उच्चाकांक्षा दबानेकी चेष्टा करते हैं।

इस अवस्थामें यदि हम घोरतर आन्दोलन और स्वार्थ-त्यागके भरोसे अङ्गरेज-जातिको यह नहीं दिखा सके कि मनुष्यके स्वाभाविक अधिकारोंको प्राप्त किये बिना न तो हम चैन लेंगे और न अङ्गरेजोंको एक मुहूर्त्तके लिए भी विश्राम करने देंगे। यदि विधिसङ्गत उपायोंसे राजकार्य्यको किसी भी प्रकारकी सहायता देनेसे इनकार कर (by passive resistance) अङ्गरेजी शासन-यन्त्रको हम नष्ट न कर डालें, तो अङ्गरेज हमें स्वराज्यके अधिकार क्यों देंगे? माना कि इङ्गलैण्डनिवासियोंमें इतनी कम सहृदयता नहीं है, किन्तु वहाँकी अधिकांश स्वार्थ-लोलुप जनता उन मुट्ठीभर भद्रपुरुषोंकी बात सुनें तब तो! पहले तो बहुत दिनोंतक इस देशकी प्रजाकी सच्ची

अवस्था ही वहाँके लोगोंको नहीं मालूम थी। बाद यहाँके नेताओंने इङ्गलैण्डमें जाकर प्रचार करना शुरू किया। लोकमान्य तिलकने ८ महीनेतक विलायतमें रहकर अपने पांडित्यके बलसे इङ्गलैण्डके बच्चे-बच्चेके हृदयमें भारतकी दुर्दशा एवं अङ्गरेजोंकी स्वेच्छा-चारिताका चित्र अङ्कित कर दिया। फिर तो सरकारी कागज-पत्रसे और अवसर प्राप्त सिविलियनोंके मिथ्या वर्णनसे उनकी जो यह धारणा हो गयी थी कि भारतमें शासन-कार्य्य अति उत्तम रूपसे चलाया जा रहा है, वह बहुत कुछ जाती रही। अवश्य ही बीच-बीचमें भारतवर्षसे मि० गोखले, सुरेन्द्रमोहन बनर्जी, लाला लाजपतराय जैसे सज्जन विलायत जाकर वहाँके अधिवासियोंको भारतवासियोंकी दुर्दशा समझाते रहे हैं, पर इस ओर उनकी विशेष रूपसे कुछ दृष्टि नहीं गयी। वास्तवमें यह काम भी सहज नहीं है। कारण, बहुतसा धन खर्च करके भी यदि हम इस कार्यमें प्रवृत्त हों तो विलायतमें भारत-गवर्नमेण्टका भी पक्ष समर्थन करनेवाले एक दलका आविर्भाव होना असम्भव नहीं है। वास्तवमें यही हुआ भी। इस अवस्थामें दोनों दलोंकी बातें सुन-कर तथा परस्पर विरोधी बातोंका विचारकर सत्यका निर्णय करना विलायतवासी साधारण-प्रजाके लिए दुःसाध्य हो गया। और कहाँ तक कहें, अभीतक विलायतके अधिकांश लोगोंको भ्रममें ही डाल रक्खा गया है। जातीय समितिके स्पष्टाक्षरमें स्वराज माँगनेके बाद एंग्लो-इण्डियनोंके एक दलने और विलायती समाचार-पत्रोंने वहाँके लोगोंको समझाना प्रारम्भ कर दिया कि भारतकी मुसलमान तथा अन्यान्य समर-प्रिय जातियाँ अँगरेजोंकी वर्त्तमान शासन-प्रणालीके पक्षमें हैं—स्वायत्त-शासनको वे घृणाकी दृष्टिसे देखती हैं; और हिन्दू स्वायत्त-शासन माँगते हैं, इसलिए वे ऐसे उत्तेजित हो गये हैं कि शीघ्र ही भारतमें शान्ति भङ्ग होनेकी सम्भावना है। ऐसी दशामें भारतवासियोंकी सच्ची अवस्था और आकांक्षा वक्तृताबाजीके

जोरपर विलायत-वासियोंको समझाना सम्भव नहीं है।" इसीसे प्रसिद्ध दार्शनिक जान स्टुअर्ट मिलने भी कहा है:—

If the good of the governed is the proper business of the Government it is utterly impossible that a people should directly attend to it.

अर्थात् "यदि प्रजाका हित करना ही राज्य-शासनका उद्देश्य हो, तो यह निश्चय-पूर्वक कहा जा सकता है कि कोई भी समूची जाति प्रत्यक्ष यह उद्देश्य-साधनमें तत्पर नहीं हो सकती।"

आपने और भी कहा है,—

It is always under great difficulties and very imperfectly that a country can be governed by foreigners.—Foreigners do not feel with the people.

भावार्थ—"वैदेशिक राज-शक्तिद्वारा किसी देशका शासन-कार्य बिना कष्टके अच्छी तरह नहीं चलाया जा सकता। कारण, विदेशी राजपुरुषगण देशके आदमियोंके मनोभावोंको समझकर उनके साथ सहानुभूति-सम्पन्न नहीं हो सकते।"

इस अवस्थामें हमारे प्रतिकारका उपाय क्या हो सकता है? भारतीय प्रजाकी अवस्थाकी ओर इङ्गलैण्डके जन-समाजका ध्यान आकृष्ट करनेका उपाय क्या है? देशके बुद्धिमान आदमियोंने स्थिर किया है कि विलायती वस्तुका बहिष्कार ही, भारतीय प्रजाकी दुर्दशाकी ओर, विलायतके जन-साधारणकी दृष्टि आकृष्ट करनेका एकमात्र अव्यर्थ और विधि-सङ्गत उपाय है।

कारण, अँगरेज बनियाँ हैं। वाणिज्य-व्यापारमें वे इतने मस्त रहते हैं कि दूसरेके सुख-दुःखका विचार करनेकी उन्हें फुरसत ही नहीं मिलती; व्यवसायमें बिना नुकसान हुए उनकी तेवरी कभी

नहीं उतरती। यदि हमारे बहिष्कारके कारण विलायती वाणिज्यकी हानि हो तो उसका कारण ढूँढ़ निकालनेकी ओर उनकी सहज ही प्रवृत्ति होगी, इसमें सन्देह नहीं। जब अँगरेज जानेंगे कि मुट्ठीभर कर्मचारियोंकी अवैध अधिकार-प्रियताके कारण भारतके करोड़ों अधिवासी असन्तुष्ट हुए हैं, उन्हें बिना खुश किये पाँच करोड़ अङ्गरेजोंके भारतीय वाणिज्यके नष्ट होनेकी सम्भावना है, यहाँतक कि तीस करोड़ प्रजामें असन्तोष फैल जानेके कारण भारतमें बड़ी भारी राजनीतिक विपत्ति भी उपस्थित हो सकती है, तब सहज ही भारतीय शासन-प्रणालीका जड़से संस्कार करनेकी ओर उनकी प्रवृत्ति होगी। यदि उस समय भी शासकगण चेत नहीं करेंगे तो शासन मर मिटेगा, यह निश्चय है। उस समय वे थोड़ेसे कर्मचारियोंकी अनुचित अधिकार-पिपासाका कभी भी समर्थन नहीं करेंगे। प्रजाका असन्तोष राज्यके लिए अशुभकर है, यह समझकर उसे दूर करनेकी चेष्टा करनेमें ही उनकी कुशल होगी। इसलिए विलायती मालका बहिष्कार कर भारतीय दुरवस्थाकी ओर अङ्गरेज-जातिका ध्यान दिलाना इस समय हमारा प्रधान कर्त्तव्य है। इसके सिवाय, इस समय भारतीय समाजमें जो कुछ बची-बचायी शक्ति रह गयी है, पर जो बिखरी अवस्थामें रहनेके कारण रहकर भी नहींसी हो गयी है, उस शक्तिको इकट्ठी और सुनियन्त्रित कर समाजके हितकर कार्यमें उसे लगाना और उसीके द्वारा भारतीय प्रजाकी वैध-शक्तिको बढ़ाना भी इस समय शिक्षित भारतवासी-मात्रका कर्त्तव्य होना चाहिए।

ये बातें समझकर ही यहाँके अँगरेज राजपुरुषोंने स्वदेशी आन्दोलनका दमन करना आरम्भ कर दिया था। वे समझ गये थे कि यह जो स्वदेशी और बहिष्कारका आन्दोलन आजकल चलाया जा रहा है, यह प्रजाके अभियोगोंकी ओर उच्छृङ्खल राजशक्तिका ध्यान दिलानेका एकमात्र रामबाण उपाय है।

यह सुविशाल भारत-साम्राज्य भारत-सन्तानोंकी सहायतासे ही अँगरेजलोग चला रहे हैं। यदि हम इस कार्यमें अँगरेजोंको मदद न दें तो अधिकारियोंके लिए यहाँपर यथेच्छाचार-मूलक शासन-कार्य अच्छी तरह चलाना कभी सम्भव नहीं होगा। प्रजाकी सहायतापर ही शासन-कार्य निर्भर करता है। सरजान सिलीने लिखा है:—

If the feeling of a common nationality began to exit there (in India) only feebly, if without inspiring any active desire to drive out the foreigner, it only created a nation that it was shameful to assist him in maintaining his dominion, from that day almost our Empire would cease to exit ......For we are not realy conquerors in India and we cannot rule her as conquerors if we undertook to do so; it is not necessary to enquire whether we could succeed, for we should assuredly be ruined financially by the more attempt. The Expansion of England PP. 227. 34.

अर्थात् "भारतमें यदि कभी जातीय भावका अति सामान्य रूपमें भी उदय हो जाय, और उसी भावसे प्रेरित होकर यदि भारतवासी वैदेशिक शासनकर्त्ताओंको बाहुबलसे अपने देशसे निकाल बाहर करनेकी चेष्टा न कर सिर्फ साम्राज्य चलानेके काममें उन्हें मदद देना अपने लिए लज्जास्पद कार्य समझें, तो हमारे साम्राज्यका अस्तित्व एक दिनमें ही लोप हो जायगा। कारण, असल बात तो यह है कि हमने भारतका राज्य कभी तलवारके जोरपर नहीं प्राप्त किया है और न विजेताके समान वहाँके लोगोंपर राज्य ही कर सकते हैं। यदि हम विजेताके समान यहाँपर राजदण्ड देना आरम्भ कर

दें, तो उक्त कार्यमें हम सफल-मनोरथ होंगे या नहीं, इसका विचार करनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं है—ऐसा करनेकी चेष्टा करनेसे ही हमारा जितना धन खर्च होगा, उसीसे हमारा सर्वनाश होगा, इतना ही कहना बहुत है।"

आजकल अवनतिकी सीमापर हमलोग आ पहुँचे हैं। मि० डिगवीने हिसाब करके दिखाया है कि सन् १८५० ईस्वीमें भारतवासियोंकी दैनिक आय प्रति आदमी औसत दो आने थी। १८८३ ईस्वीमें वह छः पैसे हो गयी। आजकल तो वह तीन पैसे हो गयी है! अन्नपूर्णा भारतमाताकी सन्तानकी इससे बढ़कर और क्या दुर्दशा हो सकती है? इसलिए अब उदासीनताका समय नहीं है। क्षमताप्रिय राजपुरुषोंकी कुटिलतासे हमलोग जो अपने न्याय अधिकारोंसे वञ्चित हुए हैं, उन्हें फिर पानेके लिए अवसर रहते यदि उपाय न किया जायगा, तो उसके लिए हमें फिर सिर पटक-पटककर पछताना पड़ेगा। मि० डिगवीने दिखाया था कि अँगरेजोंके शोषणसे भारतवासियोंका इतना धन-रक्त निकल गया है कि—

"India is not far from collapse"

अर्थात् "भारतका सर्वनाश होनेमें अब देर नहीं है।"

कहनेका सारांश यह कि प्रकृतिके नियमानुसार भारतमें आन्दोलनके विकाससे स्वतंत्रता देवीकी आगमन-सूचिका आभा धीरे-धीरे झलकने लगी। गवर्नमेण्टने भी जब यह देखा कि अब इस देशकी काङ्ग्रेसमें देशके सच्चे प्रतिनिधियोंकी ही तूती बोलने लगी, तब उसने कांगरेसके कार्योंसे अपना हाथ खींच लिया। पर भारतमाताको गौरवान्वित करनेवाले तथा उनके ललाटके तिलकस्वरूप स्वर्गीय लोकमान्य तिलकने सरकारकी जरा भी परवाह न कर काङ्ग्रेसद्वारा देशमें जागृति पैदा करना शुरू किया। बस यही दुष्ट-दमनका संक्षिप्त इतिहास है।

आयात और निर्यात

किसी भी देशकी समृद्धिका सच्चा पता उस देशके व्यावसायिक संगठनसे ही चल चकता है, अर्थात् जिस देशमें वाणिज्य-व्यवसायकी योग्यता जितनी अधिक होगी, वह देश उतना ही अधिक समृद्ध और सम्पन्न होगा। प्रत्येक देशके वाणिज्य-व्यवसायका निदर्शन एकमात्र आयात और निर्यातसे होता है, अर्थात् किसी भी देशकी व्यावसायिक अवस्थाका पता लगानेके लिए उस देशके आयात और निर्यात (आमद और रफ्तनी, Import and Export) का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

इस सूत्रके आधारपर बहुधा लोग पूछ बैठते हैं कि समृद्ध देशकी पहचान अधिक आयातसे होती है अथवा अधिक निर्यातसे। जिस देशमें बाहरसे माल अधिक आता है, उसे समृद्ध देश कह सकते हैं अथवा जो देश बाहर माल अधिक भेजता है, उसे समृद्ध देश कह सकते हैं। पर वास्तवमें दोमेंसे एक भी देशकी समृद्धिके निदर्शक नहीं है। उदाहरणार्थ इस अभागे भारतको ही ले लीजिये। वर्तमान अवस्थामें यह संसारमें सबसे अधिक माल बाहर भेजता है और सबसे अधिक माल विदेशोंसे मँगाता भी है। फिर भी इसकी दरिद्रता कहावत हो रही है।

तो फिर आयात और निर्यातमें कौनसी बारीकी है, जिसके कारण देशकी वास्तविक समृद्धिकी जाँच हो सकती है? वह है आनेवाली तथा जानेवाली विविध वस्तुओंकी अवस्था। जो देश बाहर तैयार माल अधिक संख्यामें भेजता है पर कच्चा माल बाहरसे अधिक मँगाता है, वह हर तरहसे सुसम्पन्न और समृद्ध देश है। इसके

प्रतिकूल जो देश अपना कच्चा माल विदेशोंमें अधिक भेजता है तथा उसके बदले तैयार माल बाहरसे अधिक मँगाता है और अपनी साधारण आवश्यकताको पूरी करनेके लिए भी घरमें माल तैयार नहीं कर सकता, वह देश सदा हीन रहेगा।

इस कथनके सारकी प्रामाणिकताके लिए हमें कहीं दूर जानेकी आवश्यकता नहीं है। भारतके पूर्वापर व्यावसायिक अवस्थाका दिग्दर्शन तथा उसके आयात और निर्यातकी तुलना ही इसके लिए पर्याप्त प्रमाण होगी।

अङ्गरेजी-राज्यकी छत्र-छायामें आनेके पूर्व भारतका व्यवसाय बहुत उन्नत था। लोहेके व्यापारकी भी यहाँ अच्छी उन्नति थी। घरकी माँग पूरी करके अनेक तरहके कल-पुर्जे विदेशोंमें भेजे जाते थे। माल इतना वारीक और उमदा तैयार होता था कि संसारके प्रायः सभी देशोंमें इसकी ख्याति थी। दिल्लीकी मीनार जो निखालिस लोहोंके खम्भोंका बना है, भारतकी दक्षताका ज्वलन्त उदाहरण है। प्रायः दो हजार वर्षोंसे उसी तरह खड़ा वह संसारकी आँखोंको अपनी ओर खीचता है और सबको चकित करता है। भारतीय खनिज-विभागके उच्च पदाधिकारी मिस्टर बालने लिखा है कि "संसारके किसी भी देशमें इस तरहका सामान (लोहेका खम्भा) तैयार करना कुछ वर्ष पहले असम्भव था और आज भी बहुत कम देशोंमें तैयार हो सकता है। तोपोंकी ढलाई और फौलादकी तलवारें विश्व-विख्यात हैं। इन्हींके प्रलोभनमें पड़कर फारसके व्यापारी यहाँ आते और इन्हें ले जाकर एशिया प्रदेशमें बेंचते थे। किसी समय इङ्गलैण्डमें भी भारतीय लोहेकी अच्छी खपत थी।"

इसीका प्रसाद था कि भारतीय समृद्धिकी ख्याति दिग्दिगन्तमें फैल रही थी और अनेक विदेशियोंके आक्रमणका कारण हुई। भारतका धन छकड़ोंपर लादकर उसे अपने-अपने देशोंको जिस तरह विदे-

शियोंने ढोया है, उस तरहकी ढोआईमें कुबेरका भण्डार भी खाली हो गया होता। पर इसी व्यावसायिक संगठनकी बरकत थी कि इस लूट-खसोटका भारतपर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था। शान्त वायुमण्डल हुआ कि भारतने अपनी अवस्था पुनः सुधारी। यही अवस्था प्रायः मुगल-साम्राज्यके पतनतक दृष्टिगोचर होती रही।

भारतकी समृद्धिकी आलोचना करते हुए स्ट्राबोने लिखा है,—"सोना, चाँदी, हीरा, जवाहर, पन्ना, मोती तथा तरह-तरहके रेशमी कपड़े प्रत्येक घरोंमें देखनेमें आते थे। भारतीय हर तरहके पेशोंमें दक्ष थे। ईसामसीहकी पहली शताब्दीमें रोमनगर भारतके मालका व्यावसायिक केन्द्र था।"

यह तो प्राचीन समयकी बातें हैं। इनकी गाथा यहीं समाप्तकर हम ईस्ट इण्डिया कम्पनीके राजत्वकालमें आते हैं और देखते हैं कि भारतकी व्यावसायिक उन्नति देखकर अङ्गरेजलोग चकित होते हैं।

चतुर इतिहासज्ञ मुरेने लिखा है:—"भारतकी समृद्धिकी ख्याति और उन्नत व्यवसायने ही विदेशियोंको आकृष्ट किया। इसके बारीक कपड़ोंके लिए व्यवसायी तरह-तरहके कष्ट झेलनेके लिए तैयार थे। वेनिस तथा जेनोवा नगरके पतनके बाद पुर्त्तगाल तथा डचवालोंने भारतके व्यवसायको अपने हाथमें लिया। अङ्गरेजलोग कब चूकनेवाले थे, उन्होंने भी ईस्ट इण्डिया कम्पनीकी स्थापना की और भारतके साथ व्यावसायिक सम्बन्ध स्थापित किया। महारानी ऐलिजबेथने जो फर्मान इन्हें दिया था, उसमें स्पष्ट शब्दोंमें लिखा था:—"इस फर्मानद्वारा ईष्ट इण्डिया कम्पनीको भारतके साथ व्यवसाय करनेकी आज्ञा दी जाती है न कि वस्तु-विनिमय की"। क्योंकि उस समय इङ्गलैण्डमें बहुत कारखाने थे।

सर हेनरी काटनने लिखा है कि १७८७ में ढाकेकी मलमल ३० लाखकी विलायत गयी थी। इसी तरह सर रमेशचन्द्र दत्तने लिखा

है कि अनेक तरहके प्रतिबन्धोंके होते हुए भी १८०४ में केवलमात्र कलकत्ता शहरसे प्रायः १४ हजार गाँठ कपड़े संयुक्तराज्य इङ्गलैण्डको भेजे गये थे। इसके बाद ही इस व्यापारमें कमी होने लगी। १८१५ में इसमें फिर एक बार ज्वार आया, पर यह ज्वार क्षणिक था, क्योंकि उसके बाद १८२० में जो भाटा आया उसका रूप स्थायी रह गया।

इस समुन्नत व्यापारको नष्ट करनेके लिए हर तरहकी चेष्टाएँ की गयीं और उनका परिणाम यह हुआ कि भारतका वाणिज्य-व्यवसाय एकदमसे नष्ट हो गया। जो भारत तैयार माल भेजनेमें किसी समय सारे संसारका गुरु हो रहा था, वही भारत अब हर तरहसे पंगु हो गया और अपना तन ढँकनेके लिये भी विदेशोंका मुँह ताकता है।

यहाँपर यह दिखलानेकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती कि भारतका यह व्यावसायिक ह्रास किस तरहसे हुआ। क्योंकि इस पुस्तकके पिछले परिच्छेदोंमें इसका पूर्णतः दिग्दर्शन कराया जा चुका है। यहाँपर केवल हम यह दिखला देना चाहते हैं कि इसका प्रभाव भारतीय व्यवसायपर कैसा पड़ा तथा भारत अब विदेशोंपर किस तरह निर्भर रहने लगा है और उनसे जो कुछ बनी चीजें लेता है, उसके लिए उसे कितना मूल्य देना पड़ता है। इस समयका ब्योरा बतलाने के पहले आजसे कुछ दिन पहलेके ब्योरेका उल्लेख कर देना भी आवश्यक है। अतः सन् १९१४ अर्थात् जर्मन-युद्धके पहलेका विवरण दिया जाता है:—

१—भोजनकी सामग्री	पौण्डमें	रसद तथा तेल	१६४९०८७
भोजनकी सामग्री	१६४४१३३०	मसाला	११५४८७५
मछली	२०८३३०	चीनी	९९७१२५१
फल और तरकारी	७५३५८३	चाय	१५२४०९
अन्न, दाल व आटा	१८५५६०	कहवा आदि	५११६२३
शराब	१२५१६४२	सुरती	५०१९९३

	पौंडमें
२—कच्चा माल तथा तैयार माल	७०३८३८०
कोयला, कोक तथा खास लकड़ी (जलानेकी)	७१०९२०
गोंद, रेजिनतथाबर्फ	१७५७६४
खाल और चमड़ा	१०१०६६
कच्चालोहातथाफौलाद	४१९७५
तेल	२९३४६११
बीज, तेल आदिके	५३४३१
मोम आदि पदार्थ	१५०६३८
सूतके सामान	१२०४५१०
लकड़ी	५१५५९०
फुटकर	११४९८७३
३—एकदमतैयारमाल	९६७६९४४३
वस्त्र	१६६१३८९
अस्त्र-शस्त्र तथा सैनिक सामान	२३६७१३
गाड़ी वाइसिकल, मोटर	१४२२६६७
दवा दारू	७६०५६९९
छूरी, कैंची आदि	४२९११४०
रंग तथा रंगके सामान	१५१०९३३

	पौंडमें
कुर्सी टेबुल केबिनेट आदि	२२४३२३
शीशा तथा मिट्टीके बर्तन	१७२८६६७
तैयार सिझाया चमड़ा व चमड़ेकासामान	२६६६८३
मसीनरी तथा पट्टा	५५०८३९७
धातु, लोहा और फौलाद	१०६३३२४९
अन्य धातु	४१०१०८०१
कागज बोर्ड तथा बिसातखाना	१५२४९८२
रेलके सामान	६६८९७९४
सूत तथा धागे	५०३६००४३
फुटकर (छापनेके सामान, तसवीर, साबुन, इत्र, छड़ी कोड़ा खिलके सामान छाता आदि)	५०५५९६३
४—फुटकर (जीते जानवर आदि तथा डाकसे आये सामान)	१९१६१३५
५—सरकारी माल	५३७३३५०

इस तालिकासे हम देखते हैं कि भारत किसी समय संसारको अपना माल देता था, वही अब अपनी आवश्यकतापूर्तिके लिए प्रायः २९,१६,५७,७६२ पौंडका माल प्रतिवर्ष विदेशोंसे मँगाता है; यह

तालिका १९१४ की है। इसमें प्रायः सभी विदेशी राष्ट्रोंका हिस्सा है। सुविधाके लिए यहीं यह बात भी लिख देना उचित होगा कि प्रत्येक राष्ट्रोंका इसमें कितना हिस्सा है:—

नाम देश	प्रति सैकड़े	नाम देश	प्रति सैकड़े
युनाइटेड किंगडम ...	६२.८	ब्रिटिश साम्राज्यके	
जापान ...	२.१	अन्य भाग ...	७
अमेरिका ...	३.४	जावा ...	६.४
जर्मनीतथाआस्ट्रियाहंगरी	१३.६	अन्य मित्रराष्ट्र ...	४.६

इस रकमको पूरा करनेके लिए भारतको प्रतिवर्ष इतनेका ही कच्चा माल भेजना पड़ता है। भारत जो कुछ माल भेजता है, उसमें गल्ला, तेलहन, रुई, सन, पाट, चाय तथा चमड़ा अधिकांश संख्यामें जाता है।

यहींपर १८३५ से १९१४ तकका प्रत्येक दससाला आमदनी और रफ्तनीकी औसत निकालकर हम संक्षेपमें यह दिखला देना चाहते हैं कि आरम्भमें भारत कितना आत्म-निर्भर था, विदेशोंका कितना कम कर्जदार था, अपनी आवश्यकता वह किस हद्तक आप पूरी कर लेता था तथा अपने उत्पादनको अपने ही घरोंमें रख लेता था, पर धीरे-धीरे उसकी अवस्था किस तरह बिगड़ती गयी और आज उसे कितने करोड़का कच्चा माल बाहर भेजना पड़ता है।

भारतका विदेशी व्यापार

(करोड़ रुपयेमें)

सन्	आमद	रफ्तनी
१८३५ से दस वर्षोंकी औसत	९.७२	१३.७३
१८४५ ,, ,, ,,	१४.०५	१८.७५
१८५५ ,, ,, ,,	३७.४३	३९.४३

सन्	आमद	रफ्तनी
१८६५ से दस वर्षोंकी औसत	४४.७९	५६.६१
१८७५ ,, ,, ,,	५७.५४	७४.४९
१८८५ ,, ,, ,,	८३.२६	१०२.६६
१८९५ ,, ,, ,,	१०५.७०	१३०.९६
१९१०--११ ,, ,,	१७३.४४	२१७.०८
१९१३--१४	२३४.७४	२५६.०९

इधर कई वर्षोंसे दुर्भिक्षने भारतमें अड्डा जमा लिया है। फिर हरसाल भारतकी आमदनीसे रफ्तनी अधिक हो रही है। यह बात पाठकोंको नीचेकी तालिकासे ज्ञात हो जायगी:—

प्राइवेट आयात

(००० पौंडमें) *

	१९२३-२४	१९२४-२५	१९२५-२६	१९२६-२७	१९२७-२८
प्राइवेट आयात	१७०७०९	१८४९६६	१६९६३३	१७३४१६	१८७४२५
सरकारी स्टोर्स	७१७९	५०५४	७३६८	७१९८	८७१९
प्राइवेट कोष...	३९१५१	७४३८३	४१५५२	३०९८६	२६११२
सरकारी ...	७५२	१५	१६३	१६३	११३३५
जोड़ आयात	२१७,७९१	२६४,४२१	२१८,६१६	२११,७६३	२३३,५२१

*सन् १९२७-२८ में १ पौंड = १३ १/३ रुपयेके था। पिछले वर्षोंमें १ पौंड-का मूल्य १५) तथा इससे कुछ न्यूनाधिक भी था और हमेशा घटा-घटा करता था। किन्तु इधर लगभग दो वर्ष हुए जबसे बड़ी व्यवस्थापिका सभाने १३ १/३ यानी १३।-)४ एक पौंडका मूल्य स्थिर किया तबसे यह दर ज्यों-की-त्यों है। देखें यह दशा कबतक रहती है।

प्राइवेट निर्यात

(००० पौंडमें)

	१९२३-२४	१९२४-२५	१९२५-२६	१९२६-२७	१९२७-२८
प्राइवेट निर्यात भारतीयोंनेभेजा	२६१,६२७	२८८,४९९	२८१,१३२	२२६,०७७	२३९,३३५
विदेशीमाल(जो कि मँगाकर फिर वाहर भेजा गया)	९,८०६	१०,१३२	७,८६४	६,००७	७,१५७
सरकारी स्टोर्स	१,०९९	१,५५१	१.११३	१,२०४	१,१७९
प्राइवेट कोष	२,६६६	३,६८५	२,६३८	१,५०३	१,९६९
सरकारी ...	८९	१९१	२४२	१५५	३८३
जोड़ निर्यात्...	२७५,२८७	३०४,०५८	२९२,९८९	२३४,९४६	२५०,०२३
भारतीय रफ्तनी-की अधिकता...	५७.४९६	३०,६३७	७४,३७३	२३,१८३	१६.४३२

अव यह वात सहज ही समझमें आ जायगी, कि आमदसे रफ्तनी सदा अधिक रही है। पर भारतमें एक पैसा भी लौटकर नहीं आया। इसका कारण यह है कि भारतके ऊपर अन्य जो भार हैं, उन्हें भी यह इसी कच्चे मालको भेजकर अदा करता है। वह है विदेशी पूंजी-पतियोंका सूद, पेंशन, भारतसचिवके दफ्तरका खर्च और भारतीय विदेशी कम्पनियोंका सालाना नफा। हरसाल भारतको कितने रुपये सूद, पेंशन, होमचार्ज आदिके लिए देने पड़ते हैं, इसका वर्णन पीछे किया जा चुका है। इन रुपयोंके अतिरिक्त भारतको पारिश्रमिक हानि भी बहुत ज्यादा सहनी पड़ती है। क्योंकि भारत तो अपना वहुश्रमार्जित धान्य भेजता है और उसके वदलेमें कंघी, शीशा, कलपुर्जा आदि ऐसी चीजें पाता है, जिनके बनानेका

परिश्रम, भारत की भेजी हुई चीजोंके पैदा करनेके परिश्रमके सामने नहींके बराबर है। इस तरह भारतको दोहरा घाटा सहना पड़ रहा है। परिश्रम करते हैं भारतीय और मौज उड़ाते हैं विदेशी। हाँ अपने रुपयेमेंसे सालाना कुछ सोना-चाँदी भारत अवश्य मँगा लेता है।

सन् १९१४ के बादसे आजतकके आयातके अंकोंको दिखला देने से जनताको इस बातका पता लग जायगा कि इस समय भारतके व्यापारका रुख किस तरफ है और उससे क्या आशा की जा सकती है:-

(लाख रुपयोंमें)

नाम जिन्स	१९१३-१४	१९१८-१९	१९१९-२०	१९२०-२१
सूतीमाल ...	६२१४	५१६८	५४७२	८८५४
सूत और धागा ...	४१६	८८७	४३६	१३५८
लोहा तथा फौलाद ...	१६०१	१२४५	१६३३	३१३०
मशीन तथा पट्टा ...	८२६	५८६	९५८	२४०९
रेलका सामान ...	१००३	१०४	४५९	१४१३
चीनी	१४९६	१५६१	२२९९	१८५०
मोटरकार, साइकिल आदि	१५३	३९	३९३	१२३४
लोहेके औजार ...	३९५	३२१	४३७	९०८
मिट्टी, तेल आदि ...	४१२	३६१	९१६	४३४
कागज तथा बोर्ड ...	१५९	२७२	२३४	७३०
रेशम कच्चा और तैयार	४३७	४७५	७७१	७२६
दवादारू	२४१	४२२	३७४	५१६
शराब	२२४	३३०	३३७	४९०
रसद	२४७	१९४	२९१	३६१
नमक	८८	२३३	२१०	२२८

इस तरह अभीतक भारतसे प्रायः कच्चा माल ही बाहर जाता है। और जबतक भारत इस तरह इतने अधिक परिमाणमें कच्चा माल विदेशोंको भेजता जायगा, उसकी दशामें किसी तरहका सुधार नहीं हो सकता। इसलिए यदि भारतकी दशा सुधारनी है और उसे समृद्धशाली बनाना है, तो इसके आयात और निर्यातमें परिवर्त्तन या उलटफेर करना नितान्त आवश्यक है। किन्तु यह तभी हो सकता है, जब भारतवासी जी-जानसे इसके लिए तैयार हो जायँ और कोट्याधीस तथा लक्ष्याधीश व्यापारी दलालीका टुकड़ा छोड़कर तरह-तरहके उद्योग-धन्धेमें लग जायँ एवं कच्चा माल न भेजकर पक्का माल भेजें। उदाहरणार्थ रुई न भेजकर उसकी बनी हुई चीजें, कपड़ा सूत आदि भेजें। अब इसके लिए यदि इस बातका विवरण दे दिया जाय कि बाहरसे कौन-कौनसी वस्तुएँ और कितने परिमाणमें यहाँ आती हैं तथा किन-किन चीजोंको कितनी मात्रामें भारत बाहर भेजता है तो इससे लोग अपनी सुविधाके अनुसार प्रत्येक वस्तुकी खपत और बिक्री देखकर देशके काममें भाग लेनेके लिए बहुत कुछ अनुभवी बन सकते हैं। अतः सन् १९२७-२८ के आयात-निर्यात का* पूरा ब्योरा दिया जाता है—

आयात (Imports) सन् १९२७-२८

(हजार रुपयोंमें)

सूती माल	५८३६८०	अन्यान्य धातुएँ	७७१२०
सूत और धागा	६७८६३	चीनी	१४६०५३
कच्चो रुई	६७१६०	कल पुर्जे	१५९३४७
लोहा तथा फौलाद	१८३८४०	खनिज पदार्थ मिट्टीका	
पीतल	२३३७३	तेल आदि	१०५१०७

* यह ब्योरा प्राइवेट व्यवसायका है।

इस्पात	६४०५३	रासायनिक वस्तुएं	२६४६३
मोटरकार साइकिल आदि	७६६३३	रङ्ग इत्यादि	२६४५३
लोहे पीतल आदि की बनी चीजें	५२४२६	रबरकी चीजें	२७०८०
ऊन और ऊनी माल	५३६८०	दवादारू	१६८२६
छूरी, कैंची आदि औजार	४४६५३	कपड़ेकी पोशाकें	१६४४०
डाकद्वारा आयी हुई चीजें	४०२००	फल, तरकारी आदि	२०२००
शराब आदि	३६६६३	साबुन	१६१३३
रेशमी माल	३६३६७	रोगन आदि	१३८८
कच्चा रेशम	१४५३३	नमक	१७४८०
नकली रेशम	५४८८०	मकानादिकी सामग्री	१२८८०
रेलका सामान	४७६६३	बिसाती	१२५४६
मसाला आदि	२५७८६	जवाहरात	१३४४०
कागज	३००६७	अन्नादि	२३०४०
सिगरेट आदि	२६१३३	मिट्टीकी चीजें	८०६६
कांच तथा शीशे	२४८४०	कमल, दवात पेंसिल आदि (stationery)	६१६०
		पेटी	८७३३
		अस्त्र-शस्त्रादि	७०७६
		सरकारी माल	११६२५३

निर्यात (Exports) सन् १६२७-२८

(हजार रुपयोंमें)।

रुई	४७७२००	आटातथा दूसरेअन्न	४२६०००
सूत धागा	६१४५३	चाय	३२४८४०
जूटका सामान	५३६५४७	बीज	२६६६३३
जूट कच्चा	३०७२६३	पक्का चमड़ा	६१६३४

कच्ची धातुएँ	८६७०७	खाद	१२८८००
खाल और चमड़ा	८८०६३	रङ्ग इत्यादि	१६०६७
लाह	६६८८०	अभ्रक	६२८०
ऊन	४३८००	चारा, घास भूसा इत्यादि	१३६८०
ऊनकी बनी चीजें	६७३४	तम्बाकू	१०६१३
रबर	२५६००	नारियलकी रस्सी आदि	११३७३
तेलहन	३१४२३	तेल	७०६३
डाकद्वारा	२८४६७	फल, तरकारी	१०५४७
अफीम	११६०७	सन, पाट इत्यादि	८०८०
सरकारी अफीम	११६१३	वे चीजें जो कि मँगाकर फिर बाहर भेजी गयीं	६५४४०
मोम आदि	२४२४०		
लकड़ी	१६५७३		
मसाला आदि	२४०००		
काफी	२३१८७		

अब हम यह दिखलाना चाहते हैं कि ऊपर जो सन् १९२७-२८ का आयात-निर्यात दिखलाया गया है, उसमें भिन्न-भिन्न राष्ट्रोंका कितना भाग है:—

नाम देश	आयात	निर्यात
	प्रति-सैकड़ा	प्रति-सैकड़ा
यूनाइटेड किंगडम ...	४७·७	२४·७
बेलजियम ...	३·०	३·४
सीलोन ...	०·७	४·८
चीन ...	१·७	१·४
ईजिप्ट ...	०·२	१·५
फ्रांस ...	५·७	४·९
जर्मनी ...	६·१	९·६

नाम देश		आयात	निर्यात
		प्रति-सैकड़ा	प्रति-सैकड़ा
नीदरलैंड	...	१·६	२·४
हांगकांग	...	०·५	०·६
इटाली	...	२·७	४·०
जापान	...	७·१	६·१
जावा और बोर्निया	...	६·४	०·८
मारिशस	...	०·०	०·६
स्टेट्स सेट्लमेंट्स	...	२·४	२·८
स्विटजरलैंड	...	१·०	०·०
यूनाइटेड स्टेट्स	...	८·१	११·३
मेसोपोटामिया	...	०·४	०·५
साउथ अफ्रिका	...	०·२	०·८
केनिया	...	०·८	०·३
कनाडा	...	०·७	०·७
अस्ट्रेलियाऔरन्यूजीलैंड		०·७	२·३
पर्सिया	...	१·१	०·६
स्पेन	...	०·१	१·०
अर्बिया	...	०·२	०·७
स्याम	...	०·१	०·६
अन्य देश	...	४·५	११·२

इस प्रकरणमें संक्षिप्त रीतिसे यह दिखलाया जा चुका कि किस प्रकार हरसाल भारतकी रफ्तनी अधिक रहते हुए भी उसका दिवाला निकला जा रहा है। अब अगले प्रकरणमें पाठकगण यह भलीभाँति समझ जायँगे कि भारतका सत्यानाश करनेके लिए अँगरेज सरकार किस प्रकार अपना एक्सचेंज रूपी ब्रह्मास्त्र चलाती है।

एक्सचेञ्ज

अब भारतके उद्योग-धन्धेको चौपट करनेके लिए न तो कारीगरों के अँगूठे ही कटवाये जाते हैं और न कड़े टैक्स ही लगाये जाते हैं। इसका मूल कारण यह है कि अब भारतमें कोई ऐसी कारीगरी रही नहीं गयी जिसके लिए पहलेकी भाँति जघन्य कार्य करनेकी आवश्यकता सरकारको प्रतीत हो। रही धन-शोषणकी बात, सो एक्सचेञ्जकी ऐसी कुञ्जी उसने अपनी मुट्ठीमें ले रक्खी है कि उसके रहते किसी प्रकारका प्रत्यक्ष अत्याचार करके बदनाम होनेकी उसे कुछ भी आवश्यकता नहीं।

सबलोग जानते हैं कि सन् १८९२ ईसवीमें चाँदीका भाव कम हो जानेसे बट्टेकी दर कम हो गयी थी तथा एक रुपयेका दाम १३ पेन्स हो गया था। इसीके बाद भारत-गवर्नमेण्टने कायदा बनाकर यहाँके रुपयेका दाम १३ पेन्स कर डाला। बट्टेकी यह दर स्थिर करनेसे भारत-गवर्नमेण्टको तो रुपयोंका कुछ सुभीता हो गया, पर इससे भारतके किसान और कारीगरोंको हरसाल २२ करोड़ रुपयोंसे भी कुछ अधिक हानि उठानी पड़ने लगी।

इस नयी व्यवस्थासे भारत-गवर्नमेण्टका वार्षिक पाँच करोड़ रुपया खर्च घट गया था। होमचार्जमें उसे हरसाल जितने रुपये विलायत भेजने पड़ते थे, उससे पाँच करोड़ कम भेजना पड़ने लगा। कारण, पहले इस देशसे एक रुपया भेजनेसे इङ्गलैंडके राजपुरुषगण १३ पेन्सकी रसीद देते थे; अब नवीन व्यवस्थाके बादसे वे एक रुपया पानेपर १६ पेन्सकी रसीद देने लगे। इस प्रकार होम-

चार्जके खर्चसे भारत गवर्नमेण्टके प्रायः पाँच करोड़ रुपये हरसाल बचने लगे।

पर हमारे लिए यह आनन्दकी बात नहीं थी। दूसरी ओर हानि न होकर यदि होमचार्ज कम हो जाता, तो उससे हमें अवश्य ही आनन्द होता। पर होमचार्जके पाँच करोड़ रुपये बचाने जाकर हम २२ करोड़ रुपयोंके चक्करमें पड़ गये। उस समय प्रतिवर्ष इस देशसे प्रायः १४० करोड़ रुपयोंका माल विदेश जाता था। इस मालमें अनाज ही अधिक था; इसलिए निर्गत वाणिज्यके नफे नुकसान से भारतके किसानोंका ही घना सम्बन्ध था। अब देखिए कि बट्टेकी दर १६ पेन्स हो जानेके कारण हमारी कितनी हानि हुई है। मान लीजिये कि पहले जो पदार्थ १३ पेन्स दाममें विदेशी बाजारमें बिकता था, आज भी वह १३ पेन्समें ही बिकता है। पर पहले १३ पेन्सके बदले भारतका किसान यहाँ एक रुपया पाता था और अब केवल १३ आने ही पाता है। इस प्रकार हर रुपयेमें तीन आनेकी हानि होनेके कारण गेहूँ चावल आदि गल्लेके निर्गत वाणिज्यमें हमारे किसानोंकी हरसाल २२ करोड़ रुपयेकी हानि होने लगी।

चाँदीका दाम कम होनेके साथ-साथ बट्टेकी दर यदि बराबर कम रहती तो आज शायद एक रुपयेका मूल्य ११ पेन्स हो जाता। ऐसा होनेसे हम आज १३ पेन्सके मालके लिए प्रायः १९ आने पाते। पक्षान्तरमें १३ पेन्स दामकी बिलायती वस्तुके लिए यहाँ हमें प्रायः १९ आने देने पड़ते। ऐसा होनेसे सस्ती देशी चीजोंकी बिक्री बढ़ जाती। चाँदीका दाम कम होनेके साथ विनिमय अर्थात बट्टेकी दर जितनी ही कम होती जाती, बिलायती चीजों-का दाम उतना ही अधिक होता और देशी कारीगर उनकी प्रति-योगिता करनेका उतना ही अधिक मौका पाते। पर सरकारके

विनिमयकी दर बहुत अधिक ठहरानेके कारण देशी शिल्पी और किसान इस स्वाभाविक सुयोगसे वञ्चित किये गये। इससे उन्हें बहुत नुकसानी उठानी पड़ी। केवल निर्गत वाणिज्यमें (Export-trade) उन्हें वार्षिक २२ करोड़ रुपयोंकी हानि उठानी पड़ती थी। इसके सिवाय विदेशी मालका दाम भारतके बाजारोंमें कम हो जानेके कारण प्रतियोगितामें देशी कारीगरोंकी जो भारी नुकसानी हुई है, उसका हिसाब कौन कर सकता है! रुपयेका इस प्रकार नकली दाम स्थिर करना सच्ची अर्थ नीतिके अनुकूल कभी नहीं कहा जा सकता।

अबतक हमने आयात-निर्यातद्वारा यह बतानेका प्रयत्न किया कि भारतवर्ष किस प्रकार दरिद्र देश बनाया गया; किस प्रकारसे गोरी चमड़ीवालोंने उसका धन लूटा। पर उनके अलावा एक और प्रधान जरिया है जिसके द्वारा भारतके धनका अत्यधिक अपहरण कर उसका शिल्प और वाणिज्य नष्ट किया गया और किया जा रहा है। भारतमें अङ्गरेजी सरकार एक्सचेञ्जकी भयानक दशा कर समय-समयपर उसकी ओट शिकार खेलकर जो धन लूटा करती है, उसे हम व्यावसायिक आलोचनामें देख चुके हैं। सरकारके पास भारतका माल सस्ते मूल्यमें खरीदने और इङ्गलैण्डका माल अच्छी-से-अच्छी कीमतमें बेचनेके लिए एक्सचेञ्ज एक महा अस्त्र है। इस अस्त्रके द्वारा वह बिना रोक-टोकके अरबों रुपये विलायत भेज रही है। पर सन् १९१४ और १५ से यह दशा और भी भयानक हो गयी और तबसे उसने अपने व्यवसायकी रक्षाके लिए भारतीय उद्योग-धन्धोंको और भी पनपने नहीं दिया। महायुद्धके समय भारत-मन्त्रीकी हुण्डियोंके लिए दो करोड़ रुपयेकी स्वीकृति हुई! पर उस वर्ष चार महीनोंमें व्यापारिक दशाके गिर जानेसे हुण्डियोंकी माँग बहुत कम थी। जब राजनीतिक परिस्थिति बदल गयी और युद्धकी भयङ्कर अवस्था हो गयी, तब तो

व्यापार ढीला पड़ गया और भारतसे विदेशकी सारी पूँजी खींची जाने लगी। फिर क्या था? भारत-मन्त्रीकी हुण्डियोंका भाव गिर गया और एक्सचेञ्जमें गड़बड़ी मच गयी। सरकारने खूब चाल खेली। उसने चेम्बरलेन-कमीशनकी हिदायतके अनुसार काम शुरू किया। पहले तो उसने कम-से-कम १००० पौंड एक साथ लेनेवाले व्यक्तियों अथवा कारखानोंको इतने पौंड देना बन्द किया; इसके बाद गैर-सरकारी व्यक्तियों और पुरुषोंको एकदम ही बन्द कर दिया; जिससे इङ्गलैण्डमें भारतीयोंका स्वर्ण-कोष जो अङ्गरेज व्यापारियोंके लिए काममें लाया जाता है—कहीं खाली न हो जाय। इसके बाद उसने लूट करनी शुरू की और ३ पेंसकी दरसे कौंसिल ड्राफ्ट बेंचे, जिनकी तादाद १० लाख पौंड प्रति सप्ताह थी! इसके कुछ दिन बाद जब चैन न पड़ी, तब तारद्वारा पौंडोंके हस्तान्तरित पत्र बेंचे। कहनेका मतलब यह कि एक वर्षमें उसने ७०·७ पौण्डके ड्राफ्ट भारतपर बेंचे। जब हिसाब माँगा गया, तब भारत-सचिवने अपना व्यय इस प्रकार बताया:—(१) होम गवर्नमेण्टसे बार आफिसकी तरफसे भारत-सरकार-द्वारा किये गये व्ययके ८०·७ लाख पौण्ड मिले। (२) ५०·६ लाखके स्थानपर १·६ करोड़ पौण्ड उधार लिये गये। (३) पेपर-करेन्सी-कोषसे १० लाख पौण्ड नकद बाकीमें बदले गये।

सन् १९१५-१६ के बजटमें भारत-सचिवका खर्चा जो निर्धन भारतवर्षसे लिया जाता है, उसके लिये ७०·१ लाख पौंड स्वीकृत किया गया। यद्यपि प्रारम्भमें एक्सचेञ्जकी दशा कमजोर थी और ४०·६ लाख पौण्डके ट्रान्सफर बेंचे गये थे, किन्तु युद्ध हो रहा था, अतः सरकार विजयके लिए भारतीयोंको खूब उत्तेजित कर रही थी। भारतीयोंको युद्धके उपरान्त उनकी मनोकामना पूर्ण करनेका विश्वास देकर उसने कौंसिल ड्राफ्टकी माँग खड़ी कर दी। सरकारने आसानी-

से ३० करोड़ रुपयेके ड्राफ्ट बेंचकर विदेश भेज दिया। इतनी बड़ी रकम देनेके बाद भी २३ करोड़ रुपयेके व्ययके लिए और साथ ही ४॥ करोड़ रुपये गेहूँके लिए जरूरत पड़ी, उसने तुरन्त इस धनको अपने दूसरे अस्त्र पेपर-करेन्सीसे वसूल किया। इसके उपरान्त दूसरे वर्गमें भारत-सचिवके लिए ५०'१ लाख पौंडकी रकम मंजूर हुई। कारण यह था कि भारत-सचिवको होम तथा आस्ट्रेलियन सरकारसे १ करोड़ ८०'६ लाखकी रकम मिलनेवाली थी, किन्तु भारत-सरकारकी बड़ी ही उदार वाणिज्य-नीति होनेके कारण कौन्सिल ड्राफ्ट इतने बेंच डाले गये कि वह रकम भारत आने ही नहीं पायी बल्कि एक करोड़का भारतको कर्जदार बना दिया गया। सरकार हिन्दुस्तानके खजानेमें तो यथेष्ठ रकम रखती नहीं और जब जरूरत हुई, तब ड्राफ्टोंसे धन एकत्र कर लेती है।

यह महायुद्ध भारतीय मुद्राओंको हटाकर नोट प्रचलन करनेका समर्थक हुआ। महायुद्धके प्रारम्भ होनेपर भारतीय व्यापार नष्ट हो गया; मारवाड़ी दलाल रक्षाके लिए बहुत दूर राजपूतानेमें अपने-अपने घर भाग गये। भारत-सरकारका लंदनमें देना वैसा ही बना रहा। उसी समय करेन्सी-कोष और सेविंग बैंकोंपर लोगोंकी धूम हुई। इसी समय सरकारकी कमजोरीके कारण बम्बई, बर्मा और पंजाबमें कई बैंक फेल हो गये थे। सरकारने महायुद्धके प्रत्येक वर्षमें धातु-मुद्राके स्थानपर पेपर करेन्सीका प्रचलन बढ़ाया। जब ऐसी भयावह स्थिति देखी गयी, तब सरकारकी ओरसे जाँचके लिए एक कमेटीकी नियुक्ति हुई। इस कमेटीने एक्सचेञ्ज यानी विलायती हुण्डीके सम्बन्धमें मुख्य सिफारिश यह की कि उसका भाव कम-से-कम दो शिलिंग रहे। इस भावसे उसने चाँदी की दर बढ़ा दी। जैसे-जैसे चाँदीका भाव बढ़ता गया, वैसे-वैसे गवर्नमेण्ट ऐक्सचेञ्जका भाव बढ़ाती गयी। नीचे दी हुई सूची-

से पता लगेगा कि किस प्रकार गवर्नमेण्टने कब-कब एक्सचेञ्जका भाव बढ़ायाः—

तारीख		भाव
३ जनवरी १९१७	...	१ शि० ४॥ पेन्स
२८ अगस्त ,,	...	१ शि० ५ पेन्स
१२ अप्रेल १९१८	...	१ शि० ६ पेन्स
१३ मई १९१९	...	१ शि० ८ पेन्स
१२ अगस्त १९१९	...	१ शि० १० पेन्स
१५ सितम्बर ,,	...	२ शि०
२२ नवम्बर ,,	...	२ शि० २ पेन्स
१२ दिसम्बर ,,	...	२ शि० ४ पेन्स

इस प्रकार सरकार दिन-पर-दिन एक्सचेञ्जके भावको बढ़ाती गयी। एक्सचेञ्जके इस भावसे भारतवर्षकी क्या हानि हुई, यह हम आगे चलकर बतावेंगे। इस कमेटीमें अनेक लोगोंकी गवाहियाँ हुईं। पर सरकारने उसकी उपेक्षाकर एक और ढाई रुपयेका नोट तथा निकलकी अठन्नियाँ आदि जारी ही कर दीं। इससे सरकारको खूब लाभ हुआ। इन सिक्कोंके लाभसे जमा होते हुए विलायतमें—रिजर्व कोषमें नवम्बर १९१९ को ३ करोड़ ७४ लाख ३८ हजार ३१४ पौण्ड जमा थे। इस एक्सचेञ्जकी दुर्नीतिके कारण अन्न आदिका भाव इतना तेज हो गया कि भारतवासी त्राहि-त्राहि करने लगे और उससे आयातकी बड़ी बुरी दशा हुई। महायुद्धके बाद भी सरकारने उन्हीं उपायोंका अवलम्बन किया, जिनसे चीजोंका मूल्य बढ़ता ही गया। एक्सचेञ्जकी इस वृद्धिका भारतवासियोंको यह लाभ बताया गया कि १ शि० ४ पे० के भावमें हिन्दुस्तानसे विलायतको जो ३७॥ करोड़ रुपया अबतक भेजना पड़ता था, उसकी जगह २५ करोड़ ही भेजना पड़ेगा। पर पेपर-करेन्सी-रिजर्वमें जो

हिन्दुस्तानका रुपया पौण्डोंमें जमा है, उसका २ शि० के भावसे फिरसे हिसाब लगानेपर उसमें ३८ करोड़ ४० लाखका नुकसान चुपकेसे कह दिया गया। हिन्दुस्तानियोंको यह यकीन दिलाया गया कि यह नुकसान ऊपरके फ़ायदेसे थोड़े दिनोंमें भर जायगा। कमेटीने होमचार्जमें जो लाभ हुआ उसे तो बहुत समझा, पर नुकसानकी ओर निगाहतक न की। इससे तो यह साबित हुआ कि होमचार्जमें जो १२॥ करोड़का लाभ बताया गया, वह अप्रत्यक्ष रूपसे भारतवासियोंपर ही टैक्सका बोझ हुआ। जितना गवर्नमेण्टको लाभ हुआ, उतना ही रुपया व्यापारियों और किसानोंको अपने मालका कम मिला।

सरकारने एक्सचेञ्जका रेट जब बदल दिया और जब वह भारतके लिए अहितकर समझा गया, तब लन्दनके टाइम्सने इस बातको स्वीकार किया था कि एक्सचेञ्जके इस भावसे विलायत से हिन्दुस्तानको माल भेजनेवाले व्यापारियोंका हर तरहसे फायदा होगा। पाठक, ये शब्द हमारे नहीं हैं, वरन् इङ्गलैण्डके उस पत्रके हैं, जो सरकारका एक मुख-पत्र है। इस एक्सचेञ्जकी नीतिने भारतवासियोंको कभी उठने नहीं दिया और अभी भी इसीके बलपर वे लोग बाज़ी मार ले जाते हैं। जब कुछ पुकार की गयी, तब हिन्दुस्तानियोंके आँसू पोछनेके लिए यह कहा गया कि अजी सारे संसारमें हिन्दुस्तानके कच्चे मालकी माँग बहुत होगी, इसलिए तुम्हें घबड़ाना नहीं चाहिए।

पेपर-करेन्सी-रिजर्वमें युद्धके पहले यह नियम था कि पेपर करेन्सी-रिजर्वमें जो खजाना रहता है, उसमेंसे अधिक-से-अधिक १४ करोड़ रुपयेतकके ब्रिटिश ट्रेजरी बिल्स आदि सब तरहके प्रामेसरी नोट रखे जा सकते हैं। पर शानदार गवर्नमेण्टने ६ नये नये एलान निकालकर १४ करोड़ रुपयेकी तादादको १२० करोड़ रुपये कर

दिये है। सिक्कोंका स्थान कागजी नोटोंने ले लिया। अर्थात् नोटोंका प्रचार तिगुना बढ़ गया। पहले जो नोट जारी किये जाते थे, उनकी जगह करीब ८० फी सदी चाँदी या सोना रिजर्वमें रक्खा जाता था; पर अब करीब आधा ही रहता है। नीचे दी हुई तालिका-से पाठकोंको सब बातें विशेष रूपसे मालूम हो जायँगीः—

पेपर-करेन्सी-रिजर्वका ब्योरा

(रुपयोंकी तादाद लाखोंमें)

समय	कुल नोट जारी हुए	चाँदी	सोना	कागज	मीज़ान	कुल जारी नोटों पर फी सदी सोना चाँदी
३१ मार्च १९१४	६६१२	२०५३	३१५९	१४००	६६१२	७८·९
३१ „ १९१५	६१६३	३२३४	१५२९	१४००	६१६३	७७·३
१९१६	६७७३	२३५७	२४१६	२०००	६७७३	७०·५
१९१७	८६३८	१९२२	१८६७	४८४९	८६३८	४३·९
१९१८	९९७९	१०७९	२७५२	६१४८	९९७९	३८·४
३१ मार्च १९१९	१५३४६	३७३९	१७४९	९८५८	१५६४६	३५·८
३० नवम्बर १९१९	१७९६७	४७४४	३२७०	९९५३	१७९६७	४४·६

इस तालिकासे विदित होगा कि सन् १९१४, १९१५ और १९१६ इन तीन सालोंमें नोटोंका प्रचार प्रायः वही रहा। पर जब महायुद्ध खतम होनेको आया और सरकारको सिक्कोंकी आवश्यकता पड़ी, तब भारतका भला चाहनेवाली सरकारने नोटोंका प्रचार ६७६३ लाख रुपयेसे बढ़ाकर ८६३८ लाख रुपयेका कर दिया। इससे पता लगेगा कि मार्च सन् १९१४ से लेकर मार्च १९१८ तक

चार वर्षोंमें नोटोंकी संख्या बढ़ाकर करीब ड्योढ़ी हो गयी और उसकी रफ्तार जारी ही रही। इस सवा वर्षमें भारत-सरकारने भारतवासियोंको खूब नोट दिये ! मार्च १९१८ तक ९९७९ लाख रुपयोंके नोट जारी हुए थे किन्तु मार्च १९१९ में नोटोंकी रकमकी तादाद १५३४६ लाख हो गयी यानी एक सालमें ड्योढ़ीसे ज्यादा। ३० नवम्बर १९१९ को कुल जारी हुए नोटोंकी रकम १७९६७ लाख थी यानी सवा वर्षमें करीब दूनी हो गयी। ३१ मार्च सन् १९१९ तक २॥ रुपयेके नोट १८४ लाख रुपयेसे अधिकके और १) रुपयेके नोट १०५० लाख रुपयेसे अधिकके जारी हो चुके थे। जहाँ सन् १९१४ में १४ करोड़ रुपयेके प्रामेसरी नोट पेपर-करेन्सी-रिजर्वमें थे, वहीं सन् १९१९ में ९९ करोड़ ५३ लाख रुपयेके प्रामेसरी नोट हो गये। यह हम ऊपर ही कह चुके हैं कि अब गवर्नमेण्टने १२० करोड़ रुपयेके प्रामेसरी नोट रखना निश्चय कर लिया है। और ऊपरके दिये हुए अंकोंसे यह भी पता लगेगा कि मार्च सन् १९१४ में पेपर-करेन्सी रिजर्वमें कुल जारी होनेवाले नोटोंकी तादादपर चाँदी और सोना फी सदी ७८·९ था, मार्च सन् १९१९ में ३५·८ और नवम्बर १९१९ में ४४·६ था। सरकारने ४० फी सदी रोकड़ रिजर्वमें रखना निश्चय किया, जब कि मिस्टर दलालने ८० फी सदी भारतवासियों के हितके लिए रखनेपर जोर दिया। मिस्टर दलालकी यह राय भी बहुत ठीक है कि पेपर-करेन्सीके जो कागज लंदनमें रखे हैं, उन्हें भुनाकर उनका सोना-चाँदी मँगाकर पेपर-करेन्सी-रिजर्वमें जमा करना चाहिए और यह कोष भारतमें रहना चाहिए। उसका उपयोग भी भारतवासियोंको करने देना चाहिए। ऐसे शान्त समयमें नोटोंका इतना प्रचार भारतवासियोंकी सम्पत्तिको लूटना नहीं तो क्या है ? ऐसे उपायोंका अवलम्बन करना किसी भी तरह ठीक नहीं है। मिस्टर दलाल कहते हैं:—

It was a case of simply watering the note issue to its worst fate by issuing notes without any metallic backning. In other words, it was a forced loan from the Indian public free of interest.

अर्थात् "यह तो बुरी-से-बुरी तरह पानीको तरह नोटोंका प्रचार किया गया, यानी नोट तो जारी किये गये पर उसके लिए सोना-चाँदी न रखा गया। दूसरे शब्दोंमें हिन्दुस्तानी लोगोंसे बिना ब्याज जबरन कर्ज लिया गया।" श्रीयुत दलालने आगे वायसरायके तारका उल्लेख किया है, जिसमें उन्होंने लिखा है कि सन् १९१८ में मध्यप्रदेशमें करेन्सी नोटोंका भाव १६) रु०, बंगालमें १५) रु० और बर्मामें १३॥) रु० सैकड़ा बट्टा था। इस बट्टेका भी बड़ा प्रभाव पड़े बिना न रहेगा। नोटोंका यह बट्टा भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें फैला हुआ था। ऐसी दशामें पेपर-करेन्सी-रिजर्वमें इतने अधिक प्रामेसरी नोट और इतनी कम रोकड़ रखनेसे भारतवासियोंको जो चूसा गया, वह पाठक ऊपरके विवरणसे जान सकते हैं। यह हम जानते हैं कि गवर्नमेंट और भारत-मंत्रीने जो इरादा कर लिया है, उससे वे तिल भर भी हटनेवाले नहीं हैं। सरकारको प्रजाकी क्या परवाह है? एक्सचेञ्जके भावसे हिन्दुस्तानी व्यापारियोंकी पूरी-पूरी आफत है। इसमें तो जरा भी सन्देह नहीं कि उससे भारतवर्षकी रफ्तनीके व्यापार और यहाँकी कारीगरीके कामोंको नुकसान हुआ है। एक्स-चेञ्जके भावसे विलायतके व्यापारियोंको उन चीजोंमें जो वे हिन्दु-स्तानको भेजते हैं, पूरा लाभ है और उन्हें अनेक प्रकारकी सुविधाएँ हैं। इस लड़ाईने वैसे तो सभी देशोंमें रुपयेकी कमी कर दी है, पर उसमें भारत बेमौत मरा है। करेन्सी-कमेटीने चीजोंके भावका एक नकशा दिया है। सन् १९१० में जो निर्ख था वह १०० मान लिया गया है। वह तालिका इस प्रकार है:—

चीजोंके निर्खकी तालिका

वर्ष	खाद्य पदार्थोंका फुटकर औसत भाव	विलायतसे भारतमें आयी हुई चीजोंका अधिकतर थोकका औसत भाव	हिन्दुस्तानसे विलायत जानेवाली चीजोंका अधिकतर थोकका औसत भाव
१९१०	१००	१००	१००
११	६६	१००	१०७
१२	११२	१०७	११४
१३	११२	१०७	१२१
१४	१३२	१०५	१२६
१५	१३०	१३४	१२२
१६	१२०	२१०	१२८
१७	१२०	२४०	१३४
१८	१६१	२६५	१५७

इससे यह पता लगेगा कि भारतमें खाद्य पदार्थोंका भाव सन् १९१४ में १३२ था और १९१८ में १६१ हो गया। इस प्रकार विलायतसे आयी हुई चीजोंका भाव सन् १९१४ में १०५ और १९१८ में २६५ था, और यहाँसे विलायत जानेवाली चीजोंका भाव १९१४ में १२६ और १९१८ में २५७ था। इससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि विलायतसे आनेवाले मालमें जान-बूझकर बेहद तेजी की गयी। यदि एक्सचेञ्जका भाव सरकार वही रखती तो विलायतसे हिन्दुस्तानमें माल आना कठिन ही नहीं, एक प्रकारसे असम्भव हो जाता। इसी एक्सचेञ्जके भावकी सुईको घुमाकर सरकार गोरे व्यापारी और कारखानोंके लिए हिन्दुस्तानका धन विदेशमें भेजती है। एक्सचेञ्जके इस भावसे विलायतवालोंकी तिजारतको लाभ हुआ और भारतवासियोंको बातोंमें

फुसलाकर उनके आँसू पोंछे गये। एक्सचेञ्जका भाव सरकार किस प्रकार बदलती है और उससे हमारे देशको नुकसान होता है, इसे हमारे पाठक स्पष्ट रूपसे समझ लें:—

विलायतसे एक तरहका कपड़ा आता है। उसी तरहका कपड़ा हिन्दुस्तानका बना ले लीजिए। मान लीजिए पुराने एक्सचेञ्जके भावसे विलायती कपड़ेका भाव २) और हिन्दुस्तानी कपड़ेका भाव १॥) था। जब ठीक वैसा ही माल १॥) में मिलेगा तो २) में कौन लेगा। पर एक्सचेञ्जकी कल जरा इधरसे उधर घुमा देनेसे विलायतवाले उस कपड़ेको १) में बेंच सकते हैं और नुकसानकी जगह फायदा उठा सकते हैं। देशी व्यापारियों और कारीगरोंको अपने मालके दाम कम तो मिलेंगे ही, पर विलायतमें जानेवाली रुई, जूट, आदि चीजोंका भाव बिलकुल ही गिर जायगा और हमारा माल बाहर कौड़ीके मोल बिकेगा। इस उदाहरणसे पाठक समझ गये होंगे कि इसी एक्सचेञ्जकी नीतिसे हमारे मालकी यहाँ भी मिट्टी खराब और वहाँ भी खराब। भारतकी इस शोचनीय दशामें आवश्यक पदार्थोंका भाव जितना कम रहे उतना ही अच्छा। पर यदि भारतवर्ष आजतक भी इस प्रतिद्वन्दिताके जमानेमें इस कुटिलता-पूर्ण यूरोपीय सभ्यताके धोखेमें आकर इस नीतिको आगे भी धर्म-पूर्ण समझता रहेगा, तो यही कहना पड़ेगा कि व्यापारिक दृष्टिसे भारतवर्षका शीघ्र ही अधःपतन होनेवाला है और साथमें वहाँका रहा-सहा धन भी ढोकर विलायत चला जायगा। करेन्सी कमेटीने एक्सचेञ्जका भाव इस दृष्टिसे विचारकर निश्चित किया है कि हिन्दुस्तानमें बराबर चाँदीके सिक्केका ही व्यवहार रखा जाय और कभी जरूरत पड़े तो थोड़ा-बहुत सोनेके सिक्केसे काम लिया जाय। भारतके लिए तो सरकारने सोनेकी जरूरत समझी नहीं और जो जरूरत बतायी गयी, वह विदेशोंसे लेन-देनके लिए। क्योंकि विदेशोंके साथ लेन-देन करने-

के लिए सोनेके सिक्कोंकी ही जरूरत पड़ती है। सरकार भारतीयोंके पास सोना रहने देना हानिकारक समझती है, पर वह सरकारी खजानोंमें और अङ्गरेजोंके पास अवश्य रहना चाहिए। हरशल कमेटीने विदेशी व्यापारियोंके लाभार्थ नाममात्रके सोनेके सिक्के भारतमें रखना उचित समझा। जो नयी करेन्सी कमेटी बैठी, तो उसने भी भारतीय उद्योग और व्यवसायको नष्ट करना अपना इष्ट-साधन समझ, एक्सचेञ्जका भाव बढ़ाना उचित समझा। तबसे आजतक उसने एक्सचेञ्जके भावको ऐसी अनिश्चितता प्रदान की है कि एक्सचेञ्जके सारे इतिहासमें वैसी कभी नहीं हुई। पहले सोनेकी गिन्नी और पौण्डके नोटका भाव बराबर था, इसलिए एक्सचेञ्जका भाव जो १६ पेंस था, वह नोटोंमें ही था, पर यह दो शिलिंगका नया भाव नोटोंमें नहीं बल्कि सोनामें किया गया। इस नये नोट और गिन्नीमें फर्क रखकर बड़ी चाल चली गयी। यह विदेशोंकी तिजारतके लाभके लिए किया गया। क्योंकि भारतमें तो कागजी घोड़े दौड़ते हैं और विदेशोंका देना सोनेमें होता है। अमेरिकामें सोनेका लेन-देन अधिक है और भारतका जोड़ा उसके साथ मिला दिया गया है। सबसे अधिक धन भारतसे होम-चार्जेंजमें वसूल किया जाता है। होमचार्जेंज रुपयोंकी वह तादाद है जो भारत-सरकार प्रतिवर्ष इङ्गलैंडको देती है। भारत-सचिवके दफ्तर आदिका व्यय, भारतीय सरकारके फौजी या सिविल कर्म्मचारियोंका वेतन और पेन्शन आदि कुल मिलाकर ३७॥ करोड़ रुपये इङ्गलैण्ड भेजने पड़ते हैं। इसीका रुपया विलायती हुण्डियों—कौन्सिल बिल या ड्राफ्टके द्वारा जिन्हें भारत-सरकार बेचती है—इङ्गलैण्ड पहुँचता है। इसके बाद रिवर्स कौन्सिल एक दूसरा ब्रह्मास्त्र है, जिसे भारत-सरकार हिन्दुस्तानके व्यापारियोंको भारत-मन्त्रीपर बेचती है, और इससे भारतके पावनेकी जो हालत होती है, उसका पाठक सहजमें अन्दाज कर सकते हैं।

इस रिवर्स कौन्सिलने भारतकी स्थिति बिलकुल भयावह कर दी और बड़े घोर आन्दोलनपर बेंचना बन्द किया गया। किन्तु अब फिर जारी कर दिये गये हैं। एक्सचेञ्जको स्थिर रखनेके लिए भारत-सरकारका उद्देश्य क्या सफल हो गया? हम पूछते हैं कि जनताके विरोध करते रहनेपर भी भारत-सरकारने अबतक उन्हें बेंचकर भारतीयोंको कौनसा फायदा कराया और एकबार बन्दकर फिर क्यों जारी किये गये। रिवर्स कौन्सिलका आयात-निर्यातसे ही नहीं वरन् भारतकी आर्थिक और मुद्रावस्थासे भी पूर्ण सम्बन्ध है। रिवर्स कौन्सिल भारतके लिए सर्वथा अहितकर है। इसके बेंचनेसे भारतको जो हानि हुई और जो हो रही है, वह भारतीयोंके दुर्भाग्य और गुलामीका परिचायक है। कौन्सिल बिलके विवेचनके पूर्व दो-एक बातें इस सम्बन्धमें और कहनी हैं। एक तो यह कि विदेशियोंके लिए सुविधाके अनुसार भिन्न-भिन्न नगरोंमें भाव स्थिर नहीं रखा गया, यहाँतक कि बम्बईमें भी भाव स्थिर नहीं है। बम्बईमें जब एक्सचेञ्ज १८ शि०६, ९, १६ पेंस था, तब मद्रासमें १'६—पेंस था। स्थान-स्थानपर भारतीयोंको लूटनेके लिए चाल चली गयी है। इसके बाद दस रुपयेकी गिन्नीका भाव स्थिर किया गया। भाव नियत कर सब गिन्नियाँ बाजारसे खींच ली गयीं। बाजारमें गिन्नियोंका अभाव हो गया और जो गिन्नी १०) रुपये की निकाली गयी, उसका बाजार-भाव दस रुपया कभी नहीं रहा। पर सरकारके लिए वही दर रही। दस रुपयेकी गिन्नी करनेका अभिप्राय ही हिन्दुस्तानियोंको नुकसान पहुँचाना है। पाठकोंके सुभीतेके लिए दस रुपयेकी गिन्नीसे व्यापारपर क्या असर पड़ता है, उसे बतलानेका हम प्रयत्न करते हैं:—

दस रुपयेकी गिन्नीसे लाभ उठानेवाला दल—१ अङ्गरेज नौकर, २ अङ्गरेज पूँजीपति और ३ इङ्गलैण्डके कारखानेवाले।

१ अङ्गरेज नौकर—दस रुपयेकी गिन्नी करनेसे वायसरायसे

लेकर छोटे-से-छोटे अङ्गरेजका वेतन एक्सचेञ्जकी दरके कारण डयोढ़ा हो गया।

२ अङ्गरेज पूँजीपति—यही हाल व्यापारियोंका है। लड़ाईके समय जो उन्होंने धन कमाया, उस धनको इङ्गलैण्ड भेजनेमें आसानी हो गयी। इस गिन्नीसे उनकी आमदनी भी डयोढ़ी हो गयी। यदि वे अपना धन इङ्गलैंडकी कम्पनियोंमें लगावें, तो उन्हें उनमें ५० प्रति सैकड़ा अधिक धन मिलेगा।

३ इङ्गलैंडके कारखानेवाले—इङ्गलैंडके मैंचेष्टर, पैस्ले तथा अन्य व्यावसायिक केन्द्रोंका लाभ हानिमें है। क्योंकि उनका माल अनायास भारतके अन्दर सस्ता बिकेगा। वे अब १५ रुपयेकी जगह २० रुपये कमाते हैं।

हानि उठानेवाला दल—खेतीका काम करनेवाले कृषकलोग, कच्चा माल भेजनेवाले भारतीय व्यापारी, कारखानोंके मालिक तथा मेहनती मजदूर लोग और नयी मिलोंके खोलनेवाले।

ऐसी दशामें साधारण-से-साधारण व्यक्ति विचार सकता है कि भारतीय कल-कारखाना और स्वदेशी उद्योग उनका सामना किस प्रकार कर सकता है। क्योंकि विदेशियोंको अपनी चीजोंको सस्ती करनेका बहुत ही सुलभ साधन है। इसके अतिरिक्त खेतीका काम करनेवाले कृषकलोग, कच्चा माल भेजनेवाले विदेशी व्यापारी, कारखानेके मालिक तथा मेहनती मजदूरलोग बेतरह पिसे जा रहे हैं। इस महँगीने उनकी जो दशा कर रखी है—उसे वे ही जानते हैं, जिन्होंने एक वार उनकी करुणा-जनक स्थितिपर दृष्टिपात किया है। इस प्रकार एक्सचेञ्जकी स्थिति अनिश्चित-सी रक्खी गयी। इधर सन् १९२७-२८ से एसेम्बलीने पौंडका १३।-)४ रुपया स्थायी भाव कर दिया है, पर ऐसा स्थायित्व तो न जानें कितनी वार दिया गया है। अतः इसका विश्वास ही क्या। सरकारने कभी एक्सचेञ्जकी दर भारतीयों-

के लाभकी दृष्टिसे नहीं सुधारा। अधिकारियोंका कथन है कि उन्होंने ५ करोड़के रिजर्व्स कौंसिल बेंचकर एक्सचेञ्ज स्थिर करनेका प्रयत्न किया, किन्तु उन्हें निराश होना पड़ा। ये ५ करोड़ हिन्दुस्तानने ७५ करोड़ (?) में लिये थे ! खूब ! इस प्रकार गरीब भारतका धन पानीकी तरह वहाया गया। एक्सचेञ्जकी बढ़तीसे भारतका न कभी हित हुआ न होगा। होमचार्जेंजसे भी एक पाईकी बचत होनेकी आशा नहीं है। इस सम्बन्धमें श्रीयुक्त गिफिनकी सम्मति दे देना हम आवश्यक समझते हैं। उन्होंने कहा था:—"जबतक भारतीय जनतासे सम्बन्ध है, तबतक उसका द्रव्य चाहे कुछ भी हो लन्दनमें देनेके लिए सोना उतना ही है। सोनेके ऋणके सम्बन्धमें, जैसा कि भारतको देना पड़ता है, क्या भारतकी अथवा उसके समान देशकी अवस्थामें उस देशके प्रति सम्बन्धमें कुछ अन्तर पड़ जाता है, जहाँ सोनेका सिक्का प्रचलित है ? विदेशी ग्राहक एक्सचेञ्जकी इस बढ़-तीपर भारतीय कृषि और व्यापारकी उन्नतिमें बड़ी बाधा पड़ती है। श्रीयुक्त रालीने भी हमारे इस कथनको पुष्टकर स्पष्ट रूपसे कहा है कि—"यह मेरा विचार है और उसे कोई बदल नहीं सकता कि एक्स-चेञ्जकी ऊँची दर भारतीय कृषि और व्यापारका अवरोध करनेवाली है।" यह बात हमारी गवर्नमेण्टको भी मालूम थी। उसने १८९७ में एक गुप्त पत्रमें भारत-मंत्रीको लिखा था,—

"भारतके सच्चे हितके खयालसे यह आवश्यक है कि एक्स-चेञ्जको स्थिर करनेके लिए १६ पेंस रुपयेकी कीमत होनी चाहिए। यदि किसी प्रकार भी रुपयेकी दर इससे ऊँची हो जायगी, तो इससे विशेष भयकी सम्भावना है।"

हम सभी विषयोंपर आलोचनात्मक दृष्टिसे विचार कर चुके हैं और उससे यह सिद्ध हो चुका है कि एक्सचेञ्जकी ऊँची दरने भार-तका सारा धन ढोकर इङ्गलैंडमें भर दिया। भारतवर्षको बैंक, जहाज

और एक्सचेञ्जकी ऊँची दरने साहूकारके स्थानपर एक ऋणी देश बना रखा है, जबकि उसका निर्यात प्रतिवर्ष आयातसे अधिक होता है। जहाँतक भारतका अन्तर्राष्ट्रीय ऋणीका सम्बन्ध है, तहाँतक भारतका कुछ-न-कुछ नगद रूपमें लेना ही बाकी रह जाता है, देना नहीं; और वह भी होमचार्ज निकाल देनेके बाद।

आयात और होमचार्जसे निर्यातकी अधिकता प्रकट करनेवाली सूची इस प्रकार है।

(सहस्र पौण्डके रूपमें)

वर्ष	आयात	निर्यात	अधिकता	होमचार्ज
१८९९-१९००	५०२००	७२४६३	२२२६३	१६१२९
१९००-०१	५३९२९	७१८१२	१७८८३	१६९८२
१९०१-०२	५९१२७	८३२६३	२४०७६	१६८०७
१९०२-०३	५७२१२	८६२६४	२९०५२	१७६६७
१९०३-०४	६१७२८	१०२३४४	३४६१६	१७३९९
१९०४-०५	६९६०८	१०५१४८	३५५४०	१८८२७
१९०५-०६	७४७४२	१०७८९०	३३१४८	१७६६६
१९०६-०७	७८१६१	११८०१९	३९८५८	१८३३३
१९०७-०८	९१०२५	११८३२३	२७२९८	१७७६८
१९०८-०९	८५८५२	१०२०९५	१६२४३	१८३२३
१९०९-१०	८१७६५	१२५२७५	४३४४०	१८४४१
१९१०-११	८९१३३	१३९९०४	५०८६१	१८६०५
१९११-१२	८६०३७	१५१९९३	५५९५६	१८८६५
१९१२-१३	१११०८६	१६४१४६	५३०६०	१९३०२
१९१३-१४	१२७५४०	१६६००५	३८४६५	१९४५५
१९१४-१५	९६६२२१	१२१४५०	२४८२९	९५२५
१९१५-१६	९१७००	१३३०००	४२३००	१९४०३

सूचीके अंकोंसे विदित होगा कि केवल १९०८-०९ में बाकीकी रकम भारतके प्रतिकूल थी। अब हम भारतकी रोकड़बाकीकी सूची दिखलाएँगे, जिससे रोकड़ बाकीपर अच्छा प्रकाश पड़ता है:—

वर्ष	रोकड़ बाकी भारतमें	रोकड़ बाकी इंगलैंडमें	बढ़ती या घटती
१८९९-१९००	८४२६	३३३१	२७७४
१९००-०१	१०५९९	४०९२	१६००
१९०१-०२	११८८०	६६९३	४९५८
१९०२-०३	१२०८२	५७६८	३०६८
१९०३-०४	११८७०	७२८५	२९९७
१९०४-०५	१०७५०	१०२६३	३४५६
१९०५-०६	११७८१	८४३७	२९०२
१९०६-०७	१०३२८	५६०७	१५८९
१९०७-०८	१२८२२	५७३८	३०६
१९०८-०९	१०२३६	८४५४	३७३८
१९०९-१०	१२२९५	१५८१०	६०७
१९१०-११	१३५६७	१८१७४	३९३६
१९११-१२	१२२८०	१९४६४	३९४०
१९१२-१३	१९५४३	११४१९	३३६१
१९१३-१४	१५६०८	१२४७७	८८७
१९१४-१५	१४७१५	९१६३	१९२९
१९१५-१६	१२०१५	१२८२४	२६४४

सन् १९०३ से सरकारकी यह नीति रही है कि यह अपना अतिरिक्त द्रव्य इङ्गलैंड भेज देती है और वहाँ सोनेके रूपमें रखती है। और यह इस धोखेकी टट्टीमें किया गया कि एक्सचेञ्जकी गति स्थिर रह सके। यह व्यर्थका बोझा भारतवासियोंपर डाला

गया। अपने साधनोंका दुरुपयोग किया गया। आजकल भारत-सरकारकी जो दिवालिया हालत हो रही है और जो ऋण-पर-ऋण लेती जा रही है, उसका सम्पूर्ण वर्णन पाठक आय और व्ययमें पढ़ चुके। पर एक्सचेञ्जकी समस्त पद्धति जिस प्रकार काम कर रही है वह कौंसिल बिल ही है। इनसे भारतकी अतिरिक्त आमदनीको लंदनमें सोनेके रूपमें परिवर्तित कर दी गयी है, साथ ही वहाँसे भारतमें सोना भी नहीं आने दिया जाता। १९१३ के कमीशनने इन बातोंको स्वीकार करते हुए इन बिलोंको अनावश्यक बतलाया है और उनके विक्रय परिमाणको परिमित करनेका निश्चय किया है; पर इस अधिक बेचे जानेका कारण विदेशी व्यापारका बाहुल्य है। विदेशी हुण्डियोंके विषयमें परिमाण तथा होमचार्जके परिमाणकी सूची पृष्ठ २४५ में देखिये।

अनिश्चित परिमाणमें कौंसिल बिल बचनेके ही कारण भारतमें सोना आनेमें रुकावट होती है। सरकार मालगुजारीके प्रत्येक वर्षके प्रारम्भमें यह जानती है कि उसे इतना धन होमचार्जके लिये इङ्गलैंड भेजना है। क्योंकि अङ्गरेजी व्यापारी और अपने खर्चका अन्दाज वह पहलेसे लगा लेती है। भारतके लूटनेका सबसे बड़ा साधन सरकारके पास है ही। मिस्टर मांटगोमरी मार्टिन इसी होमचार्जपर लिखते हैं कि भारतवर्षसे प्रतिवर्ष ३००००००० पौंड धन जो होमचार्जके लिये विलायत भेजा जाता है, उसके १२ पौंड प्रतिवर्ष सैकड़ेके चक्रवृद्धि व्याजसे तीसरे वर्षमें कितने पौंड होते हैं। यदि इङ्गलैण्डसे इस प्रकार धनका प्रवाह निरन्तर जारी रहे, तो वह भी शीघ्र ही दरिद्र हो जाये। ऐसी दशामें भारतवर्षपर इसका कितना बुरा प्रभाव पड़ेगा, जहाँके मजदूर दो आना और चार आना रोज पाते हैं?

अब हमें पेपर-करेन्सीपर दृष्टिपात करना आवश्यक प्रतीत होता

पृष्ठ २४४ के होमचार्जके परिमाणकी सूची

वर्ष	००० घटाकर विदेशी हुण्डियोंका विक्रय कौन्सिल बिल	होमचार्ज	फी रुपया देनीके हिसाब से औसत दर
	पौण्ड	पौण्ड	पौण्ड
१८९९-१९००	१९०६९	१६१८९	१६·०६०
१९००-०१	१३३००	१६९२२	१५·९७२
१९०१-०२	१८५३९	१६८७७	१५·९८७
१९०२-०३	१८४१९	१७६६७	१६·००२
१९०३-०४	२३८५९	१७३९९	१६·०४९
१९०४-०५	२४४२५	१८८२७	१६·०४५
१९०५-०६	१५६६३	१७६६६	१६·०४२
१९०६-०७	३३४३२	१८३३३	१६·०८४
१९०७-०८	१५३०७	१७७६८	१६·०२९
१९०८-०९	१३९१५	१८३२३	१५·९६४
१९०९-१०	२७४१६	१८४११	१६·०४१
१९१०-११	२६४६३	१८००३	१६·०६०
१९११-१२	२७०५८	१८३३३	१६·०८३
१९१२-१३	२५७५९	१८६८६	१६·०५८
१९१३-१४	३१२००	१९४५५	१६·०७०
१९१४-१५	७७४८	१९५२५	१६·००४

है। गदरके बाद भारत-सरकारकी आर्थिक अवस्थाके निरीक्षण और सुधारके लिये जेम्स विलसन स्पेशल फाइनेंन्स मेम्बर नियुक्त किये गये। आपका काम नोटोंका प्रचलन और उसकी व्यापकताको बढ़ाना था। उन्होंने पहले-पहल कानपुर, लाहोर, करांची और

कालीकटमें इसका प्रचार किया। गदरके वाद सरकारकी स्थिति भयपूर्ण थी। वर्षके भिन्न-भिन्न अवसरोंपर हिन्दुस्तानके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें नकद रुपयोंकी माँग भी भिन्न-भिन्न थी। पर सरकारने अपनी कूटनीतिसे काम लिया और नोटोंकी उपयोगितका प्रलोभन देकर प्रचार बढ़ाया। पहले-पहल १०), २०), ५०), १००), ५००), १०००) और १००००) के नोट चलाये गये थे। लोगोंकी दरिद्रता और उनके साधारण लेन-देनको देखते हुए नोटका प्रचार भारतके लिए अहितकर हुआ। उसकी सारी सम्पत्ति छीन ली गयी। यदि वह संरक्षित कोष भारतमें होता और भारतीय व्यापारियोंके काममें आता, तो भारतीयोंके लिए एक संतोषकी बात थी। इसके बाद पाँच रुपये, ढाई रुपये और एक रुपयेके नोट चलाये गये; और ये नोट सर्वत्र चालू सिक्के बना दिये गये। इन नोटोंके लिए विलायतमें करोड़ रुपया संरक्षित कोष नोटमें रखा गया और जैसे-जैसे नोट बढ़ते गये, वैसे-वैसे यह धन बढ़ता गया! अन्तमें सन् १८९० के कानूनके अनुसार ८ करोड़ तक रकम बढ़ा दी गयी। किन्तु सन् १९०५ से चाल चली गयी और सिक्कोंके स्थानपर एक्सचेंकर बांड और कौंसिल बिल रखे जाने लगे। अब सरकारको नोट निकालनेमें खूब सुविधा हो गयी। महायुद्धके कुछ पहले यह रकम १४ करोड़ हो गयी। सन् १९०५ के ऐक्टके अनुसार संरक्षित कोषमें जो धातुके सिक्के रखे जाने लगे, उसमें चाँदीके हिन्दुस्तानमें और सोनेके विलायतमें। इसके अनुसार लंदनमें एक पेपर-करेन्सी चेस्ट (सन्दूक) रखी गयी, जिसमें ६०००००० पौंड मूल्यका सोना निर्धन भारतसे वहाँ रखनेके लिये भेजा गया। भारत-सचिवकी ओरसे द्रव्य अवशेषसे और १०४५००० पौंड ट्रान्सफर कर दिये गये। इस सोनेका परिमाण क्रमशः बढ़ने लगा और महायुद्धके एक वर्ष पूर्व ३१ मार्च सन् १९१३ में कुल कोष द्रव्य इस प्रकार विभक्त था:—

	करोड़ रुपयेमें—
भारतमें चाँदी ...	१६.४५
सोना ...	२६.२७
लन्दनमें ...	१.५
हुण्डियाँ ...	१४.२०
	६८०.६७ रुपये

यहाँ पर निम्नलिखित आँकड़ोंका देना भी आवश्यक है:—
पेपर-करेन्सी-रिजर्व (३० अप्रेल १९२६)—

	करोड़ रुपयेमें
चाँदीके सिक्के ...	७७.०
चाँदी ...	७.७
सोनेके सिक्के और सोना	२२.३
कागजी रुपये ...	५७.१
हुण्डियाँ ...	२१.०
जोड़	१८५.१

कागजी सिक्कोंको चलते हुए ५० वर्षसे अधिक हो गये और सन् १८६२ में प्रचलित नोटोंका कुल द्रव्य परिमाण ३६६ लाख रुपये था। किन्तु ३० वर्ष बाद वह २७१० लाख रुपयेका हो गया। उसके पश्चात उन्नति इस प्रकार हुई:—

करोड़ रुपयोंमें प्रचलनका औसत

वर्ष	Gross	Net	Active
१८९२-९३	२७.१०	२३.३३	१९.५३
१८९३-९४	२८.२९	२०.८३	१७.८५
१८९९-१९००	२७.९६	२३.६७	२१.२७
१९००-०१	२८.८८	२४.७३	२२.०५
१९०२-०३	३३.७४	२७.३५	२३.४६

वर्ष	Gross	Net	Active
१९०४-०५	३६.२०	३२.७६	२८.११
१९०६-०७	४५.१४	३२.४६	३३.०१३
१९०८-०९	४४.५२	३९.०२	३३.१०
१९०९-१०	४९.६६	४५.३५	३०.२१
१९१०-११	५४.३५	४६.४८	३८.७५
१९११-१२	५७.३७	४९.४९	४१.८९
१९१२-१३	६५.६२	५४.९२	४५.३९
१९१३-१४	६५.५५	५५.६२	४६.६३
१९१४-१५	६४.०४	५९.२८	४५.४३
१९१५-१६	६४.१०	६०.३९	४८.८

किन्तु सन् १९२६ में उसका परिमाण कितना रहा, यह जाननेके लिए पाठकगण पृष्ठ २४९ की तालिकामें हर मासके अन्तका प्रचलन देख सकते हैं।

सन् १९२९ का इण्डियन ट्रेड जर्नल देखनेसे मालूम होता है कि इससमय भी जारी हुए नोटोंकी संख्या मार्च १९२७ से कुछ ही अधिक है।

३१ मार्च सन् १९१४ के दिन चलाये गये कुल नोटोंका मूल्य परिमाण ६६ करोड़ रुपये था और महायुद्धके पूर्व द्रव्य परिमाण ८३ करोड़ ४० लाख १७ हजार ५७० रुपये था जिसमें $\frac{२}{५}$ अंश नोटोंका था। भारतमें अनिवार्य स्थितिको छोड़कर थोड़े मूल्यके नोट चलाना अन्धा अनुकरण है और भारतीयोंके लिए हानिकारक है। ३१ मार्च सन् १९१४ को कोषगत द्रव्य इस प्रकार था:—

रुपये	...	२०५३
लन्दनमें सोनेके सिक्के और सिल०		९१५
भारतमें ,, ,,	...	२२४४

सिक्का और चाँदी रिजर्व

[पृष्ठ २४८ की तालिका] (लाख रुपयोंमें)

महीना	कुल कितने नोट जारी हुए	भारतमें चाँदीके सिक्के	भारतमें सोनेके सिक्के और चाँदी	इङ्गलैंडमें कागज	भारतमें कागज
१९२६					
अप्रैल ...	१८५१३	७७०४	२२३२	२१००	५७११
मई ...	१८७०८	७८८५	,,	२१००	५७१६
जून ...	१९१४४	८३०५	,,	२१००	५७२०
जुलाई ...	१९७४८	८८९१	,,	२१००	५७३१
अगस्त ...	२००५३	९१९६	,,	२१००	५७३८
सितम्बर...	१९६४५	९४८६	,,	१४००	५७४०
अक्टूबर ...	१९३७९	९६८३	,,	१४७०	५२६०
नवम्बर ...	१८९१५	९७५२	,,	१०००	५१२७
दिसम्बर ...	१८११५	९५३२	,,	५५७	४९७७
१९२७					
जनवरी ...	१८०४७	९४४७	,,	५५७	४९७७
फरवरी ...	१८२७४	९४६४	,,	५५७	४९७७
मार्च ...	१८४१३	९५९४	,,	५५७	४९७७

लन्दनमें हुण्डियाँ	...	४००
हिन्दुस्तानमें	...	१०००
		६६१२

इस कोषका इङ्गलैण्डमें रखना और सोनेका इङ्गलैण्डमें भेजना तथा वह सोना अङ्गरेज व्यापारियोंको व्यापार करनेके लिए देनेके

विरुद्ध खूब आलोचना हो चुकी है। यह बड़ी ही कुटिलता है और भारतके साथ सरासर अन्याय करना है; भारतको संसारके स्वर्णके अपने भागसे वंचित रखना है। कुछ भी धातुमुद्रा कोष चाहे समुचित हो या न हो, यह तो स्पष्ट है कि कागजके सिक्केका कोष अपने लक्ष्यसे च्युत हुए बिना एक्सचेञ्जको स्थिर रखनेके काममें नहीं लाया जा सकता।



बंग-विच्छेद

भारतकी राष्ट्रीय जागृतिमें बंग-विच्छेदसे बहुत बड़ी सहायता मिली। सन् १९०५ ई० के जुलाई महीनेमें शिमलेसे प्रकाशित इण्डिया गजटमें भारत-सरकारने बंग-विच्छेद विषयक अपना निर्द्धारण सिद्धान्त प्रकाशित कर जनताको पहले-पहल सूचना दी। उस सरकारी सूचनाका अभिप्राय यह था:—

"बंगाल प्रान्त इतना बड़ा है कि उसके शासन-कार्यमें अनेक तरहकी असुविधायें होती हैं। उन असुविधाओंको दूर करनेके लिए सरकार बहुत दिनोंसे पूर्व बंगाल और आसामको एक अलग छोटे लाटके अधीन रखनेका विचार कर रही थी। आसाममें चाय आदिके व्यापारकी उन्नति करनेके लिए भी ऐसा करना सरकार आवश्यक समझती थी। इन सब बातोंका विचारकर भारत-सरकारने सन् १९०३ के दिसम्बरमें प्रादेशिक सरकारोंसे इस विषयमें उनके मत पूछे थे। पहले सोचा गया था कि छोटा नागपुरका कुछ अंश मध्य-प्रदेशमें मिलाने तथा मद्रासके कुछ भाग बंगालमें मिलानेसे अच्छा होगा, पर अब वह विचार छोड़ दिया गया है। क्योंकि जाति-गत और भाषा-गत पार्थक्यके कारण मद्रासके गवर्नरने अपने प्रदेशका कुछ अंश बङ्गालमें मिलानेसे आपत्ति की।

"पहले तो बंगालके छोटे लाटने ढाका, चटगाँव, बगुड़ा, रंगपुर, पबना और आसामको मिलाकर एक नया विभाग बनानेकी बात कही थी; पर भारत-सरकारने देखा कि इससे भी नया प्रदेश आवश्यकतानुसार बड़ा नहीं होता, इसलिए अन्तमें स्थिर किया गया कि राजशाही, दीनाजपुर, जलपाईगोड़ी, मालदा और कूचविहार भी नये

प्रदेशमें मिला दिये जायँ। यह नया विभाग बंगाली जातिके वंश, जाति और भाषा-गत एवं भौगोलिक विभाग-गत सामंजस्यकी ओर ध्यान रखकर ही किया गया है। स्थिर किया है कि नये प्रदेशका नाम 'पूर्व बंगाल और आसाम' रखा जाय।........ढाका इस प्रदेशकी राजधानी और चटगाँव इसका दूसरा प्रधान नगर होगा। इस प्रदेशका परिमाण १ लाख ६ हजार ५ सौ ४० वर्गमील और जनसंख्या ३ करोड़ १० लाख होगी। इनमें १ करोड़ ८० लाख मुसलमान और १ करोड़ ३० लाख हिन्दू होंगे। नये छोटे लाटके अधीन एक व्यवस्थापक सभा तथा एक 'बोर्ड आफ रेविन्यू' रहेगी। ......ऐसा हो जानेसे पश्चिमी बंगालका परिमाण १ लाख ४१ हजार ५ सौ ८० वर्गमील और जन-संख्या ५ करोड़ ४० लाख (इनमें ४ करोड़ २० लाख हिन्दू) रहेगी।"

यद्यपि ऊपरकी सूचनामें तो सरकारकी कोई कूटनीति नहीं दिखायी पड़ती, पर वास्तवमें सरकारका यह कार्य कूटनीतिसे भरा हुआ था। कहना नहीं होगा कि उस समय देशमें एकताका भाव बढ़ता जा रहा था, और लोग, खासकर बंगालके लोग—एक दूसरेको अपना भाई समझने लग गये थे। भारत-हितैषी (!) राजनीतिकाचार्य लार्ड कर्जनको इस बेतरह बढ़ती हुई भारतीय एकतासे अङ्गरेजी साम्राज्यकी जड़ हिलती हुई दिखायी पड़ी। इसलिए उन्होंने भारतमें अपना साम्राज्य दृढ़ करनेके लिए एकताका भाव नष्ट करनेवाला कार्य किया। * वंग-विभागके सम्बन्धके सरकारी कागजातोंमें स्वयं लार्ड कर्जनके श्रीमुखकी बातें इस प्रकार पायी जाती हैं:—

* यही बात स्टेट्समैन पत्रके भूतपूर्व अङ्गरेज सम्पादकने भी एक गवेषणापूर्ण लेखमें लिखी थी। इस लेखमें अधिकारियोंके उद्देश्यके बारेमें एक जगह आपने लिखा था कि:—

"Objects of the scheme are briefly, first to

It cannot be for the lasting good of any country or any people that public opinion or what passes for it should be maunfactured by a comparatively small number of people at a single centre and should be diseminated thence for universal adoption, all other views being discouraged or suppressed...From every point of view it appears to us desirable to encourage the growth of centres of independent opinion, local aspirations, local ideas and preserve the growing intelligence and enterprise of Bengal from being cramped and stunted by the process of forcing it prematurely into a mould of rigid and sterile uniformity.

इसका अभिप्राय यह है कि "कलकत्ता जैसे एक केन्द्रके थोड़ेसे शिक्षित लोगोंके मतानुसार यदि समूचे बंगालके आदमी चलें, तो

---

destroy the collective power of Bengal people, secondly, to overthrow the political ascendency of Calcntta and thirdly, to foster in East Bengal the growth of mahomedan power which, it is hoped, will have the effect of keeping in check the repidly growing strength of Hindn community."

अर्थात् 'वंग-विभागके उद्देश्यका सार यह है कि (१) बंगाली जातिकी संयुक्तशक्तिका नाश करना, (२) कलकत्तेके राजनीतिक प्राधान्यका उच्छेद करना और (३) पूर्वशिक्षित समाज द्रुतवर्धन-शील शक्तिका दमन करनेके लिए पूर्व बंगालमें मुसलमान शक्तिको बढ़ाना।"

उसका फल बंगाल या बंगालीके लिए कभी हितकर नहीं हो सकता। सब आदमी एक ही मतपर न चलकर समाजके भिन्न-भिन्न अंशोंके लोग जिसमें भिन्न-भिन्न मतोंके अनुयायी हों और भिन्न-भिन्न मार्गोंसे चलें—जिसमें एक भाषा-भाषी लोगोंमें अनेक मुनियोंके अनेक मतोंका अच्छी तरह प्रचार हो सके, सबलोग जिसमें अपनी-अपनी डेढ़ ईंटकी मसजिद अलग-अलग बनावें, सबकी उच्चाकांक्षाएँ और आदर्श जिसमें एक प्रकारके न होकर भिन्न-भिन्न तरहके हों,—उसकी व्यवस्था करना ही सरकार सबसे अधिक आवश्यक समझती है। बंगालमें आजकल जैसा ऐक्य देखा जा रहा है, उससे समाजमें स्वतंत्र भाव और मतकी पुष्टि नहीं होती है, इसलिए ऐसी एकताको सरकार दूषणीय समझती है।"

इस कुत्सित कार्यको रद्द करनेके लिए बंगालके ४॥ करोड़ लोगोंने बहुत यत्न किया। समूचे भारतमें सरकारके इस कार्यकी निन्दा हुई, पर सरकारने कुछ भी ध्यान न दिया। अन्ततः सरकारने बंगालको दो भागोंमें विभक्त करके ही छोड़ा। जो लोग सब दिन एक जगह रहते थे, परस्परके सुख-दुःखसे सुखी-दुःखी होते थे, लार्ड कर्जनके इस आघातसे उनके छिन्न-भिन्न होनेकी सम्भावना दिखायी देने लगी। पाठक पूछ सकते हैं कि बंग-विच्छेदसे बंगालियोंका क्या बिगड़ा? इसलिए उसका उत्तर दे देना आवश्यक है। बात यह है कि पहले बंगालमें आठ करोड़ आदमी थे। इसमें ४ करोड़ २८ लाख आदमियोंकी मातृभाषा बंगला, २ करोड़ ३५ लाख अधिवासियोंकी हिन्दी तथा बाकी ७५ लाखकी उड़िया थी। सरकारका उद्देश्य बंग-विभागसे ४ करोड़ २८ लाख बंग-भाषियोंमेंसे १ करोड़ ७२ लाख बंगालियोंको उड़ियों और बिहारियोंसे मिलाकर बाक़ी २ करोड़ ४६ लाख बंगालियोंको आसामियोंके साथ मिलानेका था। इस तरह भाषा-विभिन्नता होनेके साथ

ही विद्याभ्यास और एकत्र-वासके कारण बढ़ती हुई एकताको घटानेका अभिप्राय था।

बङ्ग-विभाग करते समय भारत-सरकारने कहा था कि—आजकल बङ्गालके छोटे लाटका काम बहुत ही बढ़ गया है। सरकारका यह कहना सच हो या झूठ, पर इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि उस समय बङ्गीय व्यवस्थापक सभाका काम कुछ नहीं बढ़ा था। बङ्गालकी हाईकोर्टने काम बढ़नेके कारण कभी भी किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं की थी, अन्ततः वह कलकत्ताकी हाईकोर्टके दो भाग करनेकी पक्षपाती नहीं थी। इसके पहले कभी किसीने यह भी नहीं सुना था कि, "रेविन्यू बोर्ड" समूचे बङ्गालका काम करनेमें असमर्थ हो गया है। शिक्षा-विभागके डाइरेक्टरने भी काम बढ़ जानेके कारण उसके संभालनेमें अपनी असमर्थता कभी प्रकट नहीं की थी। पुलिसके इन्सपेक्टर जेनरलने भी कभी यह नहीं कहा था कि मुझे इतना काम करना पड़ता है जितना मनुष्यके किए कभी हो नहीं सकता। रजिस्टरीके इन्सपेक्टर जेनरलको भी बहुत अधिक काम करनेके कारण लकवा मार जानेकी बात कभी किसीने नहीं सुनी थी। जेल और अस्पतालोंके इन्सपेक्टर जेनरलोंके बारेमें भी यही बात कही जा सकती है। इससे यह साफ ही देखा जाता है कि बङ्गालके राजपुरुषोंमें सिवाय छोटे लाटके और किसी राजकर्म्मचारीने काम बढ़ जानेके कारण कभी किसी प्रकारका आक्षेप नहीं किया था। पर उनका अकेलेका कार्य्य-भार कम करनेके लिए ४॥ करोड़ बङ्गालियोंके प्रतिकारकी उपेक्षाकर बङ्गालके दो टुकड़े करनेकी क्या आवश्यकता थी?—और ऐसा करना क्या बुद्धिमानीका काम था? छोटे लाटको मदद देनेके लिए एक डिप्टी गवर्नरके बहाल करनेहीसे तो सब बखेड़ा तय हो जाता। बङ्गालके जैसे विभाग किये गये थे, उससे तो शासनका व्यय प्रतिवर्ष कम-से-कम १५ लाख

रुपये बढ़ गया था; पर एक डिप्टी गवर्नरके बहाल करनेसे केवल १ लाख २० हज़ार रुपये अधिक खर्च होता। इससे न प्रजाको दुःख होता, न सरकारी खर्च बढ़ता, न परवर्ती बखेड़े ही होते। अथवा बम्बई या मद्रासके समान बङ्गालमें भी गवर्नर नियुक्त किये जाते, तो भी इससे कहीं कम खर्चमें काम चल जाता और बंगाली भी बहुत खुश हो जाते। बंगालियोंने ये सब प्रस्ताव सरकारके कर्णगोचर किये थे, पर लार्ड कर्जन और उस समयके भारत-सचिव मिस्टर ब्राडरिकने उसका कुछ भी खयाल न कर इसके दो टुकड़े कर ही तो डाले! "बिहार और उड़ीसा" तथा "बंगाल और आसाम" इस प्रकारके बङ्गालके दो भाग करनेके सिवा छोटे लाटने जिस अधिक कामके लिए शिकायत की थी, वह सहजमें कम हो जाता और बंगाली भी दुःखी न होते; अथवा एक डिप्टी गवर्नरके बहाल करनेसे भी छोटे लाटका कार्य्य-भार घट जाता और बंगालियोंको भी शिकायत करनेका कारण न मिलता; अथवा बम्बई या मद्रासकी तरह बङ्गालमें भी एक गवर्नर नियुक्त करने तथा उनकी एक प्रबन्धकारिणी सभा बना देनेसे थोड़े खर्चमें बखेड़ा तय हो जाता और इस प्रदेशके अधिवासी बड़े ही खुश होते। पर इन बातोंकी ओर सरकारने जरा भी ध्यान न दिया, यद्यपि सरकारके इस कार्यका विरोध सारे देशने किया। भारतके जितने विद्वान् थे, सबने लार्ड कर्जनकी तीव्र आलोचना की। भारतके ब्रिटिश शासनके इतिहासमें इससे पहले ऐसा एक भी अवसर नहीं आया था जिसपर कि वायसरायके कार्यपर ऐसी घृणा प्रकट की गयी हो।

लार्ड कर्जनको इससे बहुत बुरा मालूम हुआ। वे जामेसे बाहर हो गये। अब वे यह यत्न करने लगे कि किस तरह हिन्दू मुसलमानोंमें अनबन हो जाय। इसके लिए भारत-हितैषी (!) लार्ड कर्जनने पूर्वीय बंगालमें जाकर मुसलमानोंकी बहुत बड़ी-बड़ी सभाएँ कीं, और

उनमें यह सन्देशा सुनाया कि बंग-भंग केवल शासनके सुभीतेके ही लिए नहीं किया जा रहा है, वरन् इसका एक उद्देश्य मुसलमानोंका एक नया प्रान्त कायमकर उसमें मुसलमानोंकी प्रधानता रखनेका भी है। इसका मुसलमानोंके चित्तपर बहुत कुछ असर पड़ा। पर दूर-दर्शी और शिक्षित मुसलमान अपने विचारपर ही दृढ़ बने रहे।

जो हो, सन् १९०५ की सोलहवीं अक्टूबरका दिन भारतके इतिहासमें सदा अमर रहेगा। इसी दिन बंगाली भाइयोंके मस्तकपर बंग-भंगका वज्राघात किया गया था। गोस्वामी तुलसीदासने क्या ही सच कहा है कि "तुलसी जस भवितव्यता, तैसी मिलै सहाय।" सरकारने बंग-भंग तो किया दूसरे लक्ष्यसे, पर हुआ उसका उलटा। सच है "आपन सोची होत नहिं, हरि सोची तत्काल।" कौन जानता था कि लार्ड कर्जनकी कृतिका बुरा असर भारतपर न पड़ेगा? कौन जानता था कि लार्ड कर्जन जैसे पाशविक कार्यकर्त्ताका कार्य भारत-के लिए सुन्दर फल देनेवाला होगा? दैवी प्रेरणा बड़ी ही बलवती होती है। लार्ड कर्जनने काम तो किया एकता तोड़नेके लिए, पर १६ वीं अक्टूबरकी भारतीय एकता संसारके लिए ज्वलन्त उदाहरण हो गयी। उस दिन सब लोग एक दूसरेसे मिले और सरकारकी धृष्टताका सबको ज्ञान हुआ। जिस कामको सारा भारतवर्ष रोकनेके लिए सब तरहका यत्न करके भी न कर सका था, वह काम दैवेच्छासे बिना किसी विघ्न-बाधाके हो गया—यद्यपि सर्वशक्ति-सम्पन्ना अङ्ग-रेजी-सरकार कुछ और ही करना चाहती थी। भगवान श्रीकृष्णने ठीक कहा है, "दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया"।

बंग विच्छेदका परिणाम

बंग-परिच्छेदके बाद बङ्गालियोंने निश्चय किया कि अब हमारा कर्त्तव्य यही है कि हम सरकारके उद्देश्यकी सिद्धि कदापि न होने दें

और उसे यह ज्ञान करादें कि प्रजाकी रायके विरुद्ध कार्य करनेका क्या फल होता है। उस समय बंगालियोंने उसी पक्षका अनुसरण किया और अपनेको सब प्रकारसे राजगृहमें उपेक्षित होते देखकर घोषित किया कि:—

"जब बंगाली जातिकी कोई भी आपत्ति न सुनकर सरकारने बंगालके दो टुकड़े कर दिये, तब हम सब बंगालियोंने भी इस विभाग-नीतिके अशुभ परिणामका निवारण करनेके लिए, समूची जातिके अस्तित्त्वकी रक्षा करनेके लिए, अपनी संयुक्त चेष्टाका प्रयोग करनेकी आजसे प्रतिज्ञा कर ली है; यही बात आज घोषणाद्वारा प्रकाशित की जाती है; परमात्मा हमें सहायता दे।"

फल यह हुआ कि बंग-भंगने भारतवर्षको जगा दिया। उसे यह मालूम हो गया कि साम्राज्य-गर्वोन्मत्त नौकरशाही हमारा दुःख-सुख कुछ नहीं सुनेगी। उसके राष्ट्रीय वायु-मण्डलमें राष्ट्रीय भावोंके भाव मँड़राने लगे। सारांश यह कि बंग-भङ्गसे ही देशमें नये युगका पदार्पण हुआ। लोकमान्य तिलक महाराजने भी अपने एक बड़े ही महत्वपूर्ण लेखमें लिखा था कि "बंग-विच्छेदके समयमें ही भारतमें स्वतन्त्रताकी लहरका प्रवेश हुआ है। यह लहर चीनसे होकर आयी थी, इसलिए पहले-पहल बंगालमें इसका पहुँचना स्वाभाविक था।"

लोगोंके दिलमें लार्ड कर्जनके इस कार्यसे तरह-तरहकी भावनाएँ उत्पन्न होने लगीं, अब आगे-पीछेकी बातोंपर सबलोग ध्यान देने लगे। लोगोंके दिलमें यह बात उत्पन्न हुई कि अङ्गरेजलोग पहले यहाँ व्यापारके लिए ही आये थे। इस समय यद्यपि उनके हाथमें शासनकी बागडोर आ गयी है, तथापि वे राज्यकी अपेक्षा वाणिज्य-पर अधिक ध्यान रखते हैं। भारतका शासनाधिकार पाकर जितना उनको लाभ हुआ है, उसका सौगुना अधिक लाभ हुआ है भारतमें

इच्छानुसार व्यापार करनेका सुभीता पानेसे। इसलिए उस वाणिज्य-में यदि किसी प्रकारकी गड़बड़ी पैदा होजाय तो निश्चय ही शासकों-की आँखें खुलेंगी और वे अपने भारतीय ग्राहकोंको सन्तुष्ट करनेके लिए सब कुछ करनेको तैयार होंगे। यही सोचकर बंगालियोंने बंग-विच्छेदका प्रतिकार करनेका सर्वोत्तम मार्ग विलायती वस्त्र आदि मालका वहिष्कार करना स्थिर किया। इस विषयमें गोखले महाशयने बनारसकी राष्ट्रीय महासभाके अध्यक्षके नाते कहा भी था कि,— "अमङ्गलसे भी मङ्गलकी उत्पत्ति हुआ करती है। बंगालमें जो बुरे दिन आये हैं, उसका एक शुभ फल इतनेमें ही (बंग-विच्छेदके साढ़े तीन महीनेके बाद ही) दृष्टिगोचर होने लगा है।"

स्वदेशी और वहिष्कार उस समय कहाँतक सफल हुआ था, यह बात भी जान लेना आवश्यक है। कलकत्ताके बन्दरमें सन् १९०५ में १९ करोड़ ४० लाख ३० हजार २ सौ १ रुपयेका विलायती माल आया था, पर विलायती मालका बंगालमें वहिष्कार * होनेके बाद सन् १९०८ में १६ करोड़ २० लाख ८१ हजार ७ रुपयेका ही अर्थात् ३ करोड़ १९ लाख ४९ हजार १९४ रुपयोंका माल कम आया था। साथ-ही-साथ देशी मिलोंमें वस्त्र अधिक बनने लगा।

सन् १९०२ में ४१ करोड़ २४ लाख ७५ हजार ४५६ गज कपड़ा भारतमें बना था—पर १९०४ में ४७ करोड़ ७१ लाख २९ हजार ८१० गज, १९०५ में ५६ करोड़ २८ लाख ७१ हजार ९४९ गज और सन् १९०८ में ८२ करोड़ ४४ लाख ८९ हजार १६४ गज कपड़ा बनने लग गया। इस तरह बंगालमें स्वदेशी और वहिष्कारसे जहाँ सन्

* पाठकोंको स्मरण रखना चाहिए कि बंगालके स्वदेशी और वहि-ष्कारमें भी लोकमान्य तिलककी शक्ति काम कर रही थी। देशकी सारी राष्ट्रीय जागृतिका श्रेय एकमात्र स्वातन्त्र्य युद्धके लिए सेना तैयार करनेवाले स्वर्गीय लोकमान्य तिलक महाराजको ही है।

१९०७ में समूचे भारत में ४४ करोड़ ३५ लाख ११ हजार रुपयेका विलायती कपड़ा आया था, वहाँ सन् १९०८ ई० में ३५ करोड़ ९ लाख, यानी ९ करोड़ २६ लाख रुपयोंका विलायती माल कम आया। कपड़ेके सिवाय साबुन, चुरुट, दियासलाई, छाता, सिगरेट आदि चीजोंकी भी आमदनी बहुत कम हो गयी थी। ये सारी चीजें उस समय बङ्गालमें ही अधिक खपती थीं। क्योंकि पहले-पहल बङ्गालियोंमें अङ्गरेजी शिक्षाका प्रचार अधिक होनेके कारण वे पूरा साहिबाना ठाट रखने लग गये थे।

इस तरह स्वदेशीका अस्त्र धारणकर विदेशी मालका बहिष्कार करना देशमें शुरू हुआ। कई अंशोंमें सफलता भी इस काममें हुई। पर देशके युवक समाजको इस उपायसे भी सन्तोष नहीं हुआ। इसलिए इस कार्यकी सफलताके लिए उसने उस समय भारतीय उच्चादर्शके विपरीत कुछ पाश्चात्य मार्गोंका अवलम्बन किया। यह मार्ग प्रायः वही था, जिसका अवलम्बन रूसके क्रान्तिकारियोंने जारके भयङ्कर अत्याचारोंसे व्याकुल होकर किया था। कुछ लोग हमारे उन भाइयोंके क्रांतिकारक कामोंकी घोर निन्दा करते हैं और उन्हें हेय दृष्टिसे देखते हैं। हम भी मानते हैं कि उनके वे कार्य असामयिक थे; पर हम यह कदापि माननेके लिए तैयार नहीं कि उनका वह कार्य निन्दनीय था, इसलिए वे घृणाके पात्र हैं। उनलोगोंने काम अच्छा किया या बुरा, यह बात पीछे विचारनेकी है; क्योंकि इस पर विचार करनेके पूर्ण अधिकारी हम और आप नहीं हैं। परमात्माकी इस अतर्क्य और अप्रमेय सृष्टिमें अमङ्गलमें मङ्गल और मङ्गलमें अमङ्गल, अशुभमें शुभ और शुभमें अशुभ, अच्छेमें बुरा और बुरेमें अच्छापन छिपा हुआ है। कौन कार्य किस समय कैसा कहा जा सकता है, जबतक हम उस पर सूक्ष्म विचार करने योग्य होकर विचार न करें तबतक हम उसके प्रकृत निर्णायक नहीं हो सकते। इसलिए यद्यपि स्थूल

विचारसे उनका काम बुरा था, तथापि जब उन नवयुवकोंने देशकी स्वाधीनताके लिए अपने प्राणोंको हथेलियोंपर रखकर वह काम किया, तब कैसे कहा जा सकता है कि उन्होंने वह काम बुरा किया? इसलिए यह मानना पड़ेगा कि उनसे वैसा काम करानेमें भी दैवेच्छा थी। हम तो उन्हें और उनके कामोंको सच्चा देशसेवक और सच्ची देशसेवा ही कहेंगे,—चाहे वे कुछ भी क्यों न हों? बमकांडोंसे होने-वाले परिणामोंको क्रान्तिकारक नहीं जानते थे, सो बात नहीं है। स्वयं क्रान्तिकारियोंके प्रधान बाबू बारीन्द्रकुमार घोषने मैजिस्ट्रेटके सामने बयान देते समय कहा था कि—बड़े लाट जङ्गी लाट आदि उच्चाधिकारियोंको मारनेकी मेरी इच्छा थी। अवश्य ही हमें यह भरोसा नहीं था कि इस प्रकारकी हत्याओंसे हमारा देश स्वाधीन हो जायगा, तथापि कुछ-कुछ तो इसलिए करते थे कि लोगोंकी ऐसी ही इच्छा हमने समझी थी, और कुछ इसलिए कि ऐसी हत्याओंके होने-से लोग साहसी होंगे और मरना सीखेंगे।" पाठकगण! क्रान्ति-कारियोंके हृदयका चित्र बारीन्द्र बाबूके वाक्योंमें ऊपर चित्रित है। इसको देखकर स्वयं ही अच्छे और बुरेका निर्णय कर लीजिये। अब हम अति संक्षेपमें क्रान्तिकारी दलवाले अपने भाइयोंके हालका भी दिग्दर्शन करा देना आवश्यक समझते हैं।

ऊपर हम कह आये हैं कि बंग-विच्छेदके कारण देशके अशा-न्ति-सागरमें तरह-तरहके उपद्रवोंका होना प्रारम्भ हो गया था। तदनुसार ही अपना दुःख हटानेके लिए बंगालमें एक क्रान्तिकारक दल भी उत्पन्न हुआ। क्रान्तिकारी दलके प्रमुख नेता श्रीयुक्त बारीन्द्र बाबूने भी इस बातको स्वीकार किया है कि बङ्ग-विच्छेदके कारण ही ऐसे उपायोंका अवलम्बन किया गया था। बमवाले मुकद्दमेमें मैजिस्ट्रेटके सामने बारीन्द्र बाबूके कहे हुए शब्दोंको ही देखिए,—

"बंगालके दो टुकड़े होनेपर और खासकर जब धूम-धामसे अखबारोंकी गिरफ्तारी होने लगी, तबसे हम बम आदिसे काम लेनेकी बात सोचने लगे। जहाँ कहीं, हम संस्थाके लिए रुपये माँगने जाते थे, हमें सलाह मिलती थी कि बम आदि बनाओ। लोग कहते थे कि हमारी जातिपर सख्ती की गयी है, अतः उसका बदला लेनेका प्रबन्ध करो। हमें अनुभव हुआ कि यही हमारी जातिकी निष्कपट कामना है, इसलिए हम उसके प्रबन्धमें लग गये।"

ऊपरके अवतरणसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि क्रान्तिकारक दलके उत्पन्न होनेका मूल कारण गवर्नमेण्टकी अदूरदर्शिता ही थी। यदि लार्ड कर्जनने समझ-बूझकर जनताकी प्रार्थनापर ध्यान दिया होता, तो सम्भवतः भारतवासियोंके दिलमें यह भाव कभी भी उदय न होता। लार्ड कर्जनकी बुद्धिमानीसे जो यह मण्डली स्थापित हुई थी, वह बराबर अपना काम गुप्त रीतिसे करने लगी। उसे जब धनकी जरूरत पड़ती थी, तब वह माँगकर अपना काम निकालती थी। गुप्त मण्डलीको काम करते वर्षों बीत गये, पर सरकारको कुछ भी पता न चला। अपना काम गुह्य रखनेपर मण्डली पूरा ध्यान रखती थी। बारीन्द्र बाबूने अपने बयानमें कहा था कि—"डेढ़ वर्षमें मैंने १४—१५ आदमी संग्रह किये और उनको लेकर सन् १९०७ के आरम्भसे काम शुरू किया। मण्डलीमें बहुत ही सोच समझकर आदमी भरती किये जाते थे।" जिसपर जरा भी सन्देह होता था, सुना गया है कि वह इसलिए मार डाला जाता था कि जिसमें यह गुप्तभेद किसीको मालूम न हो।

तारीख ३० अप्रेल १९०८ के मुजफ्फरपुरवाले बमकांड (Bomb outrage) से इस मण्डलीका भेद खुला। इस काण्डसे दो निरपराध यूरोपियन महिलाओंके प्राण गये थे। वास्तवमें बम फेंकनेवालोंका विचार कलकत्ताके जिला मैजिस्ट्रेट मि० किंग्सफोर्ड-

को मारनेका था। उसी गाड़ीमें इन दोनों महिलाओंके रहनेके कारण किंग्सफोर्डके बदले ये ही बमका शिकार बनीं। इस काण्डके दो दिन बाद इसी काण्डमें दो नवयुवक पकड़े गये। अपराध स्वीकार करनेपर एकको तो फाँसी दी गयी और दूसरे अभियुक्तने गिरफ्तारीके समय ही आत्म-हत्या कर ली। इस घटनाके बाद चारों ओर जोरसे गहरी सनसनी फैली। ता० २ मईको इसी काण्डके सम्बन्धमें पुलिसने कलकत्तामें तलाशी लेकर बम, डिनामाइट, भभकानेकी चीज, पिकरिक तेजाब, क्लोराइड और पोटाश आदि आपत्तिजनक चीजें प्राप्य कीं। फिर क्या था, धड़ाधड़ गिरफ्तारियाँ होने लगीं। उस समय अपराधी और निरपराधीकी पहचान बिलकुल ही नहीं रखी जाती थी। श्रीयुक्त अरविन्द घोष जैसे शान्तिप्रिय सज्जन भी पकड़कर जेलोंमें बन्द किये गये। इन अभियुक्तोंके साथ सरकार बड़ा ही कड़ा बर्ताव करती थी। सरकारके उन अमानुषिक बर्तावोंका स्मरण करनेपर दिल भर आता है। देशबन्धु चित्तरंजनदासने इस काण्डमें अभियुक्तोंकी ओरसे पैरवी की थी, यहाँतक कि श्रीयुक्त अरविन्दघोषको उन्होंने ही फाँसीकी सजासे मुक्त कराया था। वह समय ऐसा था कि कोई वकील या बैरिष्टर किसी अभियुक्तकी ओरसे पैरवी करनेके लिए खड़ा होना स्वीकार नहीं करता था।

पश्चात् बड़े-बड़े अफसरोंको मारनेके लिए और भी कई घटनाएँ हुईं। छोटे लाट साहबको मारनेके लिए खड्गपुरमें बम जमाया जाना, एलेन साहब और कुस्टियाके पादरीको गोली मारना, कलकत्ताके ग्रे स्ट्रीटमें बमसे चार आदमियोंका घायल होना आदि। यह षड्यन्त्र अलीपुरके बमकेसके नामसे प्रसिद्ध था। इस काण्डमें कितने ही निरपराधी तो फाँसीपर लटका दिये गये और कितने ही आजन्म सजा भोगनेके लिए कालेपानी ठेल दिये गये। जिनमेंसे कितने ही आज भी जेलमें पड़े सड़ रहे हैं।

लोकमान्यको ६ वर्ष दण्ड

इस अभियोगमें लोकमान्य तिलक महाराजको भी सरकारने अपना शिकार बनाया। मुजफ्फरपुरके बमकाण्डका वर्णन पीछे किया जा चुका है। इस सम्बन्धमें भारतके आराध्य देव लोकमान्य तिलक के प्रसिद्ध पत्र 'केसरी' में बड़े ही महत्त्वपूर्ण कई लेख निकले थे। उन लेखोंमें रूस आदि देशोंके उदाहरणोंसे यह दिखलाया गया था कि प्रजामतकी अवहेलना कर दमन-नीतिके जोरसे किस प्रकारका क्रान्तिकारक दल पैदा होता है। उनमें यह भी दिखलाया गया था कि इन कामोंकी पूरी जिम्मेदारी नौकरशाहीकी अत्याचार-पूर्ण नीति-पर है। बस इस बातपर लोकमान्य राज-विद्रोहके अपराधमें गिरफ्तार कर लिये गये। बम्बईमें उनपर मुकद्दमा चलाया गया। लोकमान्यने एक सप्ताहतक बड़ी ही योग्यता और प्रगाढ़ विद्वत्तासे अपनी पैरवी आप की। आपका कानून सम्बन्धी अगाध ज्ञान देखकर बड़े-बड़े वकील और हाईकोर्टके जजतक दंग रह गये। आपने अपने बचावमें कानूनोंका जो स्पष्टीकरण किया था, वह कानूनके इतिहासमें अमर रहेगा। किसी अफसरका यह साहस नहीं हो सकता, जो लोकमान्य के निरन्तर एक सप्ताहतक दिये हुए बयान और तर्कको पढ़कर उन्हें दोषी प्रमाणित कर सके।

किन्तु वहाँ तो सरकार इससे पहले ही लोकमान्यपर वक्र-दृष्टि लगाये बैठी थी। लोकमान्यकी निर्दोषितापर कुछ भी ध्यान न दिया गया और छः वर्षके द्वीपान्तरवासका दण्ड सुना दिया। स्मरण रखना चाहिए कि लोकमान्यके इस मुकद्दमेमें जो जूरी बैठी थी, उसमें सात अङ्गरेज और दो हिन्दुस्तानी थे। दोनों हिन्दुस्तानियोंने लोकमान्यको निर्दोष बतलाया था। उस समय लोकमान्यके मुकद्दमेका फैसला सुननेके लिए पचासों हजार आदमी प्रतिदिन कोर्टके सामने

दिनभर जमा रहते थे। पर सरकारने लोकमान्यकी लोकप्रियतापर कुछ भी ध्यान न दिया। आपका फैसला जनताको धोका देकर दस बजे रातको सुनाया जाकर रात-ही-रात आप माराडलेके लिए रवाना कर दिये गये। सजाकी खबर मिलते ही भारतवर्षके कोने-कोनेमें हड़-ताल हुई। बम्बईमें लगातार सात दिनतक हड़ताल रही। माराडलेके जेलमें आपसे रस्सी बँटनेका काम लिया जाता था। जिस लोकमान्य की अद्वितीय विद्वत्ता देखकर सारा संसार विस्मित होता था, जो लोकमान्य देशभक्तिके ज्वलन्त उदाहरण थे, उनसे रस्सी बँटानेका काम अङ्गरेजी सरकारने लिया था। क्या कोई भी भारतीय इसे कभी भूल सकता है? इस तरह भारतके कितने लाल तो व्यर्थ सताये गये और कितने ही जानसे मार डाले गये। इस बातको बारीन्द्र बाबूने भी अपने स्पष्ट वयानमें कहा था,—"इतना साफ बयान मैं इसलिए दे रहा हूँ कि सरकारने बहुतसे निरपराध आदमियोंको मरवा डाला है। इसलिए अब जिसमें निरपराधियोंकी रक्षा हो। क्योंकि इस काराडके खास अपराधी हमलोग हैं।"

उस समय धीरे-धीरे प्रकृतिके नियमानुसार यह समूचे भारतमें फैल गया। दिल्लीमें भी लार्ड हार्डिङ्गके ऊपर बम फेंका गया। उसमें भी इसी तरहकी सजाएँ दी गयीं। लाहोरके भाई परमानन्द-के चचेरे भाई श्री बालमुकुन्द, वसन्तकुमार, मास्टर अमीरचन्द तथा अवधविहारी आदि भी इसी अभियोगमें फाँसीपर लटकाये गये। श्रीयुक्त बालमुकुन्द सहर्ष फाँसीपर चढ़ गये। उनके पूर्वज श्रीयुक्त मतिदास भी औरंगजेबकी आज्ञासे आरेसे चीर डाले गये थे। श्रीयुक्त बालमुकुन्दका विवाह अनुपम सुन्दरी श्रीमती राम-रखी देवीके साथ हुए एक वर्ष भी न वीतने पाया था कि वे पकड़ लिये गये। उनके पकड़े जानेके बाद उनकी मुग्धा धर्मपत्नीने फिर कभी पलङ्गपर पाँव नहीं रखा और प्राणपतिके फाँसी पाते ही अपने

प्राण त्याग दिये। 'आर्य गजट' में यही घटना प्रकाशित हुई थी। उसे हम यहाँ उद्धृत कर देते हैं। उससे पाठकोंको सारी बातें ज्ञात हो जायँगी;—

दर्दनाक सच्ची कहानी

"फूल खिला था। बुलबुल उसकी खूबसूरत और मुलायम पँखड़ियोंको छू-छूकर गाती थी। गुलचीं आया; बुलबुल डरके मारे उड़ी और फूलके इर्दगिर्द चक्कर लगाने लगी। गुलचींने निहायत बेरहमीसे फूल तोड़ लिया। उसकी पँखड़ियोंको भी अलग-अलग करके टोकरेमें फेंक दिया। बुलबुल चीखी-चिल्लायी, पर बेसूद। आखिर बुलबुल बेहोश होकर गिर पड़ी और फूलके पास ही तड़प-तड़पकर मर गयी।

गर्मीके दिन थे। वह जेलमें थे, मैं घरमें थी। छः महीनेसे मैं किसी घड़ीकी इन्तिजारमें थी। लोग कहते थे, तू बावली न बन, वे छूट जायँगे और आ जायँगे। मैं कहती थी, वह दिन कब आवेगा, वह सूरज कब नमूदार होगा, वह रात कब खतम होगी—वह शुभ घड़ी किस वक्त आवेगी?

मैंने दिल्ली काहेको कभी देखी थी। लेकिन वह दिल्लीमें ही रखे गये थे। वहीं मुकद्दमा चल रहा था। मैं वहाँ पहुँची। देखा जेलकी कोठरियाँ बड़ी भयानक हैं और उन तङ्ग कोठरियोंके अन्दर सावन भादोंकी गर्मियोंमें उनको दिनरात वहीं रहना पड़ता है। मैंने पूछा, क्या चारपाई मिलती है?

कहने लगे,—"कैसी पगली है! भला यहाँ चारपाईका क्या काम?

मैं—तो फिर सोते काहेपर हो?

वह—एक कम्बल जमीनपर बिछाकर सो रहता हूँ।

मैं अपने घर वापस आयी। रातको लोग खुली छतोंपर चारपाइयाँ बिछाकर सोये, मैं सबसे नीचेकी कोटरीमें घुस गयी। एक कम्बल जमीनपर बिछाया और उसपर लेट गयी। मच्छर भनभनाने लगे। वे कानोंके इर्दगिर्द चक्कर लगाते थे। ऐसा मालूम होता था कि सर्मन दे रहे हैं और कह रहे हैं कि—"नादान! क्या ऐसी कोठरियोंमें गर्मीके दिनोंमें कम्बलके ऊपर नींद आया करती है?" मैं उठ बैठी। झरोखेमेंसे चन्द्रमाकी किरणें आ रही थीं। मैंने झुककर उसे देखा और पूछा, क्यों चमकने वाले! क्या तू उनके कमरेमें भी चमकता है? क्या तू देखता है कि वह भी रात इसी तरह जागते और करवटें बदलते काट देते हैं?

चन्द्रमाकी ओर बार-बार देखनेपर भी मुझे कोई उत्तर नहीं मिला। मैं फिर लेट गयी। मच्छरोंने मेरा शरीर काट-काटकर फोड़ा बना दिया। अगली रात मच्छर मुझ अबलापर निस्सहाय और दीन पाकर आक्रमण कर चुके थे कि अचानक मेरी सहेली आ गयी। कहने लगी,—"क्या मरनेपर कमर बाँध ली?" मैंने कहा—"मैं भला काहेको मरूँगी।" उसने कहा "ये ढंग तो मरनेके ही हैं।" मैंने कहा—"क्या जो इस तरह सोते हैं........सहेलीने बात काटकर कहा,—"हाँ-हाँ मर तो जाते ही हैं।"

मेरी आँखें तर हो गयीं। आँसू टपक पड़े। सहेली दंग रह गयी, अपने आपको कोसने लगी। मैंने कहा, किसीका कोई दोष नहीं! मेरे भाग्य फूट चुके हैं। वे जेलमें जिस तरह सोते हैं, तो क्या उसी तरह मैं न सोऊँ?

अब फिर मुझे उनको देखनेकी अनुमति मिली। फिर मैं दिल्ली पहुँची। अबकी हाल पूछा तो कहने लगे, हम एक ही समय खाना पाते हैं। मैंने कहा, रोटी कैसी होती है? उन्होंने रोटीका टुकड़ा मुझे दे दिया। उसे मैं लेती आयी। देखा, उसमें चने भी हैं, गेहूँ

भी हैं और भी कुछ चीजें मिली हुई हैं। मैंने भी घर पहुँचकर उसी तरहका अनाज बनाया, पीसा, रोटी पकायी और एक वक्त खाकर दूसरी वेला पानीपर बिता दिया। इसी तरह कई महीने बीत गये। मुकद्दमा लगातार होता रहा। आखिर एक दिन जब कि मैं अपनी कोठरीमें बैठी उनका चिन्तन कर रही थी, बाहरसे रोनेकी आवाज आयी। मेरा कलेजा जोर-जोरसे उछलने लगा। मेरे माथेपर पसीना आ गया। दिलको थामे मैं बाहर आयी। बाहर आकर देखा, वे इनका नाम लेकर बातें कर रही थीं,—"फाँसीका हुक्म—फाँसी का हुक्म हो गया!"

उनको आखिरी बार देखनेके लिए मैं फिर दिल्ली पहुँची। उसी जेलमें, जहाँ जवानोंकी जवानियाँ खतम कर दी जाती हैं; जहाँ नर्म और नाजुक पँखड़ियोंको मसल दिया जाता है; मैं भी वहीं पहुँची। दर्शन किये। दिल कहता था, कुछ बातें कर लें। ओठ कहते थे, हमारे अन्दर हरकत करनेकी ताकत नहीं है। हाँ इतनेमें उनके लब हिले और आवाज आयी,—प्राणप्यारी! संसार असार है! जो आया है, उसे अवश्य ही एक-न-एक दिन जाना होगा! कोई किसीका साथी नहीं! अपने आपको सौभाग्यवती समझो कि मैं देशहितके लिए अपनी आहुति दे रहा हूँ।

मेरे कानोंने इस आवाजको सुना और आँखोंने छमछम आँसू बरसाने शुरू कर दिये। बार-बार आँसुओंको रोकती थी कि जी भर-कर देख तो लूँ, लेकिन वे रुकते ही न थे। अगले रोज हवनसामग्री इकट्ठी की गयी। लोग कहने लगे, आज उनका अन्त्येष्टि संस्कार होगा। मैंने कहा, यह अच्छा मौका मिलेगा, मैं उनसे अब मिलाप करूँगी। लेकिन थोड़ी ही देरके बाद सज्जोग वापस आ गये और कहने लगे कि—"लाश नहीं मिलती।"

"फिर क्या हुआ, मैं आगे बयान नहीं कर सकती। आज पन्द्रह

दिनसे मैं व्रत हूँ और अब वह घड़ी, करीव आ रही है जब मेरा मनोरथ पूरा हो जायगा।"

इतना कहकर देवी चुप हो गयी। आँखोंसे आँसुओंकी धारा वहने लगी। दिलमें दर्द होने लगा; देवीने फिर अनाजका एक दाना भी नहीं खाया और पानीका एक घूँटतक नहीं पिया। पन्द्रह दिन छोड़ अठारह दिन इसी तरह निराहार बीत गये। एक जगहपर बैठकर उसका ध्यान लगाये हुए, जिसपर उसका ध्यान टिकता था, देवीने तपस्या की। अन्ततः एक दिन जब कि आकाश विलकुल स्वच्छ था, सूर्य भगवान अपने पूर्ण तेजसे संसारको आलोकित कर रहे थे, लोग अपने-अपने काममें लगे हुए थे, देवी अपनी जगहसे उठी। स्वयं ही स्वच्छ जल लायी, स्नान किया और शुद्ध वस्त्र पहनकर फिर पहली जगहपर लेट गयी। कहने लगी,—"प्यारे बहुत दिनतक परीक्षा ले चुके! आज तो दामन न छोड़ूँगी! अब जुदा न हो सकूँगी! यह कहा और प्राण खींचकर छोड़ दिये। लोग कहने लगे—"भाई बालमुकुन्दकी धर्मपत्नी सती हो गयी। मैंने कहा गुलपर बुलबुल निसार हो गयी। यह बनावट नहीं असलीयत है, कहानी नहीं हकीकत है!"

प्रेमी पाठकगण, बमके काण्डमें लार्ड कर्जनकी कृपासे ऊपरकी हृदय फाड़नेवाली घटनाकी तरह बहुतसी भिन्न-भिन्न तरहकी हृदयको चीर देनेवाली खुदीराम बोस, कन्हाईलाल दत्त आदिकी घटनाएँ हुई हैं। यदि प्रजाकी प्रार्थनाका तिरस्कार न किया गया होता, तो ये घटनाएँ अवश्य ही कभी न होतीं। किन्तु ईश्वर जो कुछ करता है, वह अच्छेहीके लिए। इसलिए हमें तो लार्ड कर्जनका परम कृतज्ञ ही होना चाहिए। यदि लार्ड कर्जनकी बंग-विच्छेद करनेकी कृपा न हुई होती, तो देशमें कभी भी इतनी जागृति पैदा न होती। इसी घटनाद्वारा ईश्वरको देशको जगाना था, इसलिए उसे जगा

कर फिर शासकोंकी इच्छामें परिवर्तन कर उन्होंने इस झगड़ेको शान्त भी करा दिया।

जब नौकरशाही देशमें फैली हुई घोर अशान्ति से तंग आगयी, तब उसके कान खड़े हुए। अन्तमें लार्ड हार्डिञ्जने बंगालके नेताओंसे कहा कि आपलोग देशकी बढ़ती हुई अशान्तिको रोकें, शीघ्र ही इस झगड़ेको मिटानेका मैं प्रयत्न करूँगा। इसके बाद १२ जून सन्१९११ ई० को बंगाल प्रान्तकी ओरसे लार्ड हार्डिञ्ज महोदयकी सेवामें एक मेमोरियल भेजा गया। उन्हें यह ठीक जँचा कि बंग-भंग रद्द कर दिया जाय। दिल्ली-दरबारका समय बिलकुल ही निकट था। श्रीमान् पञ्चम जार्जका अभिषेकोत्सव होनेवाला था, अतएव श्रीमान् सम्राट्-के ही कर-कमलोंसे बंग-भंग रद्द करनेकी आज्ञा निकलवाना विशेष उचित समझा गया।

यहाँपर एक बातका उल्लेख करना और आवश्यक प्रतीत होता है। जिस समय श्रीमान् पञ्चम जार्ज भारतमें प्रिन्स होकर आये थे, उस समय यहाँ बंग-विच्छेदका आन्दोलन खूब जोरोंपर था। समाचार-पत्रोंमें खूब धूम मची हुई थी। एक दिन श्रीमान् प्रिन्सके प्राइवेट सेक्रेटरीने "अमृतबाजार-पत्रिका" का एक अंक प्रिन्सके पढ़नेके लिए उनके कमरेमें रख दिया। प्रिन्स इसके पहले "इङ्गलिशमैन" आदि अर्द्ध सरकारी पत्रोंका अवलोकन कर चुके थे। जब उन्होंने अमृतबाजार-पत्रिका पढ़ी तो इसमें उन पत्रोंसे बंग-भंगके सम्बन्धमें कुछ और ही बातें मालूम हुई। अन्तमें आपने अपने प्राइवेट सेक्रेटरीसे अमृतबाजार-पत्रिकाके सम्पादक वयोवृद्ध बाबू मोतीलाल घोषसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की। प्रिन्सके सेक्रेटरीसे बाबूमोतीलाल घोषका पहलेहीसे परिचय था। प्रिंसकी आज्ञासे मोती बाबू बुलाये गये। आज्ञा पाते ही आप सहर्ष प्रिन्ससे मिले। बाबू मोतीलाल घोषके पाण्डित्यसे सारा संसार भली-भाँति परिचित है।

आपने बड़ी ही मार्मिक भाषामें बंग-विच्छेदका सारा भीतरी रहस्य प्रिन्सको समझा दिया। आपकी बातोंसे श्रीमान् प्रिन्स बहुत ही प्रसन्न हुए और पूर्ण स्वागत करते हुए कहा कि मैं आपकी सारी बातें इङ्गलैण्ड पहुँचकर अपने पिता (सप्तम एडवर्ड) को सुनाऊँगा। कहा जा सकता है कि स्वर्गीय बा० मोतीलाल घोषका श्रीमान् पञ्चम-जार्जसे जो उक्त सम्मिलन हुआ था बंग-विच्छेदको रद्द करानेमें उसका भी कम प्रभाव नहीं पड़ा था।

उपर्युक्त कारणोंसे दिल्ली दरबारके अन्तमें श्रीमान् सम्राट्ने बंग-विच्छेद रद्द करनेकी घोषणा की। समूचे भारतने श्रीमान् सम्राट् की यह घोषणा सुनकर हृदयसे धन्यवाद दिया। इस तरह बंग-विच्छेद तो रद्द हो गया, पर नौकरशाहीकी गलतीसे देशके अगणित लाल विकराल कालके गालमें अवच्छिन्न हो गये।



कानूनोंद्वारा भारतकी हत्या

सामाजिक नियम या कानूनसे नहीं, व्यावहारिक नियमसे भी नहीं, हमारा लक्ष्य यहाँपर राज्यके कानूनोंसे है। अतः सर्व प्रथम यह जाननेकी आवश्यकता है कि राज्य क्या है। कुछ मनुष्योंका समूह जिन्होंने अपनी स्वतन्त्र प्रेरणासे अनेक तरहकी सुविधाओंके लिए एकमें मिलकर रहना तथा कुछ नियमोंमें बँध जाना स्वीकार कर लिया है, उसीको राज्य कहते हैं। इस बातसे यह व्यक्त होता है कि हम-लोगोंने अपनी स्वतन्त्रताका नियंत्रित किया जाना स्वीकार कर लिया है और नियन्त्रण किसी साध्यके लिए साधक रूप है। अर्थात् राज्य-को शासन करनेका कोई विशेष अधिकार नहीं प्राप्त है, बल्कि वह कुछ स्वतन्त्र लोगोंका एक समूह है, जिनके अधिकारमें सार्वजनिक कामोंके सञ्चालनका अधिकार सौंप दिया जाता है। इसलिए जितने भी कानून बनाये जायँ, सबकी जाँच ऊपरकी परिभाषाके अनुसार ही होनी चाहिए।

वास्तवमें कानून या नियम बनानेका अभिप्राय क्या है? कानून-निर्माणका अभिप्राय है, राज्यके अन्तर्गत प्रजाके आचरणको नियमित करना, और उद्दण्डाचरणियोंको दण्ड देना। दूसरे शब्दोंमें यों कह सकते हैं कि इन नियमोंके द्वारा हमें विदित होता है कि सभ्य समाजमें हमारे क्या अधिकार हैं। इन नियमों या कानूनोंके सम्बन्धमें प्रोफेसर सिजविकने कहा है कि,—"इन नियमोंमें व्यवस्थापक तथा सरकारी नियतप्रजा की सुख-वृद्धिकी कामना हो। आधुनिक सभ्य राष्ट्रोंके नियमका यही आधार है।"

इस आधारपर भारतमें प्रचलित नियमोंकी तुलना करके हम

देखते हैं कि यहाँके कानून ऊपरकी शर्तकी पूर्त्ति नहीं करते। श्रीयुक्त विजयराघवाचार्यने लिखा है कि—"साधारण कानूनोंके और पार्ल-मेण्टके चन्द कानूनों के अतिरिक्त सभी कानूनोंका निर्माण नौकर-शाहीकी स्वच्छन्द बुद्धिसे होता है; चाहे वह कानून हो, विधान हो या हुक्मनामा हो। कोई भी सभ्य समाज इन्हें (भारतमें प्रचलित कानूनको) कानून नहीं कह सकता। न तो इनका निर्माण ही प्रजाके प्रतिनिधियोंद्वारा हुआ है और न प्रजामतका इनमें आभास ही है। सारांश यह है कि इस देशमें सार्वजनिक नियमोंका सर्वथा अभाव है।"

अब हमें यह देखना है कि भारतमें ऐसा विपरीत कार्य क्यों किया जाता है। साधारण व्यक्ति-विशेषके लिए तो यह बात लागू हो सकती है कि वह विना किसी स्वार्थके स्वभावानुसार भी विपरीत कार्य कर सकता है; पर आधुनिक शासनमें,—जिसमें समष्टि-प्रधानता है,—यह नियम लागू नहीं हो सकता। बात यह है कि इस प्रकारके विप-रीत कार्यसे अङ्गरेजोंका मनोर्थ पूर्ण होता है। इस पुस्तकमें यह भली-भाँति दिखलाया जा चुका है कि अङ्गरेजलोग इस देशमें धन-की लालचसे ही शासन कर रहे हैं। क्योंकि वे लोग चाहते हैं कि दूसरेका अधिकार रहनेसे हम स्वच्छन्दता-पूर्वक न तो व्यापार ही कर सकेंगे और न व्यापार करनेकी इतनी सुविधाएँ ही हमारे लिए रहेंगी। इसीसे वे हमेशा अपने स्वार्थमें तत्पर रहते हैं।

योंतो ईष्ट इण्डिया कम्पनीके समयसे ही अङ्गरेज शासकगण कहते कुछ और करते कुछ आ रहे हैं, और न्याय-अन्यायका बिना विचार किये ही भारतीयोंके साथ दुर्व्यवहार करते आ रहे हैं, पर जबसे भारतमें राष्ट्रीय जागृति आरम्भ हुई, तबसे तो इनके कुत्सित कार्योंकी कुछ गिनती ही नहीं रह गयी। ज्यों-ज्यों भारतमें स्वतन्त्रता-का भाव पैदा होने लगा, त्यों-त्यों ये लोग उसके कुचलनेके लिए नये-नये कानूनोंकी रचना करने लगे। सन्देहवश बिना किसी पुष्ट

प्रमाणके किसीको गिरफ्तार कर लेना, अभियोगके पहले हवालातमें बन्द रखना, किसीके मकानमें जबर्दस्ती घुस जाना आदि उन्हीं कानूनोंके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। भारतीय शासनविधानमें जनताकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका इस प्रकार अपहरण कर लिया गया है कि कोई भी भारतवासी बिना किसी कारणके भी गिरफ्तार कर लिया जाता है और सरकारी कर्मचारीके अपर्याप्त प्रमाण ही पर्याप्त मानकर जेलमें ठूँस दिया जाता है। यह बात आजकल रातदिन आँखोंके सामने गुजर रही है। इसके अतिरिक्त निम्न-लिखित और भी ऐसे कानून हैं, जिनके द्वारा प्रबन्धक-विभाग स्वच्छन्दता-पूर्वक किसी भी व्यक्तिको गिरफ्तार कर लेता है:—

बङ्गाल रेगुलेशन (३) १८१८ के प्रारम्भमें लिखा है कि "चूँकि राष्ट्रकी स्थितिके कारण कभी-कभी इस बातकी आवश्यकता होती है कि उन व्यक्तियोंकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता अपहरण कर ली जाय और उन्हें बन्धनमें रखा जाय, जिनके ऊपर अभियोग चलानेके यथेष्ट प्रमाण न हों या किसी कारणसे उनपर अभियोग चलाना अनुचित या असम्भव हो।" मद्रास रेगुलेशन (२) १८१९ और बम्बई रेगुलेशन (२५) १८२७ का रचनारम्भ भी प्रायः इन्हीं शब्दोंमें हुआ है। इन तीनों रेगुलेशनोंमें यह भी लिखा है कि,— "केवल गिरफ्तारीके कारणसे ही राजनीतिक कैदी गिरफ्तार करके उस प्रान्तके अन्तर्गत किसी भी स्थान—किला या जेल—में बन्द किया जा सकता है।" इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि गिरफ्तार हुए व्यक्तिको अपने छुटकारेके लिए कोई भी यत्न नहीं है। इन कानूनोंद्वारा व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका अपहरण कर लेनेसे हमलोगोंका जीवन बिलकुल ही खतरेमें पड़ा हुआ है। हमलोग बिना कुछ कारण बताये ही जेलमें ठूँस दिये जाते हैं और कुछ सुनायी नहीं की जाती। पकड़नेवाले या मुकद्दमा चलानेवाले सरकारी कर्मचारियोंको सरकारने

इतनी आजादी दे दी है कि वे दुश्मनीके कारण झूठा अभियोग लगा हमें गिरफ्तार कर लेते हैं, किन्तु हमलोग उनका एक बाल भी बाँका नहीं कर सकते।

पर इङ्गलैंडके अधिवासियोंकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका जरा भी अपहरण नहीं किया गया है। वहाँपर बिना किसी कानूनी कार्यवाही-के न तो कोई किसीको जेल दे सकता है, न गिरफ्तार कर सकता है और न उस समयतक किसी तरहकी शारीरिक या मानसिक यन्त्रणा ही दे सकता है,—जबतक कि उसका अभियोग प्रमाणित न हो जाय। यदि कोई नाहक गिरफ्तार भी कर लिया जाता है तो वह उसके ऊपर खुली अदालतमें अभियोग चला सकता है और "हैबि-यस कार्प्स ऐक्ट" के द्वारा छूट सकता है। वहाँपर एक ही नियम सरकारी कर्मचारी और जनता दोनोंके लिए है, अर्थात् किसीपर झूठा अभियोग लगानेपर सरकारी कर्मचारी भी उसी प्रकार दण्डसे दण्डित किये जाते हैं, जिस प्रकार अभियोग प्रमाणित होनेपर जनता दंडित की जाती है। पर भारतमें इससे विपरीत है। प्रो० डिसीने लिखा है कि,—

"जहाँपर इस तरहकी स्वच्छन्दता या आत्म-निर्णय है, वहाँ थोड़ी बहुत मनमानी भी हो सकती है और जहाँ मनमानी होती है, वह चाहे राजसत्ता हो या प्रजासत्ता, कानूनन सुरक्षित नहीं रह सकती। भारतके जालिम कानूनोंमें यही दोष है।" आगे चलकर आपने और भी कहा है कि,—"यद्यपि भारतमें फ्रान्स आदि राष्ट्रोंकी भाँति विधा-यक नियम नहीं बने हैं तथापि अधिकांश सरकारी नौकर साधारण प्रचलित कानूनोंके प्रयोगसे बरी हैं। अर्थात् जो नियम प्रजापर लागू हैं, वे उनपर नहीं लग सकते।"

अदालतोंमें जो धींगाधींगी है, उसके सम्बन्धमें इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि सरकार पहलेहीसे अभियुक्तका फैसला सोच लेती है। गोरोंके साथ भिन्न बर्त्ताव है, भारतीयोंके साथ भिन्न।

सिरोलवाले मामलेका विलायतमें फैसला हो जानेपर जब लोकमान्य तिलक भारत आये, तब उन्होंने भी कहा था कि,—"सिरोलके मामलेमें जो फैसला विलायतमें मुझे सुनाया गया, उससे मुझे एक नया अनुभव हुआ है। वह अनुभव यह है कि अभीतक तो मैं यह समझता था कि किसी भारतीय और अङ्गरेजके बीच मामला चलने पर सिर्फ भारतमें अन्याय पक्षपात किया जा सकता है, पर अब मेरी यह दृढ़ धारणा हो गयी कि विलायतमें भी भारतीयोंके साथ न्याय नहीं किया जा सकता।"

साधारण कानूनमें सरकारके अविश्वासका पहला नमूना १८५७ का 'स्टेट अफेन्स ऐक्ट' है। इस विधानमें लिखा है कि,—"यदि किसी प्रान्तकी सरकारने यह सूचित किया कि उसके शासनके भीतर अमुक जिलेके लोगोंने बलवा किया है, तो उस प्रान्तकी सरकारको यह अधिकार होगा कि वह उन सब लोगोंपर अभियोग चलानेके लिए—जिनका बलवेसे सम्बन्ध सूचित हो—एक कमीशन अदालत बैठावे। प्रान्तीय सरकार उस अदालतको यह भी अधिकार दे देगी कि वह उन अभियुक्तोंका विचार बिना असेसरोंकी सहायताके करे और उस अदालतके विचार अन्तिम विचार हों......किन्तु यह नियम यूरोपमें उत्पन्न या ब्रिटिशप्रजा तथा उनकी सन्ततिके लिए लागू नहीं होगा।" इसके सिवा १६०८ का 'क्रिमिनल ला एमेण्डमेंट ऐक्ट' और १६१६ का अनार्किकल और रिवोल्यूशनरी क्राइम्स ऐक्ट हैं। इनका सार यह है कि जिस समय मैजिस्ट्रेट अभियुक्तके मुकद्दमेकी जाँच कर रहा हो, उस समय उसकी विशेष आज्ञा बिना न तो स्वयं अभियुक्त उपस्थित रह सकता है, न उसकी ओरसे और कोई पैरवी करनेवाला ही इजलासमें जा सकता है।

इस समय प्रेस या छापाखानोंके द्वारा ही सारे देशोंमें प्रचारका काम हो रहा है। भारतमें भी यही बात है। इसलिए सरकारने

इसका भी गला घोंटे विना नहीं छोड़ा। इस सम्बन्धमें पहला कानून सन् १८६७ में बना था। इसका नाम था 'प्रेस ऐण्ड रजिस्ट्रेशन आफ बुक्स ऐक्ट'। इसके बनानेका मुख्य उद्देश्य छापाखानों और समाचार पत्रोंपर नियन्त्रण रखना था। इस विधानमें लिखा था कि कोई व्यक्ति ब्रिटिश-भारतमें पुस्तक या समाचार-पत्र प्रकाशित करनेके लिए तबतक प्रेस नहीं खोल सकेगा, जबतक कि वह अपने जिलेके मैजिस्ट्रेटके पास इस बातकी लिखित सूचना न दे दे कि अमुक स्थानपर हम प्रेस खोलना चाहते हैं। ऊपरके विधानकी नीचे लिखी शर्त्तोंको पूरी किये विना न तो कोई व्यक्ति समाचार-पत्र निकाल सकता है और न सार्वजनिक मामलोंपर टीका-टिप्पणी ही कर सकता है।

१—प्रत्येक समाचार-पत्रका मुद्रक और प्रकाशक अपने यहाँके जिला मैजिष्ट्रेटकी अदालतमें उपस्थित होकर यह प्रार्थनापत्र उपस्थित करेगा कि हम अमुक पत्रके मुद्रक और प्रकाशक हैं। २—मुद्रण और प्रकाशनके स्थान-परिवर्तनके साथ पत्रद्वारा सूचित करना पड़ेगा। ३—यदि मुद्रक या प्रकाशक ब्रिटिश-भारतके बाहर जायँ तो उनके स्थानपर दूसरे व्यक्तिका नाम देनेकी सूचना देनी होगी। दण्ड-विधानमें लिखा गया था कि,—

"यदि कोई भी मुद्रक और प्रकाशक अपना पूरा पता दिये बिना किसी पुस्तकका मुद्रण और प्रकाशन करेगा, तो उसे दो हजार रुपये जुर्माना या दो वर्षकी सादी सजा मिलेगी और यदि कोई व्यक्ति बिना प्रार्थना-पत्र उपस्थित किये ही छापाखाना चलाने लग जायगा तो उसे भी ऊपरका ही दण्ड दिया जायगा।"

पर इस ऐक्टके बननेसे भारतीय प्रेसोंकी कुछ विशेष हानि नहीं हुई थी। प्रेसोंकी स्वतन्त्रतापर पहला और सबसे भीषण कुठाराघात सन् १९१० के इण्डियन प्रेस ऐक्टने किया। इसमें यह शर्त लगा दी गयी

कि प्रत्येक मुद्रकको अपने जिला मैजिस्ट्रेटके आज्ञानुसार छापाखाना खोलनेके लिए ५००) से लेकर २०००) तककी रकम जमानतमें देनी पड़ेगी। इस ऐक्टका समूचे भारतने विरोध किया, पर फल कुछ न हुआ।*

इण्डियन प्रेस ऐक्टका फल यह हुआ कि कई लाख रुपये सरकारको केवल जमानत जब्तीमें मिले। बहुतसे पत्रोंको तीन-तीन चार-चार वार जमानत देनी पड़ी। इनमें 'अमृतवाजार-पत्रिका' (कलकत्ता) और साप्ताहिक 'प्रताप' (कानपुर) का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन पत्रोंसे ५००) की जमानत जब्त करके २०००) की और फिर उसे जब्त करके ५०००) की जमानत ली गयी थी। इस तरह सिर्फ इन दो पत्रोंसे सरकारने बीसों हजार रुपया लिया। इस ऐक्टसे भारतकी आर्थिक हानिके अतिरिक्त उसे और भी एक बहुत बड़ा कष्ट मिला। इसकी चौथी धारामें लिखा था कि—यदि कोई छापाखाना प्रान्तीय सरकारके विचारमें—जिसने जमानत जमा किया हो—ऐसे समाचार या पुस्तकोंका प्रकाशन करता है, जिनके स्पष्ट या प्रकारान्तरमें ब्रिटिशशासनके प्रति घृणा उत्पन्न होनेकी सम्भावना हो तो प्रान्तीय सरकार आज्ञा-पत्र-द्वारा उस छापेखानेकी जमानत और कुल पत्र या पुस्तककी सारी प्रतियाँ जब्त कर ले। धारा ५ और ६ में लिखा था कि यदि किसी प्रेसकी जमानत जब्त हो गयी हो और कोई दूसरा व्यक्ति मुद्रक और प्रकाशक होनेकी इच्छासे प्रार्थना पत्र भेजे तो

---

* सन् १९२२ में प्रेस ऐक्टमें जो सुधार हुआ है, उसके अनुसार अब मुद्रकोंपर कोई झोंकी नहीं रही। प्रकाशकों और सम्पादकोंके ऊपर सारी जिम्मेदारी आ गयी है। सजाकी मियाद २ वर्षकी जगह ६ मासकी कर दी गयी है। इस ऐक्टके लिए ६ सदस्योंकी कमेटी बैठायी गयी थी। इस कमेटीने करीब १९ हजार रुपये व्यय किये, पर उनके सुधारोंसे प्रेसोंका कुछ भी लाभ नहीं हुआ।

उससे १०००) से लेकर १००००) तककी जमानत मैजिस्ट्रेट माँग सकता है। धारा २६ में लिखा था कि इस विधानके कारण कोई व्यक्ति दूसरे विधानमें आये अभियोगोंके कारण दण्ड पानेसे बरी नहीं हो सकता, अर्थात् इसके अनुसार दण्डनीय होते हुए भी यदि वह किसी अन्य विधानके अनुसार दण्डनीय पाया जायगा तो उसे दण्ड दिया जा सकता है। इस २६ धाराके अनुसार न जाने कितने प्रेसवालोंको मानहानिका मुकद्दमा चलाकर सजा दी गयी और न जाने कितने रुपये उनके अदालतबाजीमें खर्च करा दिये गये। यदि जमानत जब्ती और मानहानिके मुकद्दमे चलाकर कराये हुए खर्चके रुपये जमा होते, तो कम-से-कम आठ आना सैकड़ा ब्याज-दरसे उन रुपयोंका लगभग तीन लाख रुपया सालाना सूद होता। पर इतनी बड़ी रकम इस ऐक्टकी बदौलत गायब हो गयी।

यद्यपि यह ऐक्ट सुधारा तो गया पर उससे देशका फायदा कुछ भी न हुआ। जबतक १२४ A ताजीरात हिन्द बना रहेगा, तबतक भारतीयोंके लिए कुछ भी सुधारनेका फल न मिलेगा। इसी धाराके अनुसार प्रेस-ऐक्टमें सुधार होनेके बाद कितने ही आदमी जेलमें भरे गये हैं। यहाँ तो प्रेसवालोंकी इस तरह हत्या की जा रही है, पर इङ्गलैंडमें इससे बिलकुल ही विपरीत बात है। वहाँ प्रत्येक व्यक्तिको लिखने और बोलनेकी पूर्ण स्वतन्त्रता दी गयी है।

जिस प्रकार प्रेस ऐक्ट-द्वारा भारतीयोंके लिखनेकी स्वतन्त्रताका सरकारने अपहरण किया है, उसी तरह सेडीशस मीटिंग्स ऐक्ट द्वारा बोलनेकी भी। अन्य देशोंकी तरह पहले बोलनेकी स्वतन्त्रता भारतमें भी थी। पर सन् १९०७ में इस आशयका पहला कानून बना दिया गया कि,—"जिन सभाओंसे सार्वजनिक शान्तिके भंग होनेकी सम्भावना हो, उन सार्वजनिक सभाओंको रोकनेके लिये उचित व्यवस्था करना इस विधानका उद्देश्य है। इस विधानका

प्रयोग उसी प्रान्तमें होगा, जिसके लिए भारतसरकार सूचना निकालेगी। धारा ७ में लिखा है कि यदि ऐसी सभामें किसीके भाषणसे शान्ति भंग होनेकी आशङ्का प्रतीत हो, तो वह बिना वारण्टके गिरफ्तार किया जा सकता है और ६ मासकी सजा पा सकता है। धारा ९ बतलाती है कि यह विधान स्वीकृत हो जानेके बाद तीन वर्षतक प्रयोगमें रहेगा, पर इसे स्वीकृत हुए आज १५ वर्ष हो गये और अभीतक उठाया नहीं गया।

इतने कानूनोंका दिग्दर्शन करा देनेके बाद अब हम आर्म्स ऐक्टकी ओर झुकते हैं। यद्यपि इस समय सब सभ्य राष्ट्रोंका बनाया हुआ 'राष्ट्रसंघ' विश्वव्यापी शान्तिके लिए निरस्त्रीकरणकी चिन्तामें पड़ा हुआ है, पर उनकी यह एक भारी भूल है। क्योंकि शान्तिके हितार्थ दुष्टोंके बढ़े हुए दलोंका नाश करनेके लिए अस्त्र-शस्त्रके बिना कहींकी भी सरकार कुछ नहीं कर सकती। हाँ यदि भारतकी प्राचीन सभ्यता सारे देशोंमें व्याप्त हो जाय, तो इस बातकी आवश्यकता अवश्य ही नहीं रह सकती। पर जबतक ऐसा नहीं होता, तबतक तो हम इसपर अपना मत प्रकट कर ही सकते हैं। भारत-सरकारने अस्त्र-शस्त्र न रखनेकी कड़ी ताकीद कर भारतको एकदम हीनबल बना दिया। भारतीय स्वराज्यके विरोधी सबसे प्रबल कारण यही उपस्थित करते हैं कि स्वराज्यके बाद भारत बाहरी शत्रुओंसे अपनी रक्षा आप नहीं कर सकेगा। पर भारत-सरकारने भारतीयोंकी सैनिक योग्यता घटानेकी जो चेष्टाएँ की हैं, उनपर वह ध्यान नहीं देती। बिहारके भूतपूर्व गवर्नर लार्ड सिंह ने भी सन् १९१५ की बम्बई-कांगरेसके सभापतिकी हैसियतसे इस व्यवस्थाकी घोर निन्दा की थी। आपने कहा था:—

"जिस मनुष्यके अधिकारमें अपनी रक्षाकी सत्ता नहीं है, वह मनुष्य किसी भी राज्यकी प्रजा कहलाने योग्य नहीं हो सकता।

अशान्तिको शान्त करनेका यत्न दूसरोंके हाथमें है। बलवाइयोंको दबानेके लिए दूसरे नियत हैं। यदि सारे देशपर किसी तरहकी आपत्ति आनेवाली है तो उसका निवारण और देशकी रक्षा दूसरे ही कर सकते हैं। आजतक भारत-सरकारने इस विषयमें केवल उदासीनता ही नहीं दिखलायी है; बल्कि जानबूझकर प्रत्येक साध्य उपायोंद्वारा प्रजाकी सांग्रामिक शक्तिको दबानेकी चेष्टा की है।"

"एक तरफ तो यूरोपियन, यूरेशियन और पश्चिमी हवशी जातियाँ शस्त्र धारण करके स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण कर सकती हैं, पर दूसरी ओर इस देशके शान्ति-प्रिय निवासी भी, चाहे वे कितने ही इज्जतदार क्यों न हों—किसी तरहके हथियार नहीं बाँध सकते।"

इधर आर्म्स ऐक्टमें कुछ सुधार किया गया है, पर वह भी सिर्फ दिखाने-मात्रके लिए। उससे देशका न तो कुछ उपकार हुआ है और न होगा। सुधार होनेपर आज भी लाइसेंस लेनेमें जिन कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है वे किसीसे छिपी नहीं हैं। आज भी पूर्ववत् धींगा-धींगी बनी हुई है। महा मामूली हाँ हुजूरोंको तो लाइसेंस दे दिया जाता है, पर शान्ति-प्रिय स्पष्ट वक्ताओंसे दिया हुआ लाइसेंस भी छीन लिया जाता है।

अब हम एक दृष्टि रौलट ऐक्टपर डालते हैं। इसका दूसरा नाम काला ऐक्ट है। इस ऐक्टमें दो धाराएँ थीं। इण्डियन क्रिमिनल ला एमेण्डमेण्ड (Indian Criminal Law Amendment) १९१९ और इण्डियन क्रिमिनल ला इमर्जेन्सी (Indian Criminal Law Emergency Powers) १९१९ इन दोनों धाराओंका अभिप्राय बड़ाही भयानक और अमानुषिक था। इस ऐक्टके अनुसार पुलिस किसी भी दो व्यक्तिको गुप्त परामर्श करते देखकर सन्देह होनेपर गिरफ्तार कर सकती थी और

उसका विचार बिना किसी सफाई या बिना वकीलके होनेकी व्यवस्था थी। यहाँतक कि विचार होते समय अभियुक्त भी स्वयं उपस्थित नहीं रह सकता था।

इस ऐक्टका समूचे भारतने एक स्वरसे विरोध किया था। भारतके प्रसिद्ध विद्वान् माननीय पण्डित मदनमोहनजी मालवीय कई दिनोंतक लगातार बड़ी व्यवस्थापक-सभामें विरोध करते रह गये; पर कुछ सुनायी न हुई और सरकारने इसे पास ही करके छोड़ा। इस ऐक्टके पास करनेका फल यह हुआ कि कई हजार भारतीयोंकी व्यर्थमें जानें गयीं, कितने ही सन्देहवश पकड़कर सताये गये और अन्तमें यह रद्द भी कर दिया गया।

सोचनेकी बात है कि पहले तो नौकरशाही देशकी बिलकुल परवाह न कर काम करती है और फिर उसमें जब सफल नहीं होती, तो किसी-न-किसी बहानेसे उसे रद्दकर देती है। बंग-विच्छेद और रौलट ऐक्ट दोनों भूलोंको करके नौकरशाहीने कम-से-कम पचास हजार आदमियोंका किसी-न-किसी तरहसे नाश कर दिया। इन पचास हजार भारतीयोंकी हत्या करनेवाली वास्तवमें नौकरशाही है। यदि भारतीयोंकी प्रार्थना पहले ही स्वीकार कर ली गयी होती, तो ये हृदय विदारनेवाली इतनी हत्याएँ क्यों होतीं? पर नौकरशाही इसपर ध्यान दे तब तो! यदि गलतियोंका मजा नौकरशाहीको चखाया गया होता, तब तो वह ध्यान देती! जब वह जानती है कि भयङ्कर-से-भङ्कर काम करनेपर भी हमारा एक बाल भी टेढ़ा नहीं हो सकता, तब भला वह क्यों खयाल करने लगी? इतनी बड़ी जिम्मेदारीका काम नौकरशाहीपर होते हुए भी वह बिलकुल बेजिम्मेदार है। आश्चर्य्य तो यह है कि इतनी बड़ी जिम्मेदारीका काम ऐसी बेजिम्मेदारीसे करते हुए भी अङ्गरेज लोग अपनेको राज्य करनेके योग्य समझते और भारतको स्वराज्यके अयोग्य कहनेकी

नीचता करनेमें जरा भी संकुचित नहीं होते। क्या ऐसी बड़ी गलतियोंपर नौकरशाहीको पीस नहीं देना चाहिये था ? पर यहाँ पीसना तो दूर रहा उलटा काला कर्म करनेवाले जेनरल डायर और सर माइकेल ओडायर-सरीखे नर-पिशाचोंकी प्रशंसा की जाती और उन्हें पेन्शन दी जाती है। भला यह साँपको दूध पिलाकर पालना नहीं तो और क्या है ?

इस तरहके बहुतसे कानूनोंकी रचनाकर सरकारने भारतीयोंका बोलना, अपने भाइयोंसे अपने दुःखोंका कहनातक बन्द कर दिया। ज्यों-ज्यों भारतमें स्वतन्त्रताकी आवाज तेज होती जा रही है त्यों-त्यों सरकार भी कानूनोंकी भयंकर मूर्त्तियाँ खड़ी करती जा रही है। इस साल (१९२९) में भी दो नाशकारी कानूनोंकी रचनाकी गयी है, एकका नाम है "ट्रेड डिस्प्यूट" और दूसरेका "पब्लिक सेफ्टी"। ये दोनों घातक कानून हैं। पहला तो मजदूर-संगठनको रोकनेके लिए बनाया गया है और दूसरा साम्यवादका प्रचार रोकनेके लिए। इन दोनों कानूनोंकी कथा तो आगे चलकर सुनायी जायगी, यहाँ तो केवल इतना ही कहना है कि आजकल किसी आन्दोलनको कांस्टिट्यूशनल एजिटेशन (कानूनी) और अनकांस्टिट्यूशनल एजिटेशन (गैर-कानूनी) बनाना सरकारके हाथका खेल हो रहा है। साधारण-से-साधारण बातोंपर सरकार इतना भयंकर दण्ड दे रही है जिसे देखकर दाँतों-तले अँगुली दबानी पड़ती है। इसके सम्बन्धमें आजसे दस वर्ष पहले लार्ड मिण्टोने भी लार्ड मोर्लेको लिखा था,—

"I must confess that I am watching with the deepest concern and dismay the thundering sentences that are now being passed for sedition etc. I read to day that stone throwers in Bombay are getting twelve months. This is really are outrage-

ous. The sentences on the two Tinneveli men are wholy indefensible; one gets transportation for life, the other for ten years. I am to have the judgement by the next mail, and meanwhile thinks he has said enough when he tells me that "that the learned judge was in no doubt as to the criminality of the two men." This may have been all right, but such sentences !! They cannot stand. I can not on any terms consent to defend such monstrous things. I do therefore urgently solicit your attention to these wrongs and follies. We must keep order but excess of severity is not the path of order. On the contrary it is the path to the bomb."

अर्थात् "राज-विद्रोहके लिये आजकल जो भयानक दण्ड दिये जा रहे हैं, उन्हें मैं अत्यन्त चिन्ता और भयके साथ देख रहा हूँ। मैंने आज पढ़ा है कि बम्बईमें पत्थर फेंकनेके अपराधमें लोगोंको बारह-बारह मासकी सजाएँ हुई हैं। वास्तवमें दण्ड बहुत ही अनुचित है। तिनवेलीके दो आदमियोंको क्रमशः आजन्म कालापानी और दस वर्षकी कठोर सजाएँ जो हुई हैं, वे पूर्णरूपसे असमर्थनीय हैं। दूसरी डाकसे मेरे पास इसका फैसला पहुँच जायगा। यह बात सच हो सकती है कि जजको इनके अपराधोंके विषयमें सन्देह न होगा। पर इसपर ऐसे दण्ड! इन दण्डोंका समर्थन होही नहीं सकता। मैं इस प्रकारकी भयानक बातोंका पक्ष नहीं ले सकता। अतः मैं आपका ध्यान इन भूलों और बदतमीजियोंकी ओर आकर्षित करता हूँ। हमें व्यवस्था रखनी चाहिये, पर अधिक

कड़ाई व्यवस्थाका मार्ग नहीं; बल्कि वह कड़ाई तो बमकाण्ड होनेका मार्ग है।"

स्वर्गीय लोकमान्य तिलक-सरीखे संसार-श्रेष्ठ पण्डित, अरविन्द घोषके समान योगी, महात्मा गान्धी-सरीखे साधु और लाला लाजपतराय जैसे राजनीतिज्ञ पुरुषोंको सरकारने जालिम कानूनोंकी चक्कीमें पीस दिया! देखें, यह अङ्गरेजोंका जालिमाना बर्त्ताव कबतक रहता है।



युगान्तर

"कष्ट दमनका उपाय" शीर्षक प्रकरणमें सन् १६०४-०५ तककी परिस्थितिका दिग्दर्शन कराया जा चुका है। पाठक समझ गये होंगे कि उस समयतक जनताको यह आशा थी कि यह अङ्गरेजी सरकार अवश्य ही एक-न-एक दिन हमारी आर्त्त-पुकार सुनेगी। देशके नेता भी जनताको यही आश्वासन दिलाते चले आ रहे थे। किन्तु शीघ्र ही यह मालूम हो गया कि इस तरहकी आशासे अङ्गरेजोंसे कुछे पानेकी आशा करना बिलकुल भूल है। क्योंकि पहले तो अङ्गरेज लोग यह कहकर काङ्गरेसकी वार्तोंपर ध्यान नहीं देते थे कि काङ्गरेसकी पुकार समूचे देशकी पुकार है ही नहीं, यह तो चन्द इने गिने सड़ियल दिमागवाले भारतवासियोंकी सभा है; पर जब काङ्गरेसमें तीस-तीस पैंतीस-पैंतीस हजार जनताके प्रतिनिधि अपना विचार प्रकट करनेके लिये जमा होने लगे और चारों ओर स्वतन्त्रताकी आवाज सुनायी पड़ने लगी, तब भी अङ्गरेजोंने यही कथन जारी रखा। यहाँतक कि सन् १६२१ में काङ्गरेसके एक करोड़ मेम्बरोंके हो जानेपर भी अङ्गरेजोंका वही कहना बना रहा—यद्यपि संसारमें किसी भी संस्थाके एक करोड़ मेम्बर नहीं हैं।

सन् १६०० में स्वर्गीय लोकमान्य तिलक महाराजके चार-पाँच लेख और दो वक्तृताएँ बड़ी जोरदार हुईं। उनसे देशमें एक नवीन जीवनका संचार हो गया। पर थोड़े ही दिनोंमें जनताका वह उत्साह जाता रहा। अचानक बंग-विच्छेदके समय उत्साहका फिर देशमें संचार हुआ। लोगोंको यह ज्ञान हुआ कि अब देश अवश्य साल छः महीनेके भीतर स्वतन्त्र हो जायगा। स्वदेशी-आन्दोलनसे

देशमें जागृति तो अवश्य ही आशातीत हुई, पर सृष्टिके नियमानुसार जनताकी सारी आशाओंपर पानी फेरकर देशकी वह जागरितावस्था भी सुषुम्नावस्थामें विलीन हो गयी । इसलिए सबलोग हताश होकर चुप्पी साध बैठ गये । लोगोंकी यह दृढ़ धारणा हो गयी कि अब सैकड़ों वर्षोंतक देश स्वराज्यकी आवाज निकालनेके लायक न होगा ।

लोकमान्य तिलकने जनताको समझाया कि—"इसमें हताश होनेका कोई भी कारण दृष्टिगत नहीं होता । किसी देशमें स्वतन्त्रताकी लहर किसीके पैदा करनेसे नहीं उठती, वरन् वह अपनेआप दैवी प्रेरणासे उत्पन्न हुआ करती है । जिस तरह समुद्रमें ज्वारके बाद भाटा और भाटेके बाद ज्वारका आना अनिवार्य है, उसी तरह देशके आन्दोलन रूपी समुद्रमें ज्वार और भाटा स्वाभाविक ही आया करता है । कभी तो आन्दोलन इतनी ऊँचाई पर निकल जाता है कि स्वतन्त्रता देवीकी मूर्त्ति बहुत समीप दिखायी देने लगती है और कभी वही आन्दोलन शिथिलताके गहरे गढ़ेमें ऐसा अदृश्य हो जाता है कि फिर उसका ऊपर आना ही असम्भव सा प्रतीत होने लगता है । इसलिये यह कदापि सम्भव नहीं कि इस 'बंग-विच्छेद' की क्षति से भारतका आन्दोलन मर मिटे । यह युग भाटेका है, आन्दोलन जारी रखना हमारा कर्त्तव्य है । यह निश्चय है कि फिर शीघ्र ही तीव्र वेगसे ज्वार आवेगा ।

समयने सचमुच ही पलटा खाया । स्वदेशी आन्दोलनके बाद वास्तवमें देश बहुत दिनोंतक मृतकसा पड़ा रहा । पर अनायासही वह जाग उठा । जिस समय ७ फरवरी सन्१९१९ में देशके लाख चिल्लानेपर भी सरकारने रौलट बिल पास किया, उसी समय देशमें नवीन युगका पदार्पण हुआ । महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गाँधीने देशमें कानून न माननेके लिये सत्याग्रह शुरू करनेकी घोषणा की । वास्तवमें

रौलट ऐक्ट इसीके योग्य था भी। सत्याग्रह-घोषणाके समय लोकमान्य तिलक महाराज विलायतमें थे। इसीलिये उस समय देशके सामने बड़ी जटिल समस्या उपस्थित हो गयी थी। लोकमान्य तिलक भारतके सर्वमान्य-नेता और संसारके महापण्डित थे। देशके नेतृत्वकी बागडोर उनके हाथमें थी। उनका प्रत्येक वाक्य भारतवासियोंके लिए ब्रह्मवाक्य था! वास्तवमें लोकमान्य तिलककी तरह प्रभावशाली नेता संसारमें कोई हुआ या नहीं, इसमें सन्देह है। विलायतमें आपहीके आठ मासके निवासका प्रभाव है कि आज बहुतसे उदार अङ्गरेज भाई भारतवासियोंके लिये प्राण देनेको तैयार हैं। महाशय विपिनचन्द्र पालने विलायतसे लौटकर अपने एक भाषणमें कहा था कि,—"ऐ भारतके नवयुवको, तुम्हें तो मौज उड़ानेके सिवा कुछ और नहीं सूझता है, पर तुम्हारा बूढ़ा तिलक विलायतमें प्रतिदिन बीस घण्टा देशका काम करता और सिर्फ चार घण्टा आराम करता है। भारतको स्वतन्त्रता देवीके मन्दिरतक पहुँचानेके पथको उसने इतने ही थोड़े दिनोंमें (उस समय तिलक महाराजको विलायत गये पाँच महीने हुए थे) इतना साफ और सीधा बना दिया है कि सारा भारतवर्ष सैकड़ों बर्षोंतक लगा रहनेपर भी वह काम न कर पाता।" अस्तु, तिलक महाराजके ऐसे पाण्डित्य और ऐसी लोकप्रियताके कारण देशके सामने जटिल समस्याका उपस्थित होना स्वाभाविक ही था। महात्मा गाँधीने भी सत्याग्रह जारी हानेके बाद कहा था कि,—"इस समय हमारे पूज्य लोकमान्य सात हजार मीलकी दूरीपर बैठे हुए हैं। देशमें ऐसा कोई भी नहीं है जो हमारे भलेबुरे कामोंका निरीक्षण करे। इस समय हम लोगोंको बहुत ही सोचसमझकर काम करना चाहिये।"

जो हो, कठिनाईके होते हुए भी देशने म० गाँधीका साथ दिया। चारों ओर कानून तोड़नेके लिये सभाएँ होने लगी। निश्चय हुआ

कि गवर्नमेण्टके जितने गैरकानूनी कानून हैं सब-के-सब एक-एककर तोड़े जायँगे, किन्तु पूर्ण शान्ति रखकर ही यह काम किया जायगा। कई आदमियोंकी एक कमेटी इसलिये बनायी गयी कि वह यह विचार कर बतलावे कि पहले कौनसा कानून किस तरह और उसके बाद कौनसा कानून किस तरह तोड़ा जायगा। तारीख ६ अप्रैल १९१९ को सत्याग्रह दिन रखा गया। निश्चय हुआ कि सबलोग ६ अप्रैलको व्रत रहकर सत्याग्रहमें सफलता प्राप्त होनेके लिये ईश-प्रार्थना करें। तदनुसार ही देशके छोटे-बड़े, अमीर-गरीब, पण्डित-मूर्ख सब लोगोंने अपना काम-काज बन्दकर, यहाँ तक कि देहातोंमें किसानोंने अपनी दौरी बन्दकर और शहरोंमें आफिसोंके और ट्रामवे कम्पनियोंके नौकरों, एवं रेलके देशी कर्मचारियोंने भी अपना काम बन्दकर,—उस दिन व्रत रहकर ईश-प्रार्थना की। उस दिन रेलें भी बन्द हो गयी थीं। संसारके इतिहासमें ६ अप्रैलका दिन सदा अमर रहेगा।

योंतो ईश-वन्दना सब प्रान्तमें हुई, पर अपनी सच्ची आवाज ईश्वरके पास पहुँचानेका सौभाग्य पञ्जाब प्रान्तको ही प्राप्त हुआ। इसका श्रेय भारत-हितैषी (!) सर माइकेल ओडायर और जेनरल डायरको है, जिनकी अनुपम अनुकम्पासे सच्ची दर्द भरी आवाज निकली। वास्तवमें देखा जाय तो लार्ड कर्जनके बाद येही दो महानुभाव भारतके सच्चे रक्षक (!) आये भी। आवाज पहुँचानेका सौभाग्य पञ्जाबको ही प्राप्त होनेका मूल कारण यह है कि जब जर्मन-महासमर प्रारम्भ हुआ था, जब ब्रिटिश-साम्राज्यका अस्तित्व खतरेमें पड़ा हुआ था और उसके सामने जीवन-मरणका प्रश्न उपस्थित था, जब जर्मन-सेना विजय प्राप्त करती हुई फ्रान्सकी रण-भूमिमें बराबर अग्रसर हो रही थी, तब इङ्गलैण्डके महामंत्रियोंने हमलोगोंसे सहायता लेनेके लिए खूब आश्वासनपूर्ण बातें कीं। कहा गया कि यह युद्ध मानवजातिकी स्वाधीनताके लिए हो रहा है। इसकी विजयमें

भारतका प्रकाशमय भविष्य गर्भित है। उस समय भारतके मुसलमानोंके सामने बहुत ही गूढ़ प्रश्न उपस्थित था। क्योंकि जर्मनकी ओर टर्की था, इसलिए अङ्गरेजोंकी ओरसे टर्कीका सामना करनेके लिए भारतीय मुसलमानोंका खड़ा होना अपने इस्लामको खतरेमें डालना था। इङ्गलैंडके महा-मंत्रियोंने मुसलमानोंको सान्त्वना दी कि यदि हमारी विजय होगी, तो इस्लामपर जरा भी धक्का पहुँचा, ब्रिटिश-सरकार अपनी सबसे बड़ी शक्ति मुसलमान जनताको असन्तुष्टकर उसका दिल कभी न दुखायेगी।

अङ्गरेजोंके ऐसे दुःखमय समयमें भारतकी भोली-भाली हिन्दू-मुसलमान जनताने उसकी पूरी सहायता की। जर्मन-महासमरमें १० करोड़ रुपया रोज अङ्गरेजोंका खर्च था। यह खर्च लगातार चार साढ़ेचार वर्षोंतक होता रहा। अनुमान किया जा सकता है कि १० करोड़ रुपया रोजके हिसाबसे साढ़ेचार वर्षमें कितने रुपये इङ्गलैण्डके खर्च हुए होंगे। पर यह धन इङ्गलैण्डकी कमाईका नहीं था; बल्कि इस पुस्तकमें जिन अत्याचारोंका वर्णन किया गया है, उन्हीं अत्याचारोंसे भारतकी कमाईका लूटा हुआ धन था। जाना जा सकता है कि अङ्गरेजोंने कितना धन भारतसे लूटकर अपने देशको धनाढ्य बनाया है। लड़ाईके प्रारम्भमें रिजर्वोंको मिलाकर भारतमें १ लाख ६४ हजार भारतीय सिपाही थे। लड़ाईके समय ७ लाख ६१ हजार और भरती किये गये। यहाँके वायसरायने उस समय भारतसे धन और जनके लिए अपील की थी। यदि उस समय देशके नेता चाहते तो अङ्गरेजोंको एक आदमी भी लड़ाईपर जानेके लिए भारतसे न मिलता। पर किसीने कुछ विरोध नहीं किया। गाँवोंमें जमीन्दारोंने अपनी शक्तिके अनुसार अधिक संख्या में रंगरूट दिये। महात्मा गांधीने भी बहुत बड़ी सहायता की थी। कुल ९ लाख ८५ हजार भारतीय सेना यहाँसे अङ्गरेजोंकी सहायता

करनेके लिए समुद्र-पार गयी। सेनामें कुछ बिना लड़नेवाले आदमी रहते हैं। उन आदमियोंकी संख्या पहले ४५ हजार थी। पर लड़ाई के समय ये भी ४ लाख २७ हजार और भरती किये गये। इनमें ३ लाख ६१ हजार समुद्र-पार भेजे गये। उस समय भारतने कुल १४ लाख ५७ हजार आदमियोंकी सहायता दी थी। १ लाख ७५ हजार जानवर भी यहाँसे भेजे गये थे। यहाँके सैनिकोंने पूरी वीरताके साथ अपना काम किया था। फ्रांसके रण-क्षेत्रमें जर्मनकी बढ़ती हुई सेनाकी गतिको भारतीय सैनिकोंने ही अपने अपूर्व शौर्यसे रोका था। भारतीय सेनाकी वीरतापर चकित होकर इङ्गलैण्ड और फ्रांसके सेनापतियों और मुसद्दियोंने उसकी प्रशंसा की थी। जेनरल फ्रेंचने लिखा था कि,—

The Indian troops have fought with utmost Steadfastness and gallentry, where ever they have been called upon.

अर्थात् "भारतीय सेना जब-जब बुलायी गयी, तब-तब वह बड़ी ही वीरता और मर्दानगीके साथ लड़ी।" लार्ड हाल्डेननें भी कहा था,—

Indian soldiers are fighting for the liberties of humanity as much as we ourselves.

अर्थात् "हिन्दुस्तानी सिपाही मनुष्य-जातिकी स्वाधीनताके लिए उसी प्रकार लड़ रहे हैं, जिस तरह हमलोग।"

स्वयं सम्राट् पञ्चम जार्जने जो सन्देशा भेजा था, उसमें भारतीय सैनिकोंके सम्बन्धमें आपने लिखा था कि,—

"ब्रिटिश और भारतके सैनिको, आपलोग सुख, दुःख, परिश्रम, सहिष्णुता, साहस और धैर्यके समय बराबर साथी रहे हैं। इस भीषण संग्राममें आपलोगोंने जिस साहस और वीरताका परिचय

दिया है, वह यूरोपके इतिहासमें चिरस्मरणीय रहेगा। इस अवस्थामें जो युद्ध छिड़ गया था, जब कि साम्राज्यकी अवस्था चिन्तनीय हो रही थी, आपने साम्राज्यको स्थित रखनेमें पूर्ण योग्यताके साथ काम किया है। फ्रांसमें आपने जो विजय प्राप्त की है, वह आपके अभिमानका कारण हो सकती है। मुझे पूर्ण आशा है कि आपलोग जिस रण-क्षेत्रमें खड़े होंगे, विजयी होंगे।"

प्रधान मन्त्री मि० आस्क्विथने कहा था—"भारतीय सैनिकोंकी वीरता देखकर प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता।" सर फ्रांसिस यङ्ग हस्वेण्ड ने लिखा था कि—"जिस समय हमारी सेना जर्मनोंकी मारसे व्याकुल होकर हताश हो रही थी, उसी समय भारतीय सैनिक युद्ध-क्षेत्रमें आये और अपनी अद्भुत शूरता तथा अतुल पराक्रमसे जर्मनोंको मार भगाया और नोवेचपेल गाँवपर अधिकार कर लिया। जिस प्रकारकी तैयारी जर्मनोंने वर्षोंसे कर रखी थी, उससे भारतीय सैनिकोंने ब्रिटिश, फ्रांस और बेलजियमकी रक्षा की। यह उनके साहसके लिए क्या प्रशंसा और अभिमानकी बात नहीं है? हमें उनका चिर-बाधित और कृतज्ञ होना चाहिए।"

इस तरह समुद्र-पार जाकर भारतीय सैनिकोंने अङ्गरेजोंकी प्राण-रक्षाके लिए अपने बाल-बच्चे, स्त्री, कुटुम्ब सबको हमेशाके लिए छोड़कर अपनी प्राणाहुति दी। युद्धके समय अङ्गरेजोंने कहा था कि जो भारतीय सैनिक युद्धमें काम आवेंगे, उनके घरवालोंकी भारत-सरकार पूरी रक्षा करेगी। पर युद्ध समाप्त होनेके बाद नौकर-शाहीकी वह बात हवा हो गयी। जरा भी ध्यान नहीं दिया कि युद्धमें काम आये हुए सिपाहियोंके बाल-बच्चोंका जीवन-निर्वाह किस तरह होता होगा। भारतमें अधिकांश घर ऐसे हैं, जो एक आदमीकी कमाईपर अवलम्बित हैं। उन प्राणाहुति देनेवाले सैनिकोंमें भी अधिकांश घर ऐसे ही थे। किन्तु सरकारने इसपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया।

सैनिकोंके अतिरिक्त भारतने धनकी बहुत बड़ी सहायता की थी। भूखे भारतसे २०० करोड़ रुपए उस समय भारत-सरकारने उधारकी तौरपर लिए थे। पर पीछे भोले भारतीयोंको भुलावा देकर एक सभा की गयी और उसमें प्रस्ताव, अनुमोदन, समर्थन, सब हाँ-हुजूरोंसे करा, यह प्रस्ताव भारतकी ओरसे पास किया गया कि भारतवासी ब्रिटिश-प्रजाके नाते दो सौ करोड़का दिया हुआ ऋण छोड़ देते हैं। यह विषय बड़ा ही हास्यास्पद है। पहले तो दो सौ करोड़ रुपये प्रजासे कर्ज लिये गये। पर उसके बाद वे रुपए निर्धन प्रजासे माफ भी करा लिये गये। कैसा अन्धेर है! प्रजामें इतनी बड़ी धन-राशि छोड़ देनेकी शक्ति हो या न हो, पर काम साधनेसे मतलब। सारांश यह कि पहले तो नौकरशाहीने कई अरब रुपया ऋणके रूपमें भारतसे ले लिया और पीछे स्वयं ही बिना भारतीयोंकी आन्तरिक इच्छाके वह ऋण माफ भी करा लिया। इस तरह दो अरब रुपये भारतके, बिना डकार लिए हजम कर लिए गये। अस्तु, इस तरह जर्मन-महासमरमें भारतने तन और धनसे अङ्गरेजोंकी सहायता की; अङ्गरेजोंकी विजय हुई।

विजयके बाद भारतकी की हुई सहायताके बदले उसे कुछ देना आवश्यक था। इसलिए सरकारने भारतको रौलट ऐक्टका पारितोषिक दिया। इस ऐक्टका संक्षिप्त वर्णन 'कानूनोंद्वारा भारतकी हत्या' शीर्षक प्रकरणमें किया जा चुका है। इस ऐक्टके पास करनेका भीतरी रहस्य यह था कि यूरोपीय संग्रामके बाद ब्रिटिश-सरकारको इस बातकी आशङ्का हुई कि क्रान्तिकारी दल जो भारतमें मौजूद है उसका सम्पर्क युद्ध-क्षेत्रसे लौटे हुए बेकार सैनिकोंके साथ होगा जिसके परिणाममें उपद्रव बढ़नेकी सम्भावना है। इसलिए रौलट साहबकी अध्यक्षतामें एक कमेटी बैठायी गयी और उसकी सिफारिशोंसे इन काले बिलोंकी रचना की गयी। पर सरकारकी ऐसी बुद्धि-

पर खेद प्रकट करनेकी बात है। असलमें तो यहाँ अब क्रान्तिकारी दल है ही नहीं। हम इसे क्रान्तिकारी दल नहीं कह सकते जो कभी-कभी एकत्र युवक बमके मामलेमें गिरफ्तार हो जाते हैं। इससे न तो भारत-सरकारको वास्तविक भय ही रहता है और न इससें भय करने-की कोई बात ही है। यह तो कुछ युवकोंका क्रोध है जोकि अङ्गरेजी शासनके घोर अत्याचारसे पैदा होकर बमके रूपमें प्रकट होता है। यदि क्रान्तिकारी-दल होता तो क्या युद्धके समयका अवसर वह छोड़ देता? भारतका क्रान्तिकारक दल यदि युद्धके समय चाहता, तो यह निश्चय था कि अङ्गरेजोंका साम्राज्य भारतसे उठ गया होता, क्योंकि उस समय गवर्नमेण्टमें अपना शासन स्थिर रखनेके लिए कुछ भी शक्ति भारतमें नहीं रह गयी थी। पर भारतने अपनी सच्ची राज-भक्तिका पालन किया। उस राजभक्तिका बदला अविश्वास-पूर्वक रौलट ऐक्टसे चुकाया गया।

पंजाबका हत्याकाण्ड

जब लोकमतके विरुद्ध सरकारने रौलट बिल पास कर दिया, तब उसे रद्द करनेके लिए ता० २३ मार्च १९१९ को महात्मा गांधीने सूचना निकाली कि सत्याग्रहमें दीक्षित होनेके पहले आत्माको शुद्ध करनेके लिए २४ घण्टेका उपवास तथा प्रार्थना करना आवश्यक है। अतः ६ ठी अप्रैल (रविवार) का दिन इस कामके लिए नियत किया गया। भूलसे दिल्लीमें ३० मार्चको हड़ताल मनायी गयी। उस दिन रेलवे स्टेशनके कुछ दूकानदारों तथा हड़तालियोंमें मामूली झगड़ा हो गया। अधिकारियोंने तुरन्त सेना बुलायी और गोलियाँ चलवा दीं। कुछ आदमी मरे। ६ अप्रैलको अखिल भारतवर्षीय हड़ताल हुई। ऐसी हड़ताल इससे पहले कभी नहीं हुई थी। हड़ताल शान्ति-से बीत गयी। यह हड़ताल रौलट ऐक्टको रद्द करनेके लिए

सत्याग्रह शुरू करनेको गयी थी, इसलिए नौकरशाही पहलेसे ही जली बैठी थी।

दिल्लीकी जनता क्षुब्ध थी। म० गाँधी उन्हें शान्त करनेके लिए दिल्लीको रवाना हुए। मार्गमें ही उनपर नोटिस तामील की गयी कि वे दिल्ली तथा पंजाबमें न घुसें। सच्चे सत्याग्रहीकी हैसियतसे महात्माजीने उस अनुचित आज्ञाको मानना स्वीकार नहीं किया। इसपर वे गिरफ्तार कर लिये गये। इस समाचारके फैलते ही लोग उत्तेजित हो उठे। पंजाबके लोगोंमें अधिक जोश फैला। इतनेहीमें पंजाबके गवर्नर सर माइकेल ओडायरने पंजाबके दो प्रधान नेता डा० सत्यपाल और डा० किचलूको निर्वासित कर दिया। निदान जनताका एक निहत्था दल पूर्ण शान्तिके साथ डिप्टी कमिश्नरके बँगलेकी ओर इसलिए चला कि उनसे प्रार्थना कर उन दोनों नेताओंको छुड़ा ले। रास्तेमें लोग रोके गये और जब उन्होंने न माना, तब उनपर गोलियाँ चलायी गयीं। इससे जनता उत्तेजित हो उठी। फिर क्या था, क्रोधमें अन्धी जनताने जो दिलमें आया किया।

अमृतसर सैनिक शासनके अधीन कर दिया गया। जेनरल डायर यहाँ पहुँचे और नगरका अधिकार उनके हाथमें सौंप दिया गया। ता० १३ अप्रेलको जलियानवाला बागमें सभा होनेवाली थी। सभाकी खबर भी सरकारकी ओरसे ही फैलायी गयी थी। जेनरल डायरने सूचना निकाली कि कोई भी सार्वजनिक सभा न की जाय। यदि इसके प्रतिकूल आचरण किया गया तो सभा भङ्ग कर दी जायगी। पर जेनरल डायरने इस आज्ञाके चारों ओर फैलानेमें चालाकी की। इधर-उधर कुछ जगहोंमें तो उनकी यह आज्ञा ढिंढोरा पीटकर सुनायी गयी, पर अधिकांश स्थानोंमें उनकी आज्ञाका कुछ भी पता न चला। इधर सभा करनेके लिए सरकारकी ओरसे जनताको पूर्ण उत्तेजित भी किया गया। फल यह हुआ कि सभा-स्थानमें

अच्छी भीड़ हुई। सभास्थलपर भीड़ होनेके मिनट-दो-मिनट बाद ही जेनरल डायरने गोलियाँ बरसानी शुरू कर दी। चौदह मिनटतक बराबर गोली वृष्टि होती रही। बागके चारों तरफके रास्ते घेर लिये गये थे, इसलिए जनता किसी तरफ भाग भी नहीं सकती थी। सभामें बूढ़े, स्त्री, पुरुष, छोटे-छोटे बच्चे सब मौजूद थे। राक्षस डायरके इस पाशविक कार्यसे हजारों आदमी जानसे मर गये, कई हजार घायल हुए। डायरके इस कार्यकी आलोचना करते हुए महात्मा गांधीने लिखा था कि:—

"आर्मी कौंसिलने डायरको दोषी ठहराया है कि उसने 'समझकी भूल' की और फैसला किया कि राज्यके अन्तर्गत उसे कोई पद न दिया जाय। मि० मांटेगूने भी डायरकी निन्दा करनेमें कोई बात उठा नहीं रखी है। पर तो भी न जाने क्यों मेरी यह धारणा है कि डायर सबसे बड़ा अपराधी नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसने घोर बूचड़पनका काम किया। आर्मी कौंसिलके सामने उसने जो कुछ कहा है उसके प्रत्येक शब्दमें उसकी हीनता और सिपाहीके अयोग्य बुजदिली टपकती है। उसने उन निरस्त्र नर-नारी और बालक तथा वृद्धोंको मारकर यह समझा है कि हमने पञ्जाबका उद्धार किया है। पर ऐसा व्यक्ति तो सैनिकोंकी श्रेणीमें गिना जानेके ही सर्वथा अयोग्य है। उसके आचरणमें वीरताका कहीं नाम-निशान भी नहीं था। उसको किसी तरह खतरेका सामना नहीं करना पड़ा था। उसने बिना सूचना दिए ही धड़ाधड़ गोली चलाना आरम्भ कर दिया था जब कि किसीके मुकाबलेमें आनेका उसे भय नहीं था। इस प्रकारके आचरणको "समझकी भूल" नहीं कह सकते। किसी असम्भावित भयकी सम्भावनासे इसे हतबुद्धि कह सकते हैं। यह असीम निर्दयता और पाषाण-हृदयताका नमूना है।"

इस तरह निर्दयी डायरने बिना कारण ही पञ्जाबमें लाशोंकी ढेर

लगा दी। लाहौर अमृतसर, कसूर आदि सब जगह मार्शल-ला जारी कर दिया गया। बड़े-बड़े घरोंकी बहू-बेटियोंके.........में छड़ियाँ घुसेड़ी गयीं, लोग पेटके बल रेंगाये गये, नङ्गे करकर लोगोंको बेंतें लगायी गयीं। उस समय प्रजाके दुःखोंकी कोई सीमा न रह गयी थी। कलकत्ता, बम्बई आदि शहरोंमें भी कुछ लोग गोलीके शिकार बन गये थे, पर पञ्जाबके सामने उनकी दुःख कहानी भूलसी जाती है। वह समय बड़ा ही नाजुक था। उस समय पञ्जाबके लोग अपने घरोंमें भी निश्चिन्त नहीं रहते थे। हवाई जहाजोंपरसे लोगोंके घरोंपर गोले बरसाये जाते थे। कितने ही आदमी अपने घरोंके आँगनमें गोलीसे मार डाले गये। एक दिन एक तरफ तो डायरने लोगोंको अपने बँगलेपर बुलाया और दूसरी तरफ जब सबलोग उसके बँगलेपर चले गये, तब खुद कुछ सोलजरोंको साथ लेकर नगरमें आया और घरोंके दरवाजे जबरदस्ती खुलवा स्त्रियोंको बाहर निकालकर सड़कोंपर घुमाया, सिपाहियोंसे उन साध्वी स्त्रियोंके घूँघट उठवाये, मुँहपर न लाने योग्य गन्दी गालियाँ दीं। इतनेपर उसे दण्ड देना तो दूर रहा, उलटे भारतके ही फण्डसे उसे पेन्शन दी जाती है। उसके लिए भारतमें रहनेवाले अङ्गरेजोंने चन्दा करके भी भेजा था, जिसकी उद्दण्डताके कारण देशके लोगोंकी जानें खतरेमें पड़ी हुई थीं। उस समय मार्शल-लाके जमानेमें इतनी कड़ाई की गयी थी कि पञ्जाबकी घटनाओंका समाचार किसी भी तरह विदित नहीं हो सकता था। मार्शल-लाके उठ जानेपर लोग पंजाब गये और जो समाचार लाये उससे सारे भारतमें शोक छा गया। पञ्जाबके अत्याचारोंकी जाँच करनेके लिए जनताने एक निरपेक्ष जाँच-कमीशन बैठानेकी प्रार्थना की। किसी तरह लार्ड हण्टरकी अध्यक्षतामें जाँच कमेटी बैठायी गयी। इस कमेटीने अपना काम आरम्भ भी न किया था कि भारत-सरकारने मार्शल-लाके दोषी बोसवर्थस्मिथ, जेनरल डायर-सरीखे अपराधियों

की रक्षा के लिए इण्डेम्निटी ऐक्ट बना दिया, जिसमें यदि प्रजा सरकारी कर्मचारियोंके अपराधपर उनपर मामला चलाना चाहे तो न चला सके। इस प्रकार उस समय लोग पीटे भी गये और रोने भी नहीं पाये। पञ्जाब-हत्याकाण्डसे भारतका बच्चा-बच्चा परिचित है। क्योंकि इसीसे अङ्गरेजी सलतनतकी सबसे जबर्दस्त ऐसी जड़ कटी थी, जिसके कटनेसे ब्रिटिश सरकार बिलकुल निर्बल हो गयी, यद्यपि ऊपरसे ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। इसलिए इस विषयपर अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं।

हाँ, स्मरण रखना चाहिए कि किसी देशमें मार्शल-ला यानी फौजी कानून उस समय जारी किया जाता है, जब देशमें खुला गदर हो जाता है और जब किसी दूसरी तरह वह शान्त नहीं किया जा सकता। ऐसी हालतमें शासनकी दृढ़ताके लिए मुल्की कानूनकी जगह फौजी कानून (Martial Law) जारी किया जाता है। मार्शल-ला सिर्फ लाचारी दर्जे बलवाइयोंको शान्त करनेके लिए ही जारी किया जाता है। वास्तवमें मार्शल-ला तो सरकारकी गैरकानूनी शक्ति है, जो कि उसकी अस्तित्व-रक्षाके लिए काममें लायी जाती है।

पर पञ्जाबमें तो कुछ भी नहीं था; न गदर था, न चढ़ाई ही थी। वहाँ तो किसीके हाथमें एक छड़ी भी न थी। इसी बातको राष्ट्रीय कवि पण्डित माधव शुक्लने क्या ही सुन्दर ढंगसे नीचेकी कवितामें व्यक्त किया है—

हमको पड़े हैं अपने तईं जानके लाले।
हो दिलमें खुशी जिनके वो अरमान निकालें॥
घरके चिराग बुझ गये जो करते उजाले।
लाचार पड़े आज हैं बेदर्दके पाले॥
नामर्द डायरानके जुल्मो जुनूनसे।

अबतक जिमीं है तर मेरे बच्चोंके खूनसे से ॥
जर्मन थे या अफगान थे या कोई गदर था।
हथियार बन्द फौजको क्या खौफो खतर था॥
बेचारे हिन्द बच्चोंपै जो जुल्मो कहर था।
गमसे झुका उसीके लिए सत्य पै सर था॥
उनपर चलायी गोलियाँ लानत है जोमपर।
थूकेगा सब जमाना इस हरकतसे कौमपर॥
यूरपकी शान जाती थी जब आनके बदले।
वः वक्त मुसीबत दिये सामानके बदले॥
किसको ये खबर थी कि जरोजानके बदले।
बरसेंगे गोले हमपर उस अहसानके बदले॥
पढ़ लीजे कारनामे इस शाइस्तः कौमके।
जलियानवाला बागमें खूँसे लिखे हुए॥

महात्मा गांधीका तो खास सिद्धान्त यही था कि—"सत्याग्रहीको सब तरहके कष्टोंका सामना करनेके लिए शान्तिके साथ तैयार रहना चाहिए। सत्याग्रही किसीकी जान और मालपर किसी तरहका धक्का न पहुँचावेगा।" इसी उद्देश्यको लेकर लोगोंने काम भी शुरू किया था। पर सरकारकी दृष्टिमें वह सत्याग्रह न जाने क्या जँचा कि उसने मार्शल-लासे काम लिया? किंतु इसका उत्तर हंटर-कमेटीके सामने गवाही देते हुए स्वयं डायरने दे दिया है। उसने साफ कहा था—"कि मेरी यह बहुत दिनोंसे इच्छा थी कि किसी ऐसे समयकी यदि सम्भावना भी दिखायी पड़े तो मैं भारतको ब्रिटिश-शक्तिका परिचय कराऊँ।...यदि कल मुझे फिर ऐसा अवसर मिले तो फिर मैं इससे दूने उत्साहसे काम करनेको तैयार हूँ। मुझे अफसोस है कि जलियानवाला बागमें गोलियाँ खतम हो जानेके कारण मैं चौदह मिनटसे अधिक गोली नहीं चला सका।"

ऊपरके कथनसे साफ जाहिर होता है कि नौकरशाही जानबूझ कर पहलेसे ही निरस्त्र प्रजाका वध करना चाहती थी।

इसका फल यह हुआ कि देशमें घोर असन्तोष फैल गया। यहाँ-तक कि म० गांधीने सरकारसे असहयोग करनेकी घोषणा की; जिस म० गांधीने अमृतसर-काङ्ग्रेसमें मांटेगू-स्कीमकी प्रशंसा करते हुए कहा था कि जब सरकार हमसे मिलनेके लिए हाथ बढ़ा रही है, तब हमारा कर्त्तव्य है कि हमलोग उससे दूने उत्साहसे मिलें। महात्मा गांधी यहाँतक सहयोगके पक्षपाती थे कि राष्ट्रसूत्रधार लोकमान्य तिलक महाराजकी बात भी उन्होंने न मानी। लोकमान्यका प्रभाव कैसा था, यह बतानेकी आवश्यकता नहीं। स्वयं गांधीजीने ही उस समय कहा था कि,—"मुझे दुःख है कि आज मैं लोकमान्यकी आज्ञाका उल्लंघन कर रहा हूँ। मेरे जीवनमें लोकमान्यके विरुद्ध बोलनेका साहस करनेकी यह पहली घटना है। आशा है कि लोक-मान्य इसे क्षमा करेंगे।" पर जब निरस्त्र प्रजापर गोलियाँ चलायी गयीं, हवाई जहाजसे बम बरसाये गये, मारनेवालोंकी रक्षा की गयी, उन्हें पेन्सन दी गयी, तब महात्मा गांधी सरीखे साधु भी सरकारके खिलाफ हो गये।

हिन्दू-मुसलिम एकता

इधर टर्कीका अंग-भंग करके भारतीय मुसलमानोंके धर्मपर भी कुठाराघात किया गया। मुसलमानलोग भी इस्लामकी रक्षाके यत्नमें व्याकुल थे। महात्माजीने कहा कि मैं एक देश-भाईके नाते अपने मुसलमान भाइयोंकी सहायता करनेके लिए तैयार हूँ। महात्माजीके इस कथनने मुसलिम जनतामें घर कर लिया। धीरे-धीरे दोनों जातियाँ जो हजारों वर्षोंसे एक दूसरेसे बिछुड़ी हुई थीं, वह मिल गयीं।

लोकमान्यसे गांधीका परामर्श

अमृतसर-काङ्ग्रेसके बाद ही लोकमान्य तिलक महाराज बीमार पड़े। यही बीमारी लोकमान्यकी अन्तिम रोग्य-शय्या थी। म० गांधी उनसे मिलने गये। असहयोग-संग्राम जारी करनेके लिए गांधीजीने आज्ञा माँगी। लोकमान्यने कहा—"यदि तुम देशको इतना तैयार समझते हो तो जारी कर सकते हो। किन्तु मेरा अनुमान है कि अभी कुछ कसर अवश्य है। मेरे जीवनका तो यह असहयोग ही प्रधान लक्ष्य था, पर अभी तक स्थिति अनुकूल नहीं हुई थी।" ३० अगस्तको आधी रातके समय भारतके सर्वश्रेष्ठ नेता लोकमान्य-का स्वर्गवास हुआ। उसी दिन सवेरा होते ही महात्मा गांधीमें दैवी-शक्तिका प्रवेश हुआ। या यों कहिये कि लोकमान्य तिलकने ही अपना जीर्ण शरीर त्यागकर अपने अनन्य प्रेमी गांधीके शरीरमें प्रवेश किया। उसी दिनसे लोकमान्यका स्थान म० गांधीने ग्रहण किया। अब म० गांधी भारतके सर्वमान्य नेता हो गये।

असहयोग

पश्चात् म० गाँधीने मद्रासमें भाषण देते हुए असहयोगका महत्व लोगोंको समझाया। मद्रासके भाषणसे ही असहयोगका सूत्रपात हुआ समझना चाहिए। असहयोग-सिद्धान्तके अनुसार ही म० गांधी ने "कैसरे हिन्द" का तमगा वायसरायको लौटा दिया, साथ ही निम्न लिखित पत्र लिखा:—

"गत महीनेमें जो घटनाएँ हुईं, उनसे मुझे दृढ़ विश्वास हो गया कि खिलाफतके मामलेमें ब्रिटिश-सरकारने मुसलमानोंके साथ घोर अन्याय किया है और अपनी इस बेइमानीको छिपानेके लिए गलती-पर-गलती करती गयी है। ऐसी सरकारके लिए मेरे हृदयमें किसी तरहकी श्रद्धा तथा भक्ति नहीं रह सकती। इसके अतिरिक्त

पंजाबके मामलेमें आपकी सरकारने तथा ब्रिटिश-सरकारने जो न्यायशून्य पक्षपात दिखाया है उससे मेरा विश्वास आपकी सरकार की ओरसे और भी कम हो गया। पंजाबके अत्याचारोंको आपने जिस उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा, सर माइकेल ओडायरके अत्याचारोंकी आपने जो प्रशंसा की, मि० मांटेगूके खरीते तथा लार्डसभाने पंजाब की घटनाओंपर जो अनजानकारी प्रकट की और हिन्दुस्तानियोंके दुःखोंका जरा भी खयाल नहीं किया गया, इन सब कारणोंने मेरे हृदयको साम्राज्यके भविष्यके लिए नितान्त चिन्तित कर दिया है—वर्त्तमान सरकारकी ओरसे दिल फेर दिया है और जिस तरहकी राज-भक्ति मैं इसके प्रति सदासे दिखलाता आ रहा था उस तरहकी राज-भक्तिसे मुझे विचलित कर दिया है।"........."जो राजा शराब, अफीम और गाँजा आदि नशेकी चीजोंका व्यापार करता है, जो राजा घुड़दौड़का जुआ खेलता है, जो राजा गायका मांस खाकर हिन्दुओंका और सूअरका मांस खाकर मुसलमानोंका दिल दुखाता है, जो राजा अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर इसलामको खतरेमें डालता है, जो राजा निरस्त्र प्रजापर अकारण ही पाशविक वीरता दिखलाता है, जो राजा प्रजाको अपमानित और दुःखी करता है, उस राजाकी दी हुई उपाधि स्वीकार करनेमें भी मैं तो महान् पातक समझता हूँ।"

कलकत्ताकी विशेष कांगरेस

सितम्बर १९२० मे असहयोगका काम शुरू करनेके लिए काँग रेसका विशेष अधिवेशन देशपूज्य लाला लाजपतरायजीकी अध्यक्षता-में हुआ। पूर्ण वाद-विवादके वाद असहयोगके निम्न प्रकार प्रस्ताव पास हो गये:—

(१) भारतके प्रत्येक उपाधिधारी अपनी उपाधियाँ छोड़ दें। तथा सरकारके दिये हुए पदों (नौकरियाँ आदि) को छोड़ दें।

(सरकारी) दरबार आदिमें न जायँ। (३) सरकारी विद्यालयोंसे बालकोंको धीरे-धीरे हटाकर उनका बहिष्कार करें तथा उनके स्थानपर राष्ट्रीय स्कूलोंको स्थापित करें। (४) वकील तथा बैरिस्टर अपना पेशा छोड़ दें और पंचायतोंकी स्थापना करनेमें लग जायँ। (५) सैनिक, मुहर्रिर तथा मजदूर आदि मेसोपोटामिया आदि स्थानोंमें जानेसे इनकार कर दें। (६) कौंसिलोंमें कोई प्रतिनिनिधि न जायँ और न मतदाता किसीको मत ही दें। (७) विदेशी मालका बहिष्कार और स्वदेशीका प्रचार किया जाय।

उक्त प्रस्तावके अनुसार कार्य होने लगा। महात्मा गांधी तथा मौ० शौकतअली. पं० मोतीलाल नेहरू, बा० सुन्दरलाल, पं० जवाहिरलाल नेहरू आदि नेताओंने खूब जोरोंसे प्रचार-कार्य आरम्भ किया। यद्यपि दो-ढाई महीनेमें ही आशातीत सफलता भी प्राप्त हुई, पर देशबन्धु चित्तरञ्जनदास आदि कई प्रमुख नेताओंका इस प्रस्तावसे मतभेद रहनेके कारण उतनी सफलता नहीं हुई जितनी कि इन लोगोंके मिले रहनेसे होती।

धीरे-धीरे कांगरेसके साधारण अधिवेशनका दिसम्बर मास आ गया। बड़े समारोहके साथ नागपुरमें कांगरेस हुई। इस कांगरेसने भी कलकत्ताकी स्पेशल कांगरेसके प्रस्तावोंका समर्थन किया। विशेषता यह रही कि देशबन्धु दास आदि नेता भी इस कांगरेसमें उक्त प्रस्तावोंसे सहमत होगये। फलतः पूर्ण सफलताके साथ देशमें काम होने लगा।

इस कांगरेसमें महात्मा गान्धीने यह भी कहा कि यदि तिलक-स्वराज्य-फण्डके लिए एक करोड़ रुपया जमा हो जाय, एक करोड़ कांगरेसके सदस्य हो जायँ, पचीस लाख चरखा देशमें नियमित रूपसे चलने लग जाय और लोग कांगरेसके प्रस्तावानुसार कार्य करें तो एक वर्षमें भारत अवश्य स्वतन्त्र हो जायगा।

एक वर्षमें स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए महात्मा गान्धीने अपने एक भाषणमें कहा था कि,—

"मैंने कलकत्ताकी कांग्रेसमें एकत्र हुए लोगोंसे कहा था कि यदि मेरे असहयोगके कार्य-क्रमके अनुसार काम करनेको काफी आदमी तैयार हो गए, तो एक वर्षमें स्वराज्य मिल जायगा। मेरे इस कथनपर बहुतसे लोग हँस रहे हैं। कुछ लोगोंने मेरी शर्तका खयाल नहीं किया और वे इस लिए हँसे कि किसी भी प्रकारसे एक वर्षमें स्वराज्य मिलना असम्भव है। अन्योंने 'यदि' शब्दकी ओर जोर दिया और कहा है कि अगर तर्कमें 'यदि' का प्रयोग ग्राह्य मान लिया जाय, तो कोई भी असम्भव कार्य सम्भव सिद्ध किया जा सकता है। किन्तु मेरा सिद्धान्त गणित-सम्बन्धी लेखोंके आधारपर है। मैं दावेसे कहता हूँ कि उचित रूपसे मेरी शर्त पूरी हुए बिना वास्तविक स्वराज्य एक प्रकारसे असम्भव है। स्वराज्यका अर्थ ऐसी अवस्थासे है जिससे हम अङ्गरेजोंकी उपस्थितिके बिना अपना पृथक् अस्तित्व बनाये रख सकें। यदि साझेदारी हो तो इच्छानुसार साझेदारी हो। स्वराज्य तबतक नहीं हो सकता जबतक हम अपनेको अङ्गरेजोंके बराबर न समझें और न हों। आज हम समझते हैं कि अपनी भीतरी और बाहरी रक्षा, हिन्दुओं और मुसलमानोंके बीच झगड़ा न होने, अपनी शिक्षा और अपनी नित्यकी आवश्यकताओंकी पूर्ति और यहाँतक कि अपने धार्मिक झगड़ोंके निपटारेके लिए हम उनके आश्रित हैं। राजा अपने अधिकारों और लखपती अपने लाखों रुपयोंके लिए अङ्गरेजोंके आश्रित हैं। अङ्गरेज हमारी निस्सहाय अवस्था जानते हैं और सर टामस हालैण्डका असहयोगवादियोंके मत्थे खिल्ली उड़ाना ठीक ही है। इस तरह स्वराज्यका प्राप्त करना अपनी निस्सहाय अवस्थासे छुटकारा पाना है। इसमें सन्देह नहीं कि यह प्रश्न महाविस्मयकर है। जिस प्रकार

कहावतके उस सिंहके लिए अपनेको सिंह समझना ही असम्भव प्रतीत हुआ था जो बकरियोंके साथ पाला-पोसा गया था। जैसा टालस्टाय कहा करते थे, मनुष्य बहुधा मोह-जालके भीतर दुःख उठाया करता है। इस मोह-जालके भीतर हम सब निस्सहाय अवस्था-का बोध करते हैं। इसके बाहर खास अङ्गरेजोंसे भी हम सहायताकी आशा नहीं कर सकते। इसके विपरीत वे सदा हमारे कानोंमें यह ध्वनि पहुँचाते रहते हैं कि हम केवल धीरे-धीरे शिक्षात्मक उन्नति करके ही अपना शासन करनेके योग्य होंगे। 'टाइम्स' ने कहा है कि यदि हम कौंसिलोंका बायकाट करेंगे, तो स्वराज्यकी शिक्षा प्राप्त करनेका एक अवसर खो देंगे। हमें इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि बहुतोंका विश्वास 'टाइम्स' जैसा ही है। उसने झूठतकका आश्रय लिया है। वह धृष्टतापूर्वक कहता है कि लार्ड मिलनरके मिशनने मिश्र-निवासियोंकी बात सभी सुनी, जब वे मिश्रकी कौन्सिलोंका बायकाट बन्द करनेको तैयार हुए। मेरी समझसे तो हमें एकमात्र स्वराज्यकी शिक्षाकी आवश्यकता है जिससे हम कुल संसारके मुकाबले अपनी रक्षा करनेके योग्य हों और हम अपना जीवन पूर्ण स्वतन्त्रताके साथ बिता सकें, चाहे वह दोषोंसे ही पूर्ण क्यों न हो। स्वराज्यके बराबर सुराज्य नहीं होता। अफगानोंकी सरकार बुरी है, किन्तु वह स्वराज्य है। जापानियोंने रक्तका समुद्र बहा स्वराज्यकी विद्या सीखी। यदि आज हममें शक्ति होती कि हम अङ्गरेजोंको उनसे अधिक पशुबलद्वारा मार भगाते, तो हम उनसे श्रेष्ठ समझे जाते और कौन्सिलोंमें वाद-विवाद करने तथा शासनके पदोंका काम चलानेका अनुभव न होनेपर भी हम स्वराज्य करनेके योग्य समझे जाते। कारण यह कि अभीतक एकमात्र पशुबलकी जाँच ही पश्चिमने स्वीकार की है। जर्मन इसलिए नहीं हारे कि वे अवश्य ही अन्याय-पक्षके थे, बल्कि इसलिए कि मित्र राष्ट्रोंके

२०

पास उनसे बड़ा पशुबल निकला। इसलिए अन्तमें भारतको या तो युद्ध-विद्या सीखनी होगी, जिसे अङ्गरेज सिखायेंगे नहीं—या उसे असहयोगद्वारा अपने ढंगसे व्यवस्था और आत्मत्याग सीखना होगा। यह उतना ही आश्चर्यका विषय है जितना कि अपमानका यह विषय कि एक लाखसे कम अङ्गरेज हम ३१॥ करोड़ भारतीयोंपर शासन कर सकनेमें समर्थ हैं। इसमें सन्देह नहीं कि कुछ तो वे शक्तिद्वारा शासन करते हैं, किन्तु उससे अधिक हजार प्रकारसे हमारा सहयोग प्राप्तकर तथा दिन-पर-दिन हमें अधिकाधिक निस्सहाय और अपने आश्रित बनाकर करते हैं। हमें वास्तविक अधिकार या शक्तिके स्थानमें सुधरी हुई कौन्सिलों, अधिक अदालतों और यहाँतक कि गवर्नरियोंके भ्रममें न पड़ना चाहिए। ये सब हमें नामर्द बनानेके और भी अधिक छलके उपायमात्र है। अँगरेज केवल पशुबलद्वारा हमपर शासन नहीं कर सकते। इसलिए वे भारतपर अपना अधिकार मजबूत करनेके लिए सब प्रकारके बुरे-भले उपायोंसे काम लेते हैं। वे अपनी साम्राज्य-लोलुपताकी शान्तिके लिए भारतके अरबों रुपये और जनशक्ति चाहते हैं। यदि हम उन्हें धन-जन देनेसे इनकार कर दें, तो हम अपने लक्ष्य अर्थात् स्वराज्य, समानता और पुंसत्वको प्राप्त कर लें।

हमारे अपमानका प्याला वायसरायकी कौन्सिलके अस्तमें भर गया जब मि० शास्त्री पञ्जाबके सम्बन्धमें अपना प्रस्ताव नहीं पेश कर सके। जलियाँवाला-बागके व्यथितोंको १२॥ सौ रुपये मिले और उपद्रवी भीड़के क्रोधके कारण वधिकोंको लाखों मिले। जो अफसर उन लोगोंके विरुद्ध अपराधी थे, जिनके वे नौकर थे, उनकी निन्दा की गयी और कौन्सिलवाले सन्तुष्ट हो गये। यदि भारत शक्तिसम्पन्न होता तो उसके कटेपर इस प्रकार नमक न छिड़का जा सकता। मैं अङ्गरेजोंको दोष नहीं देता। यदि उन्हींकी भाँति हम भी संख्या

में कुछ हजार होते, तो शायद हम भी वे ही उपाय काममें लाये होते जो वे अब ला रहे हैं। भयसञ्चार करना और धोखा देना बलियोंके नहीं, निबलोंके हथियार हैं। अङ्गरेज संख्यामें निर्बल हैं और हम अधिक संख्यामें होते हुए भी निर्बल हैं। फल यह होता है कि एक दूसरेको नीचेहीकी ओर घसीटता है। यह साधारण अनुभवकी बात है कि भारतमें रहनेके बाद अङ्गरेजोंका आचरण निर्बल हो जाता है और अङ्गरेजोंके संघर्षसे भारतीय अपना साहस और पौरुष खोते हैं। निर्बल करनेका यह ढंग न तो हमारे और अङ्गरेजोंहीके लिए अच्छा है और न संसारहीके लिए, किन्तु यदि हम भारतीय अपनी खबर लें तो अङ्गरेज और बाकी संसार अपनी खबर लेगा। इसलिए संसारकी उन्नतिमें सहायता पहुँचानेके लिए हमें अपने घरकी व्यवस्था ठीक करनी चाहिए।

शस्त्र-विद्याकी शिक्षाका इस समय कोई प्रश्न ही नहीं है। मैं इससे भी आगे बढ़ यह विश्वास करता हूँ कि भारतका मिशन संसार के लिए इससे अच्छा है, यह उसीकी शक्तिकी बात है कि वह दिखा दे कि वह शुद्ध आत्मत्याग अर्थात् आत्म-शुद्धिद्वारा अपना भाग्य प्राप्त कर सकता है। यह बल असहयोगहीसे सम्भव है और असहयोग तभी सम्भव है, जब वे लोग सहयोग लौटाना शुरू करें जिन्होंने सहयोग देना शुरू किया था। यदि और नहीं, हम केवल सरकारसे नियंत्रित स्कूलों, सरकारी अदालतों और व्यवस्थापिका सभाओंकी तेहरी मायासे मुक्त हो वास्तवमें अपनी शिक्षाका नियंत्रण करें, अपने झगड़ोंको निपटा लें और उनके कानूनोंकी उपेक्षा करें, तो हम स्वराज्य करनेको तैयार हैं और केवल तभी हम सरकारी नौकरोंसे चाहे वे मुल्की हों या फौजी, इस्तीफा देने और कर-दाताओंसे कर देना बन्द करनेको कह सकते हैं।

क्या यह इतना असाध्य है? क्या हम माता-पिताओंसे आशा

करें कि वे अपने लड़कोंको सरकारी स्कूलों और कालेजोंसे निकाल अपने स्कूल कालेज खोलें या वकीलोंसे कहें कि वे वकालत छोड़ जहाँ निर्वाहके लिए आवश्यक हो, वहाँ उतना लेकर अपना कुल समय राष्ट्रीय सेवामें लगायें या कौंसिलोंके उम्मेदवारोंसे कहें कि वे कौंसिलों-में जाकर क्रियात्मक या अक्रियात्मक किसी प्रकार कानून बनानेवाली मशीनोंको सहायता न दें जिसके द्वारा यह नियन्त्रण स्थापित होता है। असहयोगका आन्दोलन इस प्रयत्नके सिवा और कुछ नहीं है कि अङ्गरेजोंको केवल उन सब जालोंसे अलग कर दिया जाय जिनसे वह ढँका हुआ है और दिखा दिया जाय कि स्वयं पशुबल भारतको क्षणमात्र भी अधिकारमें नहीं रख सकता। परन्तु मैं स्पष्ट कहता हूँ कि जबतक मेरी बतायी हुई तीन बातें न पूरी होंगी, तबतक स्वराज्य नहीं है। हम ऐसा कर नहीं सकते कि कालेजकी उपाधियाँ बराबर लेते जायँ, पाँच मिनटमें खतम किये जा सकनेवाले मामलोंके लिए मुवक्किलोंसे हर महीने हजारों रुपए ऐंठते जायँ और कौंसिलोंमें राष्ट्रीय समय नष्ट करनेमें अत्यन्त प्रसन्नता मालूम करें और इतनेपर भी राष्ट्रके आत्म-गौरवकी आशा करें।

किन्तु कुछ भी कम महत्व न रखनेवाली मायापर अभी विचार ही करना है, और वह स्वदेशी है। हमने यदि स्वदेशीका त्याग न किया होता, तो वर्त्तमान गिरी हुई अवस्थामें होनेकी हमें आवश्यकता न होती। यदि हम आर्थिक दासत्वसे छुटकारा चाहते हैं तो हमें अपने लिए कपड़े स्वयं और वर्त्तमान समयमें केवल हाथसे कात और बुनकर बनाने होंगे। इन सबका अर्थ है व्यवस्था, आत्म-त्याग, संगठनकी योग्यता, विश्वास और साहस। यदि गिनतीके लोगोंमें हम एक वर्षमें ये सब बातें दिखा सकें और लोकमत बना सकें, तो हम एक वर्षके भीतर निश्चय ही स्वराज्य प्राप्त करेंगे। यदि मुझसे कहा जाता है कि हम जो लोग नेतृत्व करते हैं उनमें भी वे गुण

नहीं हैं, तो निश्चय समझिये कि भारतमें कभी स्वराज्य न होगा। किन्तु उस अवस्थामें हमें अङ्गरेजोंको उनके द्वारा होनेवाले कामोंके लिए दोष देनेका अधिकार न होगा। हमारी मुक्ति और उसका समय ये दोनों ही एकमात्र हमारे ऊपर ही अवलम्बित हैं।"

पहले तो सरकारको भी यह विश्वास था कि इस आन्दोलनमें कुछ दम ही नहीं है और इसी आधारपर महात्मा गांधीको लार्ड रीडिंगने लिखा भी था कि—"जबतक आपका आन्दोलन शांतिपूर्ण अहिंसात्मक बना रहेगा, तबतक हमारी सरकार आपके कामोंमें किसी प्रकारका भी विघ्न न डालेगी और न किसी प्रकारकी कड़ाई ही करेगी।" पर जब असहयोगका प्रभाव देहातोंतकपर अद्भुत रीतिसे पड़ा; जोरोंसे सरकारी विद्यालयोंको छोड़-छोड़कर लड़के राष्ट्रीय विद्यालयोंमें पढ़ने लगे, धड़ाधड़ राष्ट्रीय पाठशालाओंकी स्थापनाएँ होने लगीं, बड़े-बड़े वकील और बैरिस्टर अपना पेशा छोड़ने लगे। देशभक्तोंने सरकारी नौकरी छोड़नी शुरू कर दी, विलायती कपड़ेकी दूकानोंपर शान्ति-पूर्ण धरना शुरू हो गया, देशी कपड़ेका प्रचार दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ने लगा, तिलक-स्वराज्य-फण्डके लिए तीन मासके भीतर १ करोड़का चन्दा हो गया, कांग्रेसके १ करोड़ सदस्य हो गये, तब तो सरकारकी बुद्धिमें परिवर्तन हुआ। अब वह महात्मा गांधीसे समझौता करनेका विचार करने लगी। पर जल जाने पर भी जिस तरह रस्सीकी ऐंठन नहीं छूटती, उसी तरह सरकार भी लाख डाँवाडोल स्थिति होनेपर भी भीतरसे तो समझौता करना चाहती थी, पर ऊपरसे कहती थी कि इस तरह भारतको स्वराज्य कभी नहीं मिल सकता। पं० मालवीयजीसे लार्ड रीडिंगने यही कहा था कि—"भारत या तो तलवारके जोरसे स्वराज्य ले सकता है या पार्लमेंटको प्रसन्न रखकर ही। यदि पार्लमेंटको खुश रखना है तो असहयोगियोंको चाहिए कि वे आन्दोलनको स्थगित कर राउण्ड

टेबुल कान्फरेन्स बैठानेके लिए सरकारसे प्रार्थना करें। इसका उत्तर महात्माजीने बड़े ही उचित और महत्त्वपूर्ण शब्दोंमें दिया। आपने कहा–"वायसराय महोदयकी दोनो ही बातें असहयोगियोंके सिद्धान्त-से बेसिर-पैरकी हैं। न तो असहयोगी तलवार ही उठा सकते हैं और न सरकारसे किसी प्रकारकी प्रार्थना ही कर सकते हैं। क्योंकि ये दोनों ही बातें असहयोग-सिद्धान्तके विरुद्ध हैं। असहयोगी अपना काम करते जायँगे, सरकार अपना काम करती जाय। हाँ, यदि सरकार समझौता करना चाहे तो असहयोगी उसके लिए तैयार हैं, पर यह कभी नहीं हो सकता कि वे 'राउण्ड टेबुल कान्फरेन्स' बैठानेके पहले ही अपना काम बन्द कर दें!"

फलतः जब नौकरशाहीने असहयोगको सफल होते देखा, ब्रिटिश-राज्यकी नींव उसे हिलती हुयी दिखाई पड़ी, तब उसने अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर खूब जोरोंसे दमननीतिसे काम लेना प्रारम्भ कर दिया। म० गान्धीने पहले ही लार्ड रीडिङ्गके पत्रके उत्तरमें लिखा भी था कि—"सरकार कभी भी अपनी बातपर दृढ़ न रहेगी। जब वह असहयोगको सफल होता देखेगी, तब वह निश्चय ही पशुबलसे उसे नष्ट करनेका प्रयत्न करेगी।"

महात्मा गान्धीकी उक्त दिव्यवाणी सत्य हुई। असहयोगी तो शान्ति-पथपर डटे रहे, पर सरकारने जोरोंसे दमन-चक्र चलाना शुरू कर दिया। चारों ओर धर-पकड़ शुरू हो गयी। गैर कानूनी काररवाइयाँ चारों तरफ होने लगीं।

मौलाना शौकतअली और मुहम्मदअली सितम्बर १९२१ में गिरफ्तार कर करांचीके दौराजजके सुपुर्द किये गये। इनपर कई अभियोग लगाये गये थे। उनमेंसे दफा १२०—१३१ (षड़यन्त्र रचना और बलवेमें सहायता देना) जो सबसे कड़े थे, वे तो प्रमाणित न हो सके, पर दफा ५०५ और १०९ तथा ११७ (बलवा

करानेके उद्देश्यसे झूठी बातें फैलाना) पर दो वर्षका कठोर दण्ड दिया गया। सरकारके इस अनुचित कार्यकी देशने घोर निन्दा की। सहयोगियोंने अपने अहिंसा-व्रतसे जरा भी विचलित न होकर इस अन्यायको सहन किया।

प्रिन्सका आगमन

प्रिन्स आफ वेल्स १७ नवम्बर १९२१ को भारत आये। भारतने आपके आगमनके पहले ही प्रार्थना की थी कि इस समय भारतीय प्रजा सुखी नहीं है, इसलिए ऐसे समयमें प्रिन्सका आना ठीक नहीं। क्योंकि भारतीय प्रजा अपने ऐसे दुःखमय समयमें श्रीमान् प्रिन्सका स्वागत न कर सकेगी। श्रीमान् प्रिन्सको बुलाकर उनका अपमान करना भारतीयोंका कदापि अभीष्ट नहीं। पर प्रजाकी बात सुनता कौन है! वहाँ तो नौकरशाहीकी नीति ही कुछ और थी। उसके सामने तो सम्राट् सप्तम एडवर्डके आगमनका दृश्य नाच रहा था; वह तो इस चालाकीमें थी कि यदि इस समय प्रिन्स आवेंगे, तो उनके आगमनकी खुशीमें भारतवासी असहयोगकी बातें भूल जायँगे। उस समयके सजधज और अपूर्व समारोहको देखकर ब्रिटिश-साम्राज्यके प्रति साधारण लोगोंमें भक्ति उत्पन्न हो जायगी। इसलिए उसने देशकी प्रार्थनाका तिरस्कार कर श्रीमान् प्रिन्सको बुलाकर ही छोड़ा। जिस दिन आपने जहाजसे उतरकर भारत-भूमिपर बम्बईमें चरण रखा, उसी दिन समस्त देशव्यापी हड़ताल हुई। सड़कपर सरकारी कर्मचारियोंको छोड़कर एक आदमी भी प्रिन्सका स्वागत तो दूर रहा देखनेतकके लिए नहीं दिखायी पड़ा। भारतके राजकर्मचारी उस दिनका दृश्य देखकर अवाक् हो गये। पश्चात् जिस शहरमें प्रिन्स जाते थे, उसी शहरमें गहरी हड़ताल होने लगी। ता० २४ दिसम्बरको

श्रीमान् प्रिन्स कलकत्ता पहुँचनेवाले थे, इसलिए लार्ड रीडिङ्ग वहाँकी हड़तालको रोकनेके लिए पन्द्रह दिन पहलेसे कलकत्तामें डट गये। बंगालके गवर्नर और लार्ड रीडिंगने हड़ताल रोकनेके लिए कई सभाएँ कीं; साम, दाम, दण्ड और भेदसे काम लिया; पर फल कुछ न हुआ। कलकत्तामें भी हड़ताल खूब जोरोंसे हुई। यहाँतक कि उस दिन हवड़ा स्टेशनपर अँगरेजोंको कुली न मिलनेके कारण अपने-अपने कन्धोंपर गठरियाँ रखकर ले जानी पड़ीं।

अस्तु, सरकारी पदाधिकारियोंने अपनी असफलतापर एकदम रुष्ट होकर अब और भी दूने उत्साहसे दमन प्रारम्भ कर दिया। न कहीं झगड़ा न कहीं कुछ, सिर्फ विलायती कपड़ेके व्यापारियोंके कहनेसे अशान्ति फैलानेके लिए शहरोंमें सोल्जरोंका पहरा बैठा दिया गया। कलकत्तामें भी यही बात हुई। उजड्ड और जंगली अँगरेज सैनिक गान्धी टोपी देखकर नाहक लोगोंको पीटने और पकड़ने लगे। यहाँतक कि उस समय कई खद्दरकी दूकानोंमें घुसकर उन गोरोंने लोगोंको जबर्दस्ती घसीटते और पीटते हुए जेलमें भर दिया। स्वयं-सेवक-दल भी गैर-कानूनी कहकर जेलमें ठूँसा गया। जो लोग पकड़े जाते थे, वे बहुत ही बुरी तरह बेरहमीके साथ पीटे जाते थे। पर वीर असहयोगी जरा भी अपने उद्देश्यसे विचलित नहीं होते थे। आत्मबल और पशुबल, सत्य और असत्य देव और राक्षसकी इस सच्ची लड़ाईकी कीर्त्ति संसारके इतिहासमें अमर रहेगी। असहयोगियोंकी प्रशंसा करते हुए एक बहुत उच्च-पदाधिकारीने सन् १९२१ में कहा भी था कि—"असहयोगी इतना पीटे जानेपर भी शान्त भावसे खड़े रहते हैं। हमलोग कहाँतक अपनेको गिरावें। अन्ततः हम भी तो मनुष्य ही हैं न!" इतने आदमी गिरफ्तार हुए कि भारतके सब जेलखानोंमें तादादसे ड्योढ़े-दूने आदमी भर गये। फिर भी भारतीय कार्य-कर्त्ताओंका उत्साह

बढ़ता ही जा रहा था। देशबन्धु दास, लाला लाजपत राय, पं० मोतीलाल नेहरू, डा० किचलू, वा० पुरुषोत्तमदास टंडन, पं० जवाहरलाल नेहरू आदि शान्तिप्रिय व्यक्ति भी जेलमें भर दिये गये। अन्तमें गिरफ्तार करते-करते सरकार हताश हो गई और राह-चलतोंकी गिरफ्तारी बन्द कर दी गई।

इस आन्दोलनने संसारके सामने एक नया आदर्श खड़ा कर दिया। सारा संसार महात्मा गांधीको संसार-श्रेष्ठ पुरुष मानने लगा। जर्मनीने लिखा कि—"जर्मन-देशके उद्धारके लिए एक गांधीकी आवश्यकता है।" इस अहिंसात्मक असहयोगने भारतवासियोंके दिलमें अपूर्व अहिंसाका भाव भर दिया। सरकारके इतने कड़े व्यवहारोंसे जनताके भावोंमें जरा भी परिवर्त्तन नहीं हुआ। समूचे भारतमें अहिंसाका भाव आशासे भी अधिक भर गया। यह बात दृढ़तापूर्वक कही जा सकती है कि संसारमें ऐसा कोई भी देश नहीं है, जहाँकी जनता, समष्टिरूपमें सरकारकी इतनी कड़ाइयोंको भारत-वासियोंकी तरह दृढ़ रहकर सहन कर सके। सरकार जेलमें तरह-तरहके कष्ट पहुँचा रही है, असहयोगियोंका घर-द्वार नीलाम कर रही है, रायबरेलीका हत्याकांड रोज कर रही है, पर असहयोगी अपने उद्देश्यपर डटे हुए हैं।

दिसम्बर सन् १९२१ के आरम्भमें भारतके वायसराय लार्ड रीडिंग भी भारतकी शान्ति और कार्यक्रमको देखकर दंग रह गये। आपने उसी समय कहा भी था कि—"मैं हैरान और परेशान हूँ। अब ब्रिटिश शासनके कल-पुर्जे खड़खड़ाने लगे और उसके शीघ्र ध्वंस-के लक्षण दिखायी पड़ने लगे।" २९ जनवरी १९२२ को बारडोलीने सविनय अवज्ञा जारी करनेका महत्त्व-पूर्ण निर्णय किया। महात्मा गांधीने इसे "बारडोलीका अन्तिम और अमिट निर्णय" कहा और वायसरायके पास अपनी अन्तिम सूचना भेज दी। बस अब इसी

पर देशका अन्तिम फैसला निर्भर था। बड़ी-बड़ी आशाएँ की जाने लगीं। सारा देश शारीरिक शक्तिपर आत्मिक-शक्तिकी पूर्ण विजय देखनेके लिए उत्सुक हो उठा, किन्तु ईश्वरेच्छा कुछ और ही थी।

ता० ५ फरवरी १९२२ को अनायास ही गोरखपुर जिलेके चौरी-चौरा स्थानमें दुर्घटना हो गयी। महात्मा गांधीने कहा कि यह दुर्घटना नहीं है, ईश्वरकी ओरसे दी हुई चेतावनी है। बस यहींसे परिस्थितिमें परिवर्त्तन हो गया। महात्मा गांधीने बारडोली प्रोग्राम स्थगित कर दिया। उन्होंने कहा कि जबतक सारा देश अहिंसाका पालक न हो जायगा, तबतक बारडोली रेज्यूलूशन स्थगित रखा जायगा। यह दशा देखकर आपने तुरन्त ही अपनी सारी शक्ति परिस्थितिका वास्तविक दिग्दर्शन करानेकी ओर लगा दी; किन्तु जिसे हम महात्माजीकी शक्ति कहते हैं, वही सरकारकी दृष्टिमें उनकी कमजोरी हुई। जिस महात्मा गांधीको गिरफ्तार करनेमें सरकार ब्रिटिश-राज्यका अस्तित्व मिट जानेकी सम्भावना देखती थी, उसी महात्मा गांधीको उसने सहसा गिरफ्तार कर लिया। महात्माजीपर मुकद्दमा चलाया गया, वे दोषी नहीं समझे गये और छः वर्षके लिए बन्दीगृहमें डाल दिये गये। दण्डाज्ञा सुनाते समय जजने अपनी छातीपर पत्थर रखकर कहा था कि यद्यपि आप निर्दोष और अहिंसावादी हैं और उसीके प्रचारक भी हैं तथापि आपके इस कार्यसे गहरी अशान्ति फैलनेकी सम्भावना है। इसलिए आपको लोकमान्य तिलकसे नीचे रखना ठीक नहीं। खुलासा यह कि छः वर्षके लिए लोकमान्य भेजे गये थे, वही सजा आपको भी दी जाती है। इस तरह भारतके आराध्य महात्मा गांधी तो जेलमें भर दिये गये, पर उनकी शिक्षाका जनतापर ऐसा असर पड़ चुका था कि उनकी गिरफ्तारी और सजासे कहीं किसीने चूँ तक नहीं किया।

वारडोली रेज्यूलूशनके स्थगित करनेके बाद आन्दोलनमें शिथिलता तो आ गयी, पर जनताके अहिंसात्मक भाव ज्यों-के-त्यों बने हुए हैं। इसका प्रमाण अकालियोंकी शानदार विजय है।

अकालियोंकी वीरतासे सारा संसार परिचित है। अभी हालहीमें 'गुरुका बाग' वाले मामलेमें सत्याग्रह-शस्त्रसे ही अकालियोंने अनूठी विजय प्राप्त की है। अकालियोंने मार खायी, तरह-तरहके कष्ट सहे, पर सत्याग्रहपर अहिंसात्मक भावसे डटे रहकर सरकारको लाचार कर दिया। अन्ततः सरकार पिछड़ गयी, या यों कहिये कि पशुबलपर आत्मबलकी विजय हो गयी।

असहयोगका फल

दो वर्षोंके भीतर असहयोग आन्दोलनने इतना गहरा और अधिक काम कर दिखाया कि जिसका अन्दाजा लगाना भी कठिन काम है। स्थूल दृष्टिसे यों कहा जा सकता है कि असहयोगके कारण देशके कोने-कोनेमें बच्चे-बच्चेके हृदयसे स्वराज्यकी माँगकी आवाज निकलने लग गयी। त्याग क्या है, इसकी प्राचीन शिक्षा भारतीयों-को असहयोगसे फिर मिली है। जिस जेलके नामसे लोग पहले बेतरह घबड़ाते थे, जिस जेलका शस्त्र धारण कर सरकार इठलाती फिरती थी, वही जेल अब इतना सरल हो गया कि देशका एक चार वर्षका बच्चा भी उसमें जानेके लिए तैयार है। सरकार भी अब उससे परेशान हो गयी है। इस भावके पैदा होनेसे निर्भीकतापूर्वक काम करनेवालोंकी कमी दूर हो गयी है।

असहयोग-आन्दोलनने एक बार फिर सन् ५७ के विप्लवसे भी अधिक और उससे उच्चतर उपायोंद्वारा अङ्गरेजी राज्यके अस्तित्वको खतरेमें डाल दिया। यह बात तत्कालीन गवर्नर जेनरल लार्ड रीडिं-गको भी स्वीकार करनी पड़ी थी कि—

"His programme came with in an inch of success. I stoods puzzled and perplexed."—(Lord Reading of Calcutta on the Non-Co-operation movement of 1921.)

अर्थात् "इस आन्दोलनकी सफलतामें केवल एक इञ्चकी कसर रह गयी थी। मैं तो हैरान और परेशान था।"

यद्यपि अर्थाभावके कारण राष्ट्रीय शिक्षाका प्रचार जैसा होना चाहिए था वैसा तो नहीं हुआ, पर राष्ट्रीय शिक्षाका महत्व अब प्रत्येक विद्यालयके छोटे-छोटे बालक भी साधारणतः समझने लग गये हैं। सरकारी नौकरी छोड़नेके सम्बन्धमें भी यही बात कही जा सकती है। जीवन-निर्वाहके लिए जो लोग नौकरी करते रहे हैं वे भी अब इस बातको समझने लगे हैं कि विदेशी सरकारकी नौकरी करना ही अपने देश-भाइयोंका गला घोटना है।

धीरे-धीरे देशके लोगोंमें शिथिलता आ गयी, म० गाँधी भी राजनीतिक कामोंसे कुछ समयके लिए अलग हो गये। उन्होंने घोषित कर दिया कि मैं केवल खादी प्रचार करूँगा। भारतवर्ष चर्खेके द्वारा स्वराज्य स्थापित करेगा। उस समय म० गाँधीका उक्त कथन बहुतसे लोगोंको बिलकुल साधारण जँचा। कुछ लोगोंने तो यहाँतक कह डाला कि अब असहयोग-आन्दोलन मर मिटा, अब देशवासी हतोत्साह हो गये, स्वराज नहीं मिल सकता। इस प्रकारकी भ्रान्त धारणाएँ बहुतसे लोगोंमें घर कर गयीं।

जो भी हो, यह तो सबको मानना पड़ेगा कि इस आन्दोलनसे सबसे अधिक फायदा स्वदेशी वस्त्र-प्रचारको पहुँचा है। इससे देशमें खद्दरका खासा प्रचार हुआ है। खासकर पंजाब-प्रान्तमें खद्दरका अच्छा प्रचार हुआ। वहाँ इस आन्दोलनके पहलेसे चरखे चलते हैं। पंजाबमें औसत हिसाबसे हर पाँच घरके बीच एक चरखा

चलता है। अकालियोंमें फी सदी ८० आदमी खद्दरधारी हैं। वहाँ ऊनी और रेशमी खद्दर भी तैयार होता है। सन् १९२१ में प्रान्तीय कांगरेस-कमेटीने ४६ हजार रुपये खद्दर-प्रचारमें खर्च किये थे। १९२३ में ५० हजार खर्च किये गये। इसके अलावा २० हजार रुपये जुलाहोंके वाजिवसे ज्यादा मजदूरी देनेमें और कम कीमतपर खद्दर बेचनेमें लगाये गये। वहाँ खद्दरसमिति भी बनी। उसने खद्दर बुनना सिखानेका एक स्कूल और कई खद्दर-भण्डार खोले। सितम्बर १९२१ में पञ्जाबमें ४० लाख चरखे चले। पंजाबमें १ करोड़ ८० लाख एकड़ में रुईकी खेती हुई। वहाँ २७ इञ्च अर्जका खद्दर ।) से ॥) गजतक और ४५ इञ्च अर्जका ॥ से ॥≈)॥ गजतक बिका।

विहार-प्रान्तने भी खद्दर-प्रचारका काम अच्छी तरह किया। दो वर्षके वाद ही पटनाके केन्द्र-खद्दर-भण्डारमें ४० हजार रुपयाका खद्दर हर समय तैयार रहने लगा। विहारने खद्दर-प्रचार में उस समय १ लाख २० हज़ार रुपए खर्च किये थे। वहाँ हर महीने ८ लाख पौंड सूत काता जाने लगा। उस समय बिहारके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें इस प्रकार चरखोंकी संख्या थी:—

भागलपुर	...	१००० चर्खे थे	...	४०० चल रहे थे
दरभंगा	...	१००००० ,,	...	६०००० ,,
गया	...	२०००० ,,	...	८००० ,,
शाहाबाद	...	६००० ,,	...	१००० ,,
मुजफ्फरपुर	...	८०००० ,,	...	४०००० ,,
संथाल-परगना		६०००० ,,	...	२०००० ,,

बिहारके दरभंगा, मुजफ्फरपुर, गया, शाहाबाद और संथाल-परगना, इन जिलोंमें अधिक खद्दर बनता है। खद्दर ।) से ॥) गज तक था। अब तो बिहारमें रङ्गीन रुई भी पैदा की जाने लगी है। खादीकी अच्छी उन्नति हुई है।

मध्यदेशके हिन्दी और मराठी दोंनों भागोंने खद्दर-प्रचारका काम ज़ोरोंसे किया। सन् १९२१ के दिसम्बरमें मध्य-प्रान्तकी कांगरेस-कमेटीको अखिल भारतवर्षीय कांगरेग-कमेटीसे खद्दर-प्रचारके लिए ऋणके रूपमें ३५ हजार रुपये मिले थे। जबलपुर कांगरेस-कमेटीको १५ हजार रुपये अपने हिस्सेके मिले थे।

युक्तप्रान्तमें १५ लाख एकड़में रुई बोयी जाती है। यहाँ सन् १९२१ के दिसम्बरमें ३ लाख चरखे चलते थे। २६ से लेकर ५४ इञ्चतक अर्जका महीन और मोटा खद्दर बनता था। ।=) से लेकर ।।।) गजतक बेचा जाता था। युक्तप्रान्तके शहरमें कितने चरखे चलते थे और उनसे हर महीने कितना सूत तैयार होता था, यह नीचेकी तालिकासे ज्ञात हो जायगा—

शहर	चरखे	सूतकी तादाद	
गाजीपुर	२०००	२४००	पौंड
गोरखपुर	२५०	२४०	,,
देहरादून	४००	३००	,,
झाँसी	५००	३२०	,,
फतेहपुर	५००	६४०	,,
सीतापुर	५००	२००	,,
बस्ती	६००	१२००	,,
शाहजहाँपुर	७००	१२००	,,
बाराबङ्की	२०००	११००	,,
फैजाबाद	१००००	११००	,,
आजमगढ़	१४०००	३५२०	,,
फ़र्रुखाबाद	२१६००	३२०००	,,

इसके अतिरिक्त भारतमें मिलोंकी भी संख्या बढ़ गयी है। सन् १८७७ में कुल ५० मिलें थीं, सन् १९१८ में भारतमें रुईकी

मिलें २६६ चलने लगीं, पर १९२३ के जनवरी मासतक यह संख्या ३०० के लगभग और १९२८ में ३५२ हो गयी। सन् १९१५ में समग्र भारतकी कपड़ेकी मिलोंमें ६८ लाख ४८ हजार चर्खियाँ और १० लाख ८ हजार करघे चलते थे। २ लाख ५ हजार ३५६ मजदूर उनमें काम करते थे। सन् १९२१में २२ हजार चर्खियाँ और १ लाख ९६ हजार करघे बढ़े तथा मजदूरोंकी संख्या भी बढ़कर ३ लाख ३२ हजार हो गयी।

इस प्रकार असहयोग-आन्दोलन तो ठण्ढा पड़ गया, पर खद्दरका प्रचार बराबर बढ़ता गया। यद्यपि देशमें अब खासा कपड़ा तैयार होने लगा, पर बाहरसे आनेवाले कपड़ेकी तादाद अभी घटनेकी जगह बढ़ती गयी। सन् १९१३-१४ में समूचे भारतमें ६३ करोड़ रुपयेंका कपड़ा और सूत आया था। पर सन् १९२०-२१ में इसका परिमाण १०३ करोड़ हो गया। इसका पहला कारण तो यह है कि सन् १९१३-१४ की अपेक्षा १९२०-२१ में कपड़ेका भाव महँगा हो गया। इसलिए जो माल उस समय हम १) में मँगाते थे, वही माल हमें १९२०-२१ में १॥)—१॥।) में मँगाना पड़ा। दूसरा कारण भारतमें विलासिताका बढ़ जाना है। एक-एक आदमी-के पास फालतू कपड़े १०—१२ हजार रुपयेके रहने लगे हैं। बहुतसे लोगोंने विलायती कपड़ेका पहनना या खरीदना छोड़ा नहीं, पर देशमें असहयोगकी लहरमें हाथ धोनेके लिए देशी कपड़े भी शौकिया खरीदकर सन्दूकोंकी शोभा बढ़ानेके लिए रख लिया। क्योंकि यदि ऐसा न होता, तो सिर्फ भाव बढ़नेसे आनेवाले कपड़ेकी संख्या सन् २०-२१ में ८०।८५ करोड़से अधिक न होती।

जो हो, यह तो स्पष्ट ही है कि भारतके इस आन्दोलनका प्रभाव विदेशोंपर बहुत गहरा पड़ा। लंकाशायर आदिकी मिलें बराबर बन्द होती गयीं। यदि विलासिताप्रेमी भारत-सन्तानें माताका

दुःख दूर करनेके लिए थोड़ासा सुधर जायँ, तो बहुत ही शीघ्र वे कारखाने भी बन्द हो जायँगे, जोकि इस समय विदेशोंमें चल रहे हैं। इसके लिए महात्माजीकी आज्ञापर ध्यान देनेकी आवश्यकता है। सब लोगोंका कर्तव्य है कि वे अपनी जरूरतोंको कम करें और अपने घरमें चरखा चलानेका प्रबन्ध करें।

बारडोलीके प्रस्तावको स्थगित कर देनेसे—विशेषकर महात्मा गांधीकी जेलयात्रासे—आन्दोलनमें शिथिलता आ गयी। यह शिथिलता उत्तरोत्तर बढ़ती गयी। इसका कारण नेताओंका मतभेद और समयकी गति है। गया-काङ्ग्रेसमें भी यह भेद-भाव दूर नहीं हुआ। इससे आन्दोलनमें और भी शिथिलता आ गयी। बाद नेताओंमें क्षणिक समझौता तो हुआ, पर काम जैसा होना चाहिए, वैसा नहीं हो सका। इस मतभेद और शिथिलताके कारण बहुतसे लोगोंमें उदासीनता आ गयी और असहयोगकी सफलतामें अविश्वास-सा उत्पन्न हो गया। तब तक हिन्दुओंने शुद्धिका काम जारी किया अर्थात् जो हिन्दू मामूली कारणवश जातिसे निकाल बाहर किए गये थे, और जो मुसलमानोंमें सम्मिलित नहीं हुए थे और न होना ही चाहते थे, उनकी वैदिक मन्त्रोंद्वारा यज्ञादिसे शुद्धि करायी जाने लगी। आर्य-समाज तो यह काम करता ही था, पूज्य मालवीयजीके उद्योगसे हिन्दू-महासभाने भी अछूतोद्धार करना शुरू कर दिया। इससे मुसलमानोंमें घोर अशान्ति फैलती जा रही है, क्योंकि वे तो ताक लगाये बैठे थे कि यदि थोड़े दिनों-तक इन्हें हिन्दू अपनी जातिमें न मिलावेंगे तो इन्हें बाध्य होकर मुसलमानोंकी शरण लेनी पड़ेगी। यद्यपि हिन्दुओंके इस कामसे शिक्षित मुसलमान असन्तुष्ट नहीं हैं, तथापि लोगोंको हिन्दू-मुसलिम एकता टूटती-सी दिखायी पड़ने लगी। इन दिनों हिन्दू-मुसलमानोंके बीच कई दंगे भी हो गये। पर दंगेका मूल कारण कौन है यह

बात शिक्षित समाजसे छिपी नहीं है। कौन नहीं जानता कि हिन्दू-मुसलिम वैमनस्यमें ही ब्रिटिश-शासनकी स्थिरता है। यदि विचार-दृष्टिसे देखा जाय तो इस कामसे दोनों जातियोंके बीचकी एकताके टूटनेका कोई कारण नहीं दिखायी पड़ता। क्योंकि विना किसी प्रकारका दबाव डाले धर्म-प्रचारका काम करनेमें प्रत्येक जाति पूर्ण स्वतन्त्र है। यदि ऐसा न होता तो भारतमें शून्यसे सात-आठ करोड़ मुसलमान कैसे हो जाते। इसलिए हमारी तो यह दृढ़ धारणा है कि मुसलमान भाई हिन्दुओंके इस कामसे कुछ भी असन्तुष्ट न होंगे और न एकतामें किसी प्रकारकी बाधा ही पड़ने देंगे। और यदि ऐसा हुआ यानी एकता टूटी भी तो इसका दोषभागी कौन होगा, यह सोचनेकी बात है। कुछ लोग कहते हैं कि इस समय यह शुद्धि-आन्दोलन बन्द रखा जाय। पर हम पूछते हैं बन्द करनेसे लाभ? यह तो जभी शुरू किया जायगा तभी वही बात होगी। क्या आज मुसलमान इससे असन्तुष्ट हो रहे हैं और कुछ दिन बाद न होंगे? यदि यह कहा जाय कि यह आन्दोलन कभी उठाया ही न जाय, तो इस कथनका अर्थ तो यह होता है कि हिन्दू-जातिका अस्तित्व ही मिटा दिया जाय। संसार देख रहा है कि और सब जातियोंकी संख्या प्रतिवर्ष बढ़ रही है, पर अभागी हिन्दू जाति हर साल कम होती जा रही हैं। सन् १९११ की मनुष्य-गणनामें जितने हिन्दू थे १९२१ में प्रत्येक १०००० पीछे ३६२ हिन्दू कम हो गये। इसलिए इसमें हताश होनेका कोई कारण नहीं दिखाता। इन्हीं कारणोंको लेकर काम करनेवाले लोग भी देखादेखी उदासीन होते जा रहे हैं। कुछ लोगोंकी तो यहाँ तक दृढ़ धारणा हो गयी कि "बस अब यह निश्चय है कि भारतके ललाटमें दासता ही अङ्कित है, वह कभी मिट ही नहीं सकती।" पर यह हमेशा ध्यानमें रखना चाहिए कि "उद्योगिनः किन्तु करोति साधनम्" (उद्यमी क्या

नहीं कर सकता) अर्थात् उद्योगसे सब कुछ प्राप्त हो सकता है। जब उद्योगसे मनुष्य ईश्वरतकको प्राप्त कर लेता है, तो स्वराज्य प्राप्त करनेकी तो बात ही क्या।

यहाँपर एक बातका उल्लेख कर देना और भी आवश्यक है। वह यह है कि दूसरोंके उसकानेसे मुसलमानोंने मसजिदके सामने बाजा रोकनेमें अपना धर्म समझा। परिणाम स्वरूप कई जगह केवल बाजेके लिए ही झगड़े हो गये। अन्ततः हिन्दू लोग कहाँतक अपने अधिकारोंको छोड़ें? इस तरहके नये-नये काम झगड़े फैलानेके लिए किये जाने लगे हैं।

अब हमें फिर अपने मूल विषयकी ओर आना चाहिए। विचार करनेवाले लोग जान सकते हैं कि इस आन्दोलनमें नैतिक-शिक्षा कूट-कूटकर भरी हुई है। अतः इसका प्रभाव जो कुछ पड़ा है वह अमिट है। हम पहले दिखा चुके हैं कि आन्दोलनमें शिथिलता और तीव्रता स्वाभाविक ही आया करती है। तदनुसार ही बीचमें कुछ समयके लिए इसमें भी आ गयी थी। किन्तु इससे उदासीन होनेका कोई कारण नहीं था। असहयोगसे पहलेकी स्थितिको देखकर कौन जानता था कि देशमें स्वतन्त्रताका आन्दोलन इतने शीघ्र इतना आगे निकल जायगा? कौन जानता था कि वायसराय भी यहाँके शान्तिमय आन्दोलनसे उद्विग्न होकर कहेंगे कि—"भारतमें ब्रिटिश राज्यके कल पुर्जे अब बिलकुल खड़खड़ाने लग गये?"



भारतकी वर्त्तमान अवस्था और उसका भविष्य

यह कहना भूल है कि असहयोग-आन्दोलन मर मिटा। हाँ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि सन् १९२२ के बाद उसमें शिथिलता आ गयी थी। सन् १९२८ की कलकत्ता-कांगरेससे देशके आन्दोलनने फिर जोर पकड़ लिया। अब देशका लक्ष्य सुशासन न रहकर पूर्ण-स्वाधीन होना हो गया। कांगरेसने यही पास किया है कि ३१ दिसम्बर १९२९ तक यदि सरकार औपनिवेशिक स्वराज न दे देगी, तो पहली जनवरीसे ही पूर्ण स्वाधीनता घोषित कर दी जायगी। और यदि उक्त अवधिके भीतर सरकार चेत गयी—जो कि पूर्ण असम्भव है—तो औपनिवेशिक स्वराज प्राप्त करके भारत पूर्ण-स्वाधीन होनेके लिए धीरे-धीरे अग्रसर होगा। इससे सरकारको सोचनेके लिए सालभरकी अवधि भी मिल गयी है और १९३० में अहिंसात्मक असहयोग जारी करनेके लिए देशको तैयार करनेका भी अवसर है। इस बारके आन्दोलनकी गति देखनेसे दिलमें बड़ी प्रसन्नता होती है। यह आन्दोलन ऐसी शान्तिके साथ प्रौढ़ हो रहा है कि हृदयमें शुभाशाका सञ्चार हुए बिना नहीं रहता।

सन् १९२१ के आन्दोलनमें और इसमें बहुत अन्तर है। वह आन्दोलन भारी तूफानकी तरह आगे बढ़ा था। उस समय सरकार बड़ी धिराईसे दमनचक्र चला रही थी। किन्तु इस सालका आन्दोलन निस्तब्धताके साथ आगे बढ़ रहा है। इसकी गतिविधि बड़ी ही सुन्दर है। इसमें न तो हो-हल्ला, न तूफान है। इतनेपर भी काम बड़ी तेजीसे आगे बढ़ रहा है और सरकार पगली

कुतियाकी भाँति झुँझलाकर कार्यकर्त्ताओंको काटने दौड़ रही है। यही हमारे विजयका प्रधान शुभ चिह्न है।

संयुक्त प्रान्तके ही क्यों समूचे भारतके प्राण तथा नवयुवकोंके अगुवा श्रद्धेय पं० जवाहरलाल नेहरूके (१) पूर्ण स्वाधीनता, जो कि एक तरहसे पास ही हो गया है और (२) एशियाई संघकी स्थापना—इन दो प्रस्तावोंके पास कराने तथा तदनुकूल देशमें आन्दोलनकी उत्तरोत्तर वृद्धि होते देखकर सरकार यह सोच रही है कि इस समय इतनी तेजीसे दमन-चक्र चलाना आवश्यक है कि जिसमें ३१ दिसम्बर १९२९ तक देश तैयार ही न हो सके और नेतालोग जेलमें जले जायँ। यही सोचकर उसने दो संहारकारी कानूनोंकी (ट्रेड डिस्प्यूट्स विल और पब्लिक सेफ्टी विल) निहायत बेशर्मीके साथ रचना की है। इन कानूनोंके अनुसार मजदूर-सङ्गठन करना, राष्ट्रीय कामोंमें भाग लेना तथा सभाओंमें सम्मिलित होना भी घोर अपराध है।

ट्रेड डिस्प्यूट्स ऐक्ट—अप्रैल १९२९ में सरकारने इसे पास किया। उसका कहना था कि इस कानूनकी इसलिए आवश्यकता है कि जिसमें मिलके मालिकों और मजदूरोंका झगड़ा निपटाया जा सके। पर वास्तवमें सरकारकी मंशा है, इस कानूनके द्वारा मजदूर संगठनको रोकने की। इस बिलको पास करनेमें सरकारने किन-किन उपायोंसे काम लिया है, यह सबलोग जानते हैं। मजदूरोंको सन्तुष्ट करनेके लिए एक ओर तो उसने ह्विटली कमीशन नियुक्त कर दिया और यह कहकर मजदूरोंको समझा दिया कि यह कमीशन सिर्फ मजदूरोंके सुख-दुःखकी जाँच करनेके लिए ही नियुक्त किया जा रहा है और दूसरी ओर मजदूरोंकी बढ़ती हुई शक्तिको रोकनेके लिए ट्रेड डिस्प्यूट्स बिल पास किया।

पब्लिक सेफ्टी आर्डिनेंस—साम्यवादके प्रचारको रोकनेके

लिए सरकारने पब्लिक सेफ्टी बिल (बोलशेविक बिल) एक बार शिमलेकी बैठकमें रद्द हो जानेपर भी दुबारा फरवरी १९२९ की दिल्लीकी एसेम्बली-बैठकमें पेश किया। एसेम्बलीके अध्यक्ष माननीय पटेलजीने इस बिलपर अपनी यह व्यवस्था दी कि या तो सरकार मेरठके मुकदमेका फैसला होनेतक इस बिलका पेश होना स्थगित रक्खे और या मेरठके अभियुक्तोंको मुक्त कर दे। सरकारको ये दोनों ही बातें मंजूर नहीं थीं। न तो वह मेरठके अभियुक्तोंको छोड़ना ही चाहती थी और न इस बिलके पास होनेमें देर करना ही उसे सह्य था। वह तो इस बिलको जल्दी-से-जल्दी पास कराकर मेरठके मामलेमें गिरफ्तार हुए लोगों तथा अन्यान्य व्यक्तियोंको इस नये कानूनका शिकार बनाना चाहती थी। वायसराय लार्ड इरविनने पटेलजीसे गुप्त बातें कीं और उनके विचारोंको पलटनेकी बहुतेरी चेष्टाएँ कीं, किन्तु परिणाम कुछ न हुआ—पटेलजी सुमेरुवत् अपने सिद्धान्तपर दृढ़ रहे। उन्होंने कह दिया कि ऐसा करना कानूनन उचित है। और एसेम्बलीके प्रेसीडेण्टको पूरा अधिकार है कि वह ऐसे बिलोंको ऐसी अवस्थामें पेश न होने दे। अन्तमें लार्ड इरविनने यहाँतक कहा कि मेरे विशेष अधिकारसे तो आप इसे पेश होने देंगे न? पटेलने स्पष्ट शब्दोंमें कहा कि इस विषयमें आपका विशेष अधिकार भी काम नहीं दे सकता, इसके लिए मैं चैलेञ्ज देता हूँ। इस प्रकार जब कर्त्तव्य-परायण पटेलजीने बिलको पेश नहीं होने दिया, तब लार्ड इरविनने पब्लिक सेफ्टी आर्डिनेंस (विशेष कानून) अपने विशेषाधिकारसे घोषित किया।

अध्यक्ष पटेलकी व्यवस्था केवल उचित ही नहीं, बल्कि कानूनन भी ठीक थी। पहले कहा जाता था कि पटेलजी निरपेक्ष भावसे स्वतंत्र विचारके अनुसार योग्यता और गम्भीरता-पूर्वक कार्य करनेके लिए इस पदपर स्थिर हैं। किन्तु अब समझमें नहीं आता कि इस

बार जब उन्होंने सरकारके विरुद्ध व्यवस्था दी, तब वायसराय और सरकार दोनोंके कलेजेपर साँप क्यों लोट गया? अध्यक्षकी दी हुई व्यवस्थाके विरुद्ध काम करना सरकारके लिए बड़ीही लज्जाकी बात है। वायसरायका सरेआम हस्तक्षेप करना तो ब्रिटिश-साम्राज्यके लिए घातक होगा—यह निश्चय है।

भारतकी व्यवस्थापिका सभाएँ क्या हैं, तमाशा हैं। अब तो वायसराय यहाँतक जल-भुन उठे हैं कि वह शीघ्र ही एसेम्बलीके अध्यक्षके अधिकारोंको कम करानेवाले हैं। इसके लिए उन्होंने भारत-सचिवकी अनुमति माँगी है। न्यायतः विचार प्रकट करनेपर तो हमारे शासकगण इस प्रकार आपेसे बाहर हो जाते हैं, किन्तु उनके हितोंकी रक्षाके लिए यदि कोई सरकारी मेम्बर बेसिर-पैरकी बात भी कह डालता है, तो उसे कोई पूछनेवाला नहीं। अभी हालही में गत २५ फरवरी १९२९ को राज्य-परिषदमें माननीय सेठ गोविन्द-दासके यह कहनेपर कि फौजमें गो-मांसकी जगह बकरेका मांस खर्च किया जाय,—जङ्गी लाटने कहा था कि यदि गोरी सेनामें गो-मांसके स्थानपर बकरेका मांस दिया जायगा तो प्रतिदिन खर्च ४॥ लाख रुपया बढ़ जायगा। इस सम्बन्धमें "लीडर" के सम्वाददाताने दिल्लीसे जबलपुर जाते समय मान० सेठ गोविन्ददाससे बातें कीं। सेठजीने कहा:—

भारतमें स्थित ब्रिटिश-सेनाके लिए दूध देनेवाली गायोंकी हत्या रोकनेके सम्बन्धमें मैंने जो प्रस्ताव उपस्थित किया था, उसका विरोध करते हुए जङ्गी लाटने कल राज्य-परिषद्में कहा कि यदि गो-मांसके स्थानपर बकरेका मांस उन्हें दिया जायगा तो खर्च ४॥ लाख रुपया रोज बढ़ जायगा। इस बड़ी रकमको सुनकर मैं आश्चर्यमें आ गया और यह कह भी दिया कि शायद यह रकम एक वर्षके लिए कही गयी है। मैं गो-मांस या बकरेके मांसका भाव नहीं जानता—क्योंकि

इन्हें खरीदनेका मुझे कभी मौका नहीं आया है—इसलिए मैं इसपर विशेष वहस न कर सका। घर वापस आनेपर मैंने भाव पुछवाये तो मालूम हुआ कि गो-मांस ।) सेर और बकरेका मांस ॥) सेर मिलता है।

१९२७ में लाला सुखवीर सिंहके प्रश्नके उत्तरमें जङ्गी लाटने कहा था कि भारतमें अफसरोंको लेकर कुल ६७६४० ब्रिटिश सैनिक हैं और १९२६—२७ का तखमीना था कि सालमें ८५३८ टन मांस (हड्डियाँ लेकर) लगेगा। ८५३८ टन=९ ,२१०४० सेरके है। अब इसे यदि १ करोड़ सेर समझ लिया जाय, तब भी गो-मांसके स्थानपर बकरेका मांस देनेपर सालमें केवल २५ लाख रुपया अधिक लगेगा।

अब यदि जंगी लाटका हिसाब ठीक माना और दामका अन्तर उपर्युक्त ही रखा जाय, तो प्रत्येक ब्रिटिश सैनिक रोज १३) का यानी २६ सेर बकरेका मांस खायेगा जो बिलकुल असम्भव मालूम होता है। इससे मालूम हो जायगा कि लोकप्रिय प्रस्तावोंका विरोध करते समय जंगी लाट जैसे ऊँचे पदके आदमी भी कैसी आश्चर्यमयी बातें करते हैं। पर उन्हें बोलनेवाला कोई नहीं। क्योंकि वह तो सरकारके पिट्ठू हैं न !

कहनेका अभिप्राय यह कि सरकारके पक्षमें जो कुछ कहा-सुना जाता है, वह सब तो उचित होता है और जिस सत्यसे उसके स्वार्थोंकी पुष्टि नहीं होती, वह अनुचित है। स्पष्ट रीतिसे उचित-अनुचितकी यही विलोम परिभाषा अङ्गरेजी सरकारके भारतीय शासन-कोशमें अंकित है।

यहाँपर मेरठके मुकद्दमेका संक्षिप्त परिचय दे देना अत्यन्त आवश्यक है। संयुक्त-प्रान्तका मेरठ शहर भारतके अङ्गरेजी शासन-कालमें बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है, यह ऐतिहासिक सत्य है।

यह वही मेरठ शहर है, जहाँकी उतावलेपनमें की गयी कार्यवाहीने भारतमें अङ्गरेजी राज्यकी जड़ जमा दी। सन् ५७ के भारतीय स्वाधीनता-संग्रामका प्रारम्भ इसी शहरसे हुआ था। इसीसे सरकार की नजरोंमें यह स्थान विशेष खटकता है। पहले ही कहा जा चुका है कि १९२८ की कांगरेसके बाद, जबसे देशका आन्दोलन सजीव होने लगा है, सरकार उद्विग्न हो उठी है। उसी उद्विग्नतामें उसने भारतके भिन्न-भिन्न स्थानोंमें ३१ नवयुवकोंको गिरफ्तार किया है। वे सब मेरठमें रक्खे गये हैं और वहीं पर मुकदमा चलाया जायगा, इसीसे वह मेरठका मुकदमा नामसे प्रख्यात हो रहा है। अभीतक तो सरकारने उक्त अभियुक्तोंका अपराध स्पष्ट शब्दोंमें बतलानेकी दया नहीं दिखायी है, हाँ इतना अवश्य प्रकट किया गया है कि ये लोग ताजीरात हिन्दकी १२१ धारा (बादशाहको भारतके राज्यसे वंचित करनेके) अपराधमें गिरफ्तार किये गये हैं। इकतीसो अभियुक्त मजदूर संगठन आदिका कार्य करते थे और साम्यवाद प्रचारक थे। इसीसे वे गिरफ्तार करके हवालातमें रक्खे गये हैं और "सुईकी चोरीपर फाँसीका दण्ड" वाली कहावतको सरकार बहादुर चरितार्थ करना चाहती है। किन्तु यहाँ तो सुईकी भी चोरी नहीं! अभी काकोरीके शहीदोंको हम भूले नहीं थे कि यह आफत सामने आ गयी। इन्हींके लिए सरकारको पब्लिक सेफ्टी बिलोंकी हाय-हत्या पड़ी थी और अन्तमें वायसरायने सारे अपमानोंको सहन करते हुए भी उसे विशेष कानूनका रूप दे ही दिया। इसी प्रकार आजसे कुछ ही दिन पहले जब बंगालमें 'बंगाल रेगुलेशन बिल' पेश हुआ था, तब भी प्रान्तीय सरकार चंचल हो उठी थी। उस वक्त 'रेड बंगाल' के नामसे जगह-जगह क्रान्तिकारी प्लेकार्ड चिपकाये गये थे तथा विज्ञापन भी बाँटे गये थे। उनमें इस आशयका मजमून था कि क्रान्तिकारी दल लोप नहीं हो गया है। वह अभी अपनी

शक्ति बढ़ा रहा है और शीघ्र ही युद्ध करके अङ्गरेजी सल्तनतको ध्वंस करेगा। जिस दिन इस बिलपर वोट लिया जानेवाला था, उस दिन ऐडवोकेट जनरलने कौंन्सिलमें लम्बा व्याख्यान देते हुए कहा,—इस समय इस बिलके पास होनेकी बड़ी आवश्यकता है। आपलोग इसकी आवश्यकताको पूर्ण रीतिसे नहीं समझ रहे हैं, पर सरकार देशकी परिस्थितिको भलीभाँति जानती है। आपलोगोंने 'रेड बंगालके' पर्चोंको देखा होगा। (जेबसे एक पर्चा निकालकर) क्रांतिकारी दलका वह पर्चा देखिये मुझे भी मिला है। ऐसी दशामें मुझे पूरी आशा है कि कोई भी देशका शुभचिन्तक मनुष्य इस बिलका विरोध न करेगा। सरकारको अपने खुफिया विभागसे सात दीवारके भीतर होनेवाली बातें भी मालूम हो जाती हैं। अपने दिलमें कोई यह भले ही समझे कि हमारा काम कोई नहीं जान सकता, पर सरकारसे कोई भी बात छिप नहीं सकती। इसीसे आज ऐसा बिल उपस्थित किया गया है।

इसपर श्रीयुत विपिनचन्द्र पाल महाशयने बड़ी हो निर्भीकताके साथ स्पष्ट शब्दोंमें कहा,—बड़े आश्चर्यकी बात है कि खुफिया पुलिस मकानके भीतरकी बातें तो जान लेती है, पर 'रेड बंगाल' के इतने पर्चे सड़कोंपर बाँटे गये, इतने प्लेकार्ड दीवारोंपर चिपकाये गये और पर्चे बाँटनेवाले या प्लेकार्ड चिपकानेवाले आदमियोंमेंसे वह एक भी आदमीको गिरफ्तार न कर सकी। तारीफ तो यह कि ठीक इस बिलके अवसरपर ही क्रान्तिकारी दलको भी अपने कामका प्रचार करनेकी सूझी—इसके पहले कभी उसकी गन्धतक नहीं मिली थी। किन्तु जिस प्रकार सरकारको अपने खुफिया विभागपर घमण्ड है, उसी प्रकार मुझे भी इस बातका विश्वास तो अवश्य ही है कि ऐसे पर्चे बाँटने या प्लेकार्ड चिपकानेवाला आदकी पुलीसकी नजरोंसे कभी भी छिप नहीं सकता। किन्तु कोई आदमी पकड़ा नहीं गया,

उससे यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि यह सब काम सरकारकी रुचिसे उसकी लाड़ली खुफिया पुलिसने ही किया है। उसने यह सोचा है कि लोगोंमें भ्रम फैलाकर बंगाल रेगुलेशनको पास करानेके लिए यह काम बड़ाही युक्तियुक्त है। पाल महाशयकी स्पष्ट बातें सुनकर सरकारी सदस्योंका मुँह नन्हासा हो गया। किसीके मुखसे एक शब्द भी न निकला।

अन्तमें पाल महाशयका कहना ठीक हुआ उक्त बिल पास हो गया। फिर क्या था, इसी बंगाल रेगुलेशन ऐक्टके द्वारा सुभास-चन्द्र बोस जेलमें ठूँस दिये गये तथा और भी बहुतसे नवयुवकोंकी जवानियाँ व्यर्थ ही मिट्टीमें मिलायी गयीं।

इस समय सरकार ऐसा चक्र चला रही है और उसकी रफ्तार तेज करती जा रही है कि अनुमान किया जाता है कि वह ऐसे-ऐसे जघन्य अत्याचार करेगी, जिसकी लोग कल्पना भी न किये होंगे। कितने आश्चर्यकी बात है कि मेरठकी गिरफ्तारीके सम्बन्धमें वायस-रायने एसेम्बलीमें किसीको पूछताछतक नहीं करने दी।

हर्षकी बात है कि सरकार ज्यों-ज्यों दबाती जा रही है त्यों-त्यों आन्दोलन शानके साथ आगे बढ़ता जा रहा है। कलकत्तामें विदेशी वस्त्र जलनेके कारण महात्माजीपर यह अभियोग लगाकर मुकदमा चलाया गया कि सार्वजनिक रास्तोंपर ऐसा करना अपराध है। खासकर ऐसी अवस्थामें उनपर मुकदमा चलाकर एक रुपया जुर्माना किया गया, जब कि अन्य देशके लोगोंने भी बंगाल-सरकारके इस कुत्सित कार्यकी निन्दा की। और देशोंको कौन कहे, खास लन्दनमें जेम्स मैक्स्टनने कहा था कि "बंगालसरकारने महात्मा गांधीको गिरफ्तार करके बहुत ही मूर्खता-पूर्ण कार्य किया है ब्रिटिश-साम्राज्यवादियोंने यह ऐसा काम किया है, जिसके लिए उन्हें पीछे पछताना पड़ेगा। भारतमें फिर दमन कार्य आरम्भ हुआ है,

लेकिन इससे भारतीय अपनी स्वतन्त्रताकी लड़ाई शिथिल नहीं कर सकते।"

महात्मा गान्धीके इस मुकदमेसे ही लार्ड इरविनके दमनयुगका आरम्भ होता है। अब तो भारत-सरकारकी इस नयी नीतिका श्रीयुत सापुरजी सकलतवालाके शब्दोंमें यही उत्तर हो सकता है कि "खुली तौरसे और साहसके साथ सारे भारतमें पूर्ण स्वाधीनता और ब्रिटिश सम्बन्ध-विच्छेदका आन्दोलन जोरोंके साथ किया जाय।"

किन्तु साहस तभी होता है, जब शक्ति रहती है। राष्ट्रकी शक्ति एकता है। अतः ऊँच-नीचका भेद दूर करके प्रत्येक भारतीयको एक सूत्रमें बँध जाना चाहिए। देशके भविष्यको सुदृढ़ बनानेके लिए बालविवाहकी प्रथाको त्याग देना चाहिए। माताओं और बहनोंमें आत्म-रक्षाका भाव भरना चाहिए। बिना इन कामोंके किये हममें शक्ति कदापि नहीं आ सकती। याद रहे कि संसारकी पूरी शक्ति स्त्री और पुरुष दो भागोंमें विभक्त है। हमने अपनी आधी शक्तिको निकम्मी बना दिया है। अतः स्त्री-समाजको सुधारना विशेष प्रयोजनीय है। भला जिस भारतमें विधवाओंकी निम्न प्रकार बढ़ती हुई संख्या रोकी नहीं जायगी, वह देश कैसे शक्ति-सम्पन्न हो सकता है—

(प्रति हजार)

अवस्था		१९२१ में भारतमें	१९११ में इङ्गलैण्ड और वेल्समें
सब उम्रकी		१७५.०	७३.२
०—५	वर्ष	.७	...
५ से १०	,,	४.५	...
१० से १५	,,	१६.८	...

अवस्था	१९२१ में भारतमें	१९११ में इङ्गलैण्ड और वेल्समें
१५ से २० ,,	४६.४	...
२० से २५ ,,	७१.५	१.५
२५ से ३५ ,,	१४६.१	१३.१
३५ से ४५ ,,	३२५.२	५०.५
४५ से ६५ ,,	६११.४	१९३.३
और ६५ वर्ष से ऊपरकी" विधवायें	८३४.०	५६५.९

जबतक इस दुरवस्थाकी ओर समाजका ध्यान नहीं जायगा, तबतक देशका उद्धार नहीं हो सकता। ऊपरकी तालिकामें पाठकगण देख सकते हैं कि इङ्गलैण्ड और वेल्सकी विधवा संख्या कितनी कम है तथा अभागे भारतकी कितनी अधिक।

अस्तु अब हम इस विषयको छोड़कर दूसरे आवश्यक कार्य पर प्रकाश डालना चाहते हैं।

आवश्यक समस्या

इस समय विदेशी वस्त्र-वहिष्कारकी सबसे अधिक आवश्यकता है। इसीसे देशके नेताओंने इसपर पूरा जोर लगाना शुरू किया है। सरकार भी अपने दमन-चक्रसे इस कार्यमें सहायता पहुँचा रही है। इन चार महीनोंमें खादीका कितना प्रचार हुआ है, यह बात इसीसे स्पष्ट हो जाती है कि विलायतकी ४८ मिलें इस अल्प समयके भीतर बन्द हो गयी हैं! यह संख्या कुल मिलोंकी एक तिहाई है। अखिल भारतवर्षीय कांगरेस कमेटीने पूर्ण वहिष्कारके लिए म० गांधीकी अध्यक्षतामें एक वहिष्कार समिति बनायी है। अभी हालहीमें समिति-

की ओरसे जो सूचना प्रकाशित हुई है, उससे पाठकगण यह बात भलीभाँति समझ जायँगे कि देशमें अबतक कितना काम हो चुका है और अभी कितना काम करने की विशेष आवश्यकता है।

कांगरेसने अनुरोध किया है कि आप सबलोग विदेशी वस्त्रका बहिष्कार कीजिए। इससे स्वराज्य मिलनेमें सहायता मिलेगी। राष्ट्र यह देखना चाहता है कि आप स्वयं विदेशी वस्त्रका त्याग कर और इस सन्देशको अपने पड़ोसियों और मित्रोंतक पहुँचाकर इस पुकार-को किस तरह सुनाते हैं। अब और ढिलाई क्यों? कांगरेस आपसे इस अल्पतम स्वार्थत्यागके लिए कह रही है और अगर आप सचमुच स्वराज्य चाहते हों तो आपको यह स्वार्थत्याग करना चाहिए।

भारतमें लाखों आदमी भूखे रह जाते हैं। जब तक उन्हें कम-से-कम आर्थिक स्वतन्त्रता न मिले, तबतक उनके लिए स्वराज्यका कुछ भी अर्थ नहीं है। भारतीय राष्ट्र गाँवमें रहता है, न कि शहरमें—कुल जनसंख्या ३१ करोड़ ८६ लाख है। शहरोंकी जनसंख्या ३ करोड़, २४ लाख है। गाँवोंकी जनसंख्या २८ करोड़, ६४ लाख। इस प्रकार भारतके ८६.८ या लगभग ९० प्रतिशत निवासी गाँवोंमें रहते हैं।

आपके इन २८ करोड़ ६४ लाख देशवासियोंकी आर्थिक स्थिति क्या है? एक भारतीय एक दिन में कितना कमाता है और अन्य देशोंके नागरिकोंकी दैनिक आमदनी क्या है? कुछ अङ्क देखिये:—

प्रति मनुष्यकी प्रतिदिनकी औसत आमदनी—

संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका	३)
आष्ट्रेलिया	२।)
ग्रेट ब्रिटेन	२=)४
कनाडा	१॥=)८
भारत	-)७

लेकिन शहरके रहनेवालोंकी आमदनी गाँवके रहनेवालोंकी अपेक्षा बहुत अधिक होती है, और -)७ प्रति दिनकी औसत आमदनीमें शहरवालोंकी आमदनी शामिल है। अगर शहरवालोंकी आमदनी निकाल दी जाय तो गाँववालोंकी आमदनी -)७ से बहुत कम हो जायगी।

भारतवासियोंकी इतनी कम आमदनी होते हुए भी उन्हें ६६ करोड़से अधिक रुपया विदेशी वस्त्रों और सूतके लिए विदेशोंको देना पड़ता है। इसमेंसे बहुतसा कपड़ा भारतके गाँवोंमें रहनेवालोंमें खप जाता है। जैसा ऊपर बताया गया है कि ९० फी सद भारतवासी गाँवोंमें ही रहते हैं।

भारतने पिछले दस बरसोंमें ६६३ करोड़ रुपये ग्रेट ब्रिटेन, जापान और अन्य देशोंके व्यापारियोंको दिये। विदेशी वस्त्रका आयात नीचे दिये अङ्कोंसे मालूम होगा कि विभिन्न वर्षोंमें विदेशोंसे कितने रुपयेका वस्त्र आया—

१९१८-१९	५७,४१ लाख
१९१९-२०	५९,१२ ,,
१९२०-२१	९७,३९ ,,
१९२१-२२	५४,६७ ,,
१९२२-२३	६७,७७ ,,
१९२३-२४	६४,७० ,,
१९२४-२५	७९,०० ,,
१९२५-२६	६२,२० ,,
१९२६-२७	६१,६८ ,,
१९२७-२८	६१,९२ ,,

विदेशसे आये और भारतमें तैयार हुए वस्त्रके सम्बन्धमें हिसाब लगानेसे मालूम होता है कि भारतमें आदमी पीछे प्रतिवर्ष

१३ गज कपड़ा लगता है। अब हमें यह देखना चाहिए कि भारतमें विदेशोंसे कितना वस्त्र आता है? पिछले दस बरससे भारतमें जितना वस्त्र खपता रहा है, उसका ३३ प्रतिशत बाहरसे आता रहा। इसका मतलब यह हुआ कि आदमी पीछे ४ $\frac{१}{३}$ गज कपड़ा बाहरसे आता है। व्यक्ति पीछे शेष ८ $\frac{२}{३}$ गज कपड़ा भारतके मिलों और करघोंमें तैयार होता है।

इस प्रकार सिद्ध है कि अगर प्रतिवर्ष व्यक्ति पीछे केवल ४ $\frac{१}{३}$ गज कपड़ा और तैयार होने लगे तो विदेशी वस्त्रका पूर्ण बहिष्कार हो सकता है।

ऊपर बताये हिसाबसे राष्ट्रके लिए ४ $\frac{१}{३}$ × ३१८९ लाख (भारतकी आबादी) = १३८ करोड़ गज और कपड़ा तैयार करनेकी जरूरत होगी। विशेषज्ञोंका कहना है कि प्रत्येक सूत्रकार एक घण्टेमें ३५० गज सूत तैयार करके ८ घण्टेमें एक गज कपड़ेके लिए काफी सूत तैयार कर सकता है। अगर वह एक वर्षमें २०० दिन आठ-आठ घण्टे प्रतिदिनके हिसाबसे काम करे तो वह सालभरमें ३०० गज कपड़ेका सूत तैयार कर सकता है। १३८ करोड़ गज कपड़ा तैयार करनेके लिए हमें उक्त प्रकारके केवल ४४ लाख सूत्रकारोंकी आवश्यकता होगा। भारतके ५० लाख चरखोंमेंसे ४० लाख चरखे इस समय चल नहीं रहे हैं। जिस राष्ट्रकी आबादी करीब ३२ करोड़ हो, उसमें क्या ४० लाख चरखोंको चलानेवाले नहीं मिल सकते?

इस सबका मतलब यह हुआ कि अगर भारतके प्रति १०० मनुष्योंमेंसे ३ मनुष्य भी चरखा चलावें तो वस्त्रकी समस्या हल हो जाय।

भारतके गाँवोंमें काम करनेवाले, जो सालमें तीन महीने प्रायः बेकार रहते हैं ११ करोड़ होंगे। अगर गाँवके काम करने वालोंमेंसे १८४ लाख आदमी (अर्थात् प्रत्येक ६ बेकार आदमीमें केवल १ आदमी) चरखा चलाने लगे तो उनकी फुर्सतके समय काम करनेसे इतना सूत तैयार हो जायगा जिससे विदेशी वस्त्रका पूर्ण वहिष्कार हो सकेगा। सूत कताईसे उनकी दैनिक आमदनी कम-से-कम एक आना बढ़ जायगी। लाखों आदमियोंकी आमदनी एक आना सात पाईसे कम है। उनकी आमदनीमें इस प्रकार ~) की और वृद्धि हो जायगी।

सबलोग दृढ़ताके साथ यह कार्य करें तो उद्देश्यकी सिद्धि बहुत ही शीघ्र हो सकेगी।

भारत किसी समय वस्त्रके सम्बन्धमें स्वावलम्बी था। ब्रिटिश शासनकालके पहलेके कालके सम्बन्धमें श्री डब्ल्यू० एच० मोरलैण्ड अपनी पुस्तक "इण्डिया ऐट दि डेथ आव अकबर" में लिखा है:—

"जहाँ कहीं भी यूरोपियन गये वहाँ उन्होंने वस्त्र तैयार होते देखा। सब शहर और अधिकतर गाँव अपने लिए अधिकांश वस्त्र अपने ही यहाँ तैयार कर लेते थे।"

इस प्रकार विदेशी वस्त्रके पूर्ण वहिष्कारकी समस्या सरल हो जाती है। आप निम्न-लिखित तीन प्रकारसे या किसी भी एक या दो प्रकारसे वहिष्कार आन्दोलन में मदद दे सकते हैं:—

(१) विदेशी वस्त्रके स्थानमें शुद्ध खादीका व्यवहार करके।

(२) आन्दोलनकी आर्थिक सहायता करके।

(३) प्रतिदिन कम-से-कम आध घण्टे स्वार्थत्याग भावसे चरखा चलाकर।

फौरन अभी आजहीसे काम करना शुरू कर दीजिये।

यदि इस कामको भी हम सफल न कर सके तो कहना पड़ेगा

कि हम अभी कुछ भी नहीं कर सकते। इस समय भारतमें कुल २३१६ शहर हैं और ६ लाख ८५ हजार ६६५ गाँव हैं। जिनमें ७५५ शहर और १ लाख ८७ हजार १३८ गाँव तो देशी राज्योंमें और १५६१ शहर तथा ४ लाख ९८ हजार ५२७ गाँव सरकारी राज्यमें हैं। देशी राज्यके शहरोंमें १७ लाख १८ हजार १६४ और गाँवों-में १ करोड़ ३० लाख ३८ हजार ५५९ मकान हैं तथा सरकारी राज्यके शहरोंमें ५० लाख ४६ हजार ८२० और गाँवोंमें ४ करोड़ ५३ लाख ९४ हजार ८१६ मकान हैं। इस प्रकार समूचे भारतमें कुल ६ करोड़ ५१ लाख ९८ हजार ३८९ मकान हैं। प्रत्येक १६.२ घरोंके बीच भी यदि एक चरखा चलने लग जाय तो ४० लाख चरखे आसानीसे चल सकते हैं।

कुछ लोगोंकी धारणा है कि सूत तैयार करनेमें परिश्रम बहुत है और मजदूरी कम है। जब दस दिनमें हाथसे किये जानेवाले कामको मशीनोंके द्वारा घण्टेभरमें या इससे भी शीघ्र किया जा सकता है, तब क्या जरूरत है कि उस कामको घण्टेभरमें न करके दस दिनका समय नष्ट किया जाय। उक्त कथनकी यथार्थतामें हमें भी किसी प्रकारका सन्देह नहीं हैं। किन्तु जब हम गम्भीरतापूर्वक इस विषयपर विचार करते हैं, तब इस परिणामपर पहुँचते हैं कि इस समय भारतकी परिस्थिति ही ऐसी है कि मिलोंकी जितनी ही अधिक सहायता ली जायगी उतनी ही अधिक क्षति होगी। कारण यह कि इस समय भारतके सामने बेकारीका प्रश्न है। भारतको आज मेहनत बचानेकी जरूरत नहीं है, बल्कि बेकारोंके लिए काम देनेकी जरूरत है। इस समय भारतमें २ करोड़ ६७ लाख आदमी ऐसे हैं जो कोई भी काम नहीं करते। इसके अतिरिक्त कितने ही आदमी ऐसे हैं जिनका कुछ समय तो काम-धन्धेमें लगता है, पर अधिकांश समय व्यर्थ नष्ट होता है। ऐसी अवस्थामें मशीनोंके द्वारा काम लेनेका उद्योग करना भारत-

में वेकारीका कायम रखना और उसे बढ़ाना ही है। इस बातपर महात्मा गान्धीने बड़ा ही अच्छा प्रकाश डाला है कि चरखा कातना नित्य सारे समयका पेशा नहीं बताया जा रहा है। यह तो केवल उस समयका काम है जब अपने पास फालतू समय हो। चरखेके इस तरहके कामसे दक्षिण भारतके गाँवोंमें परिवारकी आमदनी सैकड़ा पीछे १५ से लेकर ६६ तक कताईसे होती है। * मिलोंके रोजगारमें अबतक ५० करोड़ रुपया लगा देनेके बाद भी मिल-मालिक केवल १५ लाख आदमियों और कुछ क्लर्कोंको अन्न-वस्त्र देनेके योग्य हुए हैं। ये मजदूर अधिकतर खेतोंके कामसे ही खिंचकर आते हैं। तरह-तरहके कारखानोंके कारण ही आज कितने ही मजदूर तो कोयलेकी खानोंमें काम कर रहे हैं, कितने ही रेलों तथा अन्यान्य कामोंमें। इनकी देखा-देखी कितने ही मजदूर कारखानोंमें व्यर्थ बैठे काम मिलने की प्रतीक्षामें दिन बिताते हैं। इसका परिणाम यह हो रहा है कि भारतकी वेकारी भी कम नहीं हो रही है और खेतीके काममें कितने ही स्थानोंमें मजदूरोंकी कमी भी पड़ती जा रही है। इससे पाठकगण अच्छी तरह समझ सकते हैं कि यदि हमारी प्रवृत्ति न बदलेगी तो उसका देशपर कितना भयानक प्रभाव पड़ेगा।

यहाँपर इस बातका उल्लेख कर देना भी नितान्त आवश्यक है कि मिलके कपड़ेपर लागत क्या बैठती है तथा खादी तैयार करनेमें कितनी। इससे हमें यह बात मालूम हो जायगी कि मिलोंका सामना करनेमें करघा-चरखा कहाँतक टिक सकता है। (मिलका हिसाब १९२४—२५ का और हाथ-बुनाईका १९२२—२३ का है।)

१ रतल मिलके कपड़ेका लागत खर्च

	पाई
कोयला	१०·०६

* Young India for Aug. 3, and Sept. 10, 1925.

			पाई
गोदाम	...	...	१४·५७
मजदूरी	...	...	३६·६६
दफ्तर खर्च	...	...	३·४२
बीमा	...	...	१·६७
कर	...	...	१·५७
सूद	...	...	५·६६
कपड़ेपर कमीशन	...	...	४·६०
एजेंटका कमीशन	...	...	०·८३
इनकम टैक्स आदि	...	...	१·६३
			८३.६३

१ रतल खद्दरका लागत खर्च

			आना—पाई
धुनाई	...	...	१—०
कताई	...	...	३—०
बुनाई	...	...	७—६
मालकी खराबी	...	...	०—६
			१२—०

ऊपरकी तालिकासे सूचित होता है कि १ रतल * कपड़ा मिलसे तैयार करनेमें सात आना खर्च होता है और हाथसे तैयार करनेमें बारह आना यानी पाँच आना अधिक। इससे मालूम होता है कि हम ईंधन, गोदाम, कमीशन, बीमा, टैक्स वगैरहके रूपमें चार आने-तक बचा लेते हैं और मजदूरीमें छः आनेकी घटी सहते हैं। इस प्रकार ग्राहकको जो केवल ग्राहक ही है, यानी जो खुद कातता बुनता

* रतल = ४० तोला।

नहीं है—खरीदकर ही खादी पहनता है, फी गज दो आनेकी घटी लगती है। परन्तु जब वह स्वयं कातने बुनने लगता है, तब वह उसे बचा लेता है और फिर खादी और मिलके कपड़ेका दाम करीब-करीब बराबर ही पड़ता है। इस समय मिलसे कपड़ा तैयार करनेमें भारतको हर तरहसे नुकसान है। सबसे खास बात तो यह है कि मिल खोलनेमें पूँजीका बहुत बड़ा हिस्सा विदेशियोंके हाथ चला जाता है। कारखानोंके वार्षिक व्ययका बहुत बड़ा भाग घिसे हुए पुर्जोंकी मरम्मत और बदलनेमें जाता है। पिछले १६ वर्षोंमें भारतमें ४२ करोड़ रुपयोंसे अधिककी कलें कपड़ेकी मिलोंके लिए आयी हैं। ये कलें हमें एक चाण्डाल-चक्रमें डाल देती हैं। इस प्रकार बड़ी पूँजी विदेशियोंको देनेके बाद भी सालाना मरम्मत करायी आदिके लिए भी हमें काफी रुपये देने पड़ते हैं और इतनेपर भी २०—२५ वर्षके बाद ही कल निकम्मी हो जाती हैं—वहीं पिछली पूँजीकी समाप्ति हो जाती है। माना कि तबतक मिलवाले यथेष्ट धन कमा लेते हैं; किन्तु इससे क्या। हमें यह भी देखना है कि उनका वह लाभ आता कहाँसे है।

'नये हथकंडे'

इधर सरकारने देशको कुचलनेके कुछ नये तरीके भी अख्तियार किये हैं। पंजाब-केसरी लाला लाजपतरायको इसी चक्रमें जीवन त्याग करना पड़ा, अत्यन्त सुकुमार किन्तु सिद्धान्तों पर लोहेके समान दृढ़ता रखनेवाले पं० जवाहरलाल नेहरूको इसके कारण लखनऊमें गहरी चोट आयी। सरकार अपने ऐसे कामोंसे स्थितिको भयानक बनाती जा रही है। साइमन कमीशनके आगमनमें पंजाबने अपनी उदासीनता दिखलानेके लिए साधारणसा काम किया। उसमें काली झंडियाँ लेकर जनता स्टेशनपर गयी। स्वर्गीय लालाजी,

श्रद्धेय मालवीयजी भी जनताके साथ थे। एक आदमी आया और लाला लाजपतरायके ऊपर छाता लगाकर चम्पत होगया। मिनट-भरके बाद पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट घोड़ेपर सवार होकर लालाजीके पास आये और हंटर चलाया। कुछ चोट औरोंको भी लगी, किन्तु लालाजीकी तो उस चोटसे मृत्यु ही हो गयी। एक तो लालाजी वृद्ध थे, दूसरे बीमारीके कारण कलेजेके कमजोर। ऐसी दशामें कलेजेपर ही चोट लगी। इस पाशविक कार्यसे भारतके पूज्य लालाजी सदाके लिए विदा हो गये। मार पड़नेके पीछे मालूम हुआ कि जो आदमी छाता तानकर चला गया था, शायद वह पहचनवानेके लिए आया था।

लालाजीकी इस प्रकारकी मृत्युसे भारतवासी अधीर हो उठे। सरकारने अपने कामोंपर पर्दा डालनेके लिए झटसे एक कमीशन बैठा दिया। तारीफ यह कि उसमें एक भी भारतीय नहीं। कमीशनने ग्रामोफोनके रिकर्डकी भाँति भरे हुए स्वरको इस प्रकार गा दिया,—भीड़ बहुत थी, उसमें कुछ-कुछ उत्तेजना भी मालूम होती थी। पुलिस हटानेका यत्न कर रही थी कि भीड़की ओरसे पुलिसपर ढेले फेंके गये। यह देखकर पुलिस शान्ति-पूर्वक लोगोंको ढकेलकर तथा भय प्रदर्शनके लिए इधर-उधर धक्के देकर भीड़को हटाने लगी। उसमें लालाजीको भी चोट आ गयी। किन्तु लालाजीको जान-बूझकर किसीने नहीं मारा।

सरकारके इस कार्यसे भारतीयोंका असन्तोष और बढ़ गया। प्रार्थना की गयी कि सरकार निष्पक्ष कमीशन बैठाकर इसकी जाँच करावे। पर हाय! सरकारने देशकी प्रार्थनापर जरा भी ध्यान नहीं दिया और भारत-सर्वस्व लालाजीका स्थान रिक्त करके इतिहासमें अपने मस्तकपर कलंकका टीका लगा लिया। कहावत है कि—"यह अनर्थ कितने दिन? कहा,—जितने दिन चले, उतने दिन।"

सरकारके ऐसे कुकार्यका परिणाम यह हुआ कि किसी उत्तेजित युवकने लालाजीको मारनेवाले मि०सैण्डर्सका वध कर डाला। यद्यपि इस प्रकारकी हत्यायें कोई भी विचारवान मनुष्य पसन्द नहीं कर सकता, पर सरकारको ऐसी हत्याओंमें ही अपने अस्तित्वकी रक्षा दिखायी पड़ती है। क्या यह आश्चर्यकी बात नहीं है? यदि भीड़में जरा भी उत्तेजना होती, अहिंसाभावकी तनिक भी कमी होती, तो कौन कह सकता है कि लालाजीपर मार पड़ते देखकर जनता भूखी सिंहिनीकी भाँति पुलिसपर टूट न पड़ती? हम मानते हैं कि पीछे न जाने कितने घर मिट्टीमें मिला दिये जाते। किन्तु उस समय जनताका ध्यान परिणामपर कभी न जाता और वह मुट्ठीभर पुलिस कर्मचारियोंकी अवश्य ही खासी मरम्मत कर देती। पर जनतामें तो यह भाव ही नहीं था। वह तो पूर्ण शान्तिके साथ अपने कार्यको पूरा करना चाहती थी। इसलिए यह कहना बिलकुल असंगत है कि भीड़ उत्तेजित हो गयी थी।

'भविष्य'

ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करनेपर देश की प्रगतिसे यह बात जानी जा सकती है कि भारतके राजनीतिक भविष्यमें क्या होगा। कलेवर-वृद्धिके भयसे इसका वृहद् विवेचन तो नहीं किया जा सकता, हाँ इतना अवश्य कहा जा सकता है कि भारतका निकट भविष्य अवश्य ही समुज्ज्वल है। इसका अन्दाजा लगानेके लिए हमें देशकी राजनीतिक प्रगतिपर ध्यान देना होगा। यहाँ पर स्वतंत्रताकी पहली लहर सन् १८५७ में उत्पन्न हुई थी। परिणाम-स्वरूप ब्रिटिश-शासनकी जड़ पुष्ट हो गई और लोगोंको निश्चय हो गया कि अब भारत कभी स्वतंत्र नहीं हो सकता। पचास वर्षतक देश गहरी नींदमें पड़ा रहा, बाद सन् १९०५-०६ में स्वदेशी आन्दोलनके

रूपमें फिर वह लहर आयी। सरकारके दमनचक्रसे वह भी कुचल उठी। पश्चात् १३-१४ वर्षके बाद पंजाब-हत्याकाण्ड होनेपर असहयोग आन्दोलनके रूपमें पुनः जागृतिके चिह्न दिखायी पड़े। किन्तु फिर देश पिछड़ गया और अब सन् १९२९ में उठ रहा है। स्वतन्त्रताकी लहरकी इस गतिको देखकर अनुमान किया जाता है कि भारत सन् १९३५ तक अवश्य स्वतन्त्र हो जायगा; संसारकी कोई भी शक्ति उसमें बाधा नहीं पहुँचा सकती। अन्यान्य देशोंके स्वातन्त्र्य-युद्धसे भारतीय स्वातन्त्र्य-युद्धमें खास विशेषता यह है कि यह अहिन्सात्मक है। अन्यान्य देशोंकी जागृति जब-जब वहाँकी सरकारोंद्वारा रौंदी गयी, तब-तब वे देश सैकड़ों वर्षोंतक हाथ-पैर हिलानेके योग्य नहीं हुए; किन्तु भारतमें यह बात नहीं हुई। यहाँ बहुत अल्प समयमें ही एक लहरके बाद दूसरी लहर उठी है और उठ रही है। इस आधारपर यह दृढ़ता-पूर्वक कहा जा सकता है कि अब भारतकी आजादीके दिन बिलकुल करीब हैं। सम्भव है कि बहुतसे लोग हमारे इस कथनको पागलका प्रलाप समझेंगे। यह समझते होंगे कि अभी भारतीय जनतामें राष्ट्रीयताका ऐसा उच्चभाव पैदा नहीं हुआ है कि उसकी स्वतन्त्रता इतने समीप समझी जाय। किन्तु ऐसे लोगोंकी समझ सर्वथा भ्रान्त-मूलक है। उन्हें यह नहीं मालूम कि स्वातन्त्र्य युद्धमें पद-दलित और परतन्त्र राष्ट्रकी ओरसे दैवी सत्ता काम किया करती है और उसी सत्ताके प्रभावसे सफलता मिला करती है। यदि ऐसा न होता तो ५०-६० वर्षमें ही जापान इतना आगे कैसे बढ़ जाता? चीन आनन-फानन यह अद्भुत चमत्कार कैसे दिखलाता? मुट्ठीभर अङ्गरेजोंमें भारत-पर अधिकार जमानेका ही साहस कैसे होता? और फिर चारों ओरसे कठिन चंगुलमें जकड़े हुए भारतका आन्दोलन इतना आगे क्योंकर बढ़ता? किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि जब दैवी सत्तासे

सब काम होता है तो फिर भाग्यपर छोड़ देना चाहिए, उद्योग करनेकी आवश्यकता ही नहीं।

भारतके भविष्यके सम्बन्धमें बहुतसे विद्वानोंके मत समय-समयपर प्रकाशित हो चुके हैं। लोकमान्य तिलकने ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार करते हुए अपने प्रतिष्ठित पत्र मराठामें एक बार लिखा था कि "बीसवीं शताब्दीके अर्द्धभागमें भारतका स्वतन्त्र होना अनिवार्य है।" योगीराज अरविन्द घोषने सन् १९१८-१९ में कहा था कि,—"भविष्यमें भारतको जिस विपुल तथा विराट् कार्यका भार अपने ऊपर लेकर खड़ा होना पड़ेगा, उसीकी सूचना स्वरूप सारे संसारमें एक विचित्र प्रकाशका होना आरम्भ हो गया है। आगामी ३०-४० वर्षके भीतर संसारमें एक विचित्र प्रकारका परिवर्त्तन होगा, सारी बातोंमें उलट-पुलट हो जायगा। उसके बाद जो नया जगत् तैयार होगा, उसमें भारतकी सभ्यता ही संसारकी सभ्यता होगी। भावी भारतका काम, केवल भारतके लिए नहीं, बल्कि समूचे संसारके लिए है।" इङ्गलैण्डके प्रसिद्ध इतिहासज्ञ सरजान सीलीने भारतके सम्बन्धमें जो अटकल लगायी है, उसके अनुसार भी सन् १९३५ तक ही भारतका स्वतन्त्र होना सूचित होता है। और भी बहुतसे विद्वानोंकी सम्मतियोंसे यही सूचित होता है कि अब भारतकी स्वतन्त्रताका समय आ गया है। अतः देशवाशियोंको जी-जानसे पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिए तैयार हो जाना चाहिए। याद रहे, मर मिटना अच्छा है, पर गुलाम होकर जीवित रहना अच्छा नहीं।



उपसंहार

देशकी दशाका वर्णन पिछले प्रकरणोंमें किया जा चुका। पर इस ब्रिटिश भारतका इतिहास इतना बड़ा है कि ऐसे-ऐसे कई खण्डोंमें भी पूरा होना असम्भव है। शासनके जिस कार्यकी ओर दृष्टि डालिये, उस कार्यमें ही पोल। ऊपरसे तो मालूम होता है कि अमुक कामसे सरकार देशका बहुत उपकार कर रही है, पर उसके भीतरी रहस्योंपर ध्यान देते ही वह धारणा निर्मूलसी मालूम होने लगती है। इस प्रकरणमें कुछ ऐसी ही बातोंका उल्लेख करना है।

'काइन हाउस' (काजी हाउस) सरकारने इसलिए बनाया है कि यदि किसीका पशु किसीकी जायदादका नुकसान करे, तो वह उस पशुको काइन हाउस पहुँचा दे, सरकार उस पशुके मालिकोंपर जुर्माना करेगी। ऊपरसे देखनेमें तो यह कार्य बिलकुल ही प्रजाका उपकारी प्रतीत होता है, पर वास्तवमें इससे देशकी बहुत बड़ी हानि हो रही है। सरकारने इसे पैसा पैदा करनेका एक जरिया बना लिया है। कलकत्ता शहरमें देखिये, सरकारी आदमी ही सड़कोंपर फिरती हुई गौओंको खदेड़कर काइन हाउसमें ले जाते हैं और फिर वहाँ उनके मालिकोंसे जुर्माना वसूल किया जाता है। सरकार ही तो फरियादी बन जाती है और वही फैसला भी सुनाती है। कितने ही आदमी सिर्फ गौओंको काइन हाउस पहुँचानेके लिए सड़कोंपर फिरा करते हैं और सरकार उन्हें वेतन देती है। देहातोंमें पहले ऐसी हानिका निर्णय ग्रामीण मुखिया कर दिया करता था, पर लोग रोषमें आकर अपनी अनभिज्ञताके कारण झुण्ड-के-झुण्ड चौपाये काइन हाउसमें पहुँचा, देशका पैसा जुर्मानेमें दिलाकर समुद्र-पार भेज रहे हैं।

दूसरी ओर सरकार एक ओर तो शहरोंमें दूकानवालोंसे दूकानका इनकमटैक्स, परदा टाँगनेका लाइसेंस और पटरा बढ़ानेका भाड़ा अलग-अलग लेती है और दूसरी तरफ अनेक तरहके दोष दिखाकर इन्हीं कामोंपर जुर्माना भी करती रहती है। एक तरफ तो शहरोंमें गरीब मिट्टी वेचनेवालोंसे, घूम-घूमकर जूते सिलाई करके गुजर करनेवाले निर्द्धन मोचियोंसे और खुमचा वेचनेवालोंसे सरकार टैक्स लेती है और दूसरी तरफ उन्हींको रास्ता-चन्दीमें व्यर्थ पकड़कर सरकारी कर्मचारी उनसे जुर्माना वसूल करते हैं। यदि यह कहा जाय कि सरकार उनके व्यापारका टैक्स लेती है न कि रास्तेमें बेचनेका, तो हम यह पूछते हैं कि जब उनके व्यापारका टैक्स लिया जाता है और यह भी मालुम रहता है कि उनके व्यापार ऐसे हैं कि वे सड़कोंपर फिरकर ही किये जा सकते हैं, तब सरकार उन्हें उन व्यवसायोंको करने ही क्यों देती है?

भारतीय समाजपर भी सरकार बहुत गम्भीरताके साथ कुठाराघात कर रही है। किसी पर-स्त्री-पुरुषका यदि सम्बन्ध हो जाता है और उनमेंसे किसीका अभिभावक दण्ड दिलानेकी इच्छासे मामला चलाता है, तो आधुनिक न्यायालयमें दोषी स्त्री-पुरुषसे सिर्फ यही पूछा जाता है कि "तुमलोग राजी हो?" यदि उन दोनोंने यह स्वीकार कर लिया कि "हाँ हम राजी हैं।" तो वे मुक्त कर दिये जाते हैं। स्थूल रूपसे देखनेमें तो चाहे यह किसीको अनुचित न्याय न जँचे पर वास्तवमें सूक्ष्म रूपसे ब्रिटेनकी यह नीति बड़ी ही ध्वंसकारिणी है। औरोंके लिए चाहे यह लाभदायक ही हो पर हिन्दू-समाजके लिए तो यह निश्चय ही नाश करनेवाली नीति है। इस नीतिसे भारतमें बराबर दुष्कर्म बढ़ता जा रहा है। फलतः अधम, निर्बल और बुजदिल वर्णसंकरोंकी संख्या बढ़ रही है। यदि लोगोंको दण्डका भय होता तो यह वर्णसंकर-वृद्धि अवश्य रुक जाती। इसीसे-

भारतवर्षमें प्राचीन समयमें इस कर्मका दण्ड-विधान बड़ा कड़ा था। उस समय जब इस ढङ्गका अपराधी पाया जाता था, तब वह चीर डाला जाता था। चीरनेकी विधि यह होती थी,—अपराधीके दोनों पाँवोंमें रस्सी बाँध कर दो कोतल घोड़ोंके पिछले पाँवोंमें वही रस्सी बाँध दी जाती थी। इसके बाद दोनों घोड़े पीटकर एक दूसरेसे विपरीत दिशा—जैसे एक उत्तर तो दूसरा दक्षिण—में भगा दिये जाते थे। अपराधीके शरीरके दो टुकड़े हो जाते थे, घोड़े चारों ओर दौड़ते थे। उन घोड़ोंके पाँवोंमें अपराधीके शरीरका टुकड़ा घसीटा जाते देखकर लोग डरते थे और यह समझते थे कि ऐसा अपराध करनेसे हमें भी ऐसा ही दण्ड मिलेगा। फल यह होता था कि न तो किसी स्त्रीका पर-पुरुषसे बातें करनेका साहस होता था और न किसी पुरुषका परायी स्त्रीकी ओर देखनेकी ही हिम्मत पड़ती थी। इसलिए उस समय लोग सदाचारी रहते थे। वीर, साहसी, कुशाग्र-बुद्धि और तेजस्वी सन्तानें पैदा होती थीं। यदि विदेशी शासनकी जगह स्वशासन होता, तो आज भी हम वैसा कर सकते और दुराचारको आसानीसे रोकनेमें समर्थ होते।

कुली-प्रथासे भी हमारा बहुत ही पतन हुआ और हो रहा है। प्रवासी भारतवासियोंके साथ बहुत ही घृणित और अमानुषिक बर्ताव किये जाते हैं। वहाँ एक भारतीय स्त्री तीन पुरुषोंको रखनेके लिए बाध्य की जाती है, चाहे उस स्त्रीका विवाहित पुरुष वहाँ मौजूद ही क्यों न हो। इसका कारण यह है कि वहाँ पर स्त्रियोंकी कमी है। भारत-हितैषी मि० सी० एफ० एण्ड्रूजके लेखोंसे मालूम हुआ था कि वहाँ एक दस वर्षकी बालिका गर्भवती थी। स्त्रियाँ १०—१५ दिनके नाजुक बच्चोंको सुलाकर काम करती हैं। जब भूखसे कोई बच्चा रोता है और दुर्भाग्यवश माँ इधर-उधर झाँककर बच्चेको दूध पिलाने चली जाती है और उसी समय गोरा अफसर देख लेता

है—तब वह उसे ठोकरोंसे पीटता है,—जरा भी रहम नहीं करता। वहाँके लोग ऐसे व्यभिचारी होते जा रहे हैं कि भाई-बहन, बाप-बेटी-का सम्बन्ध-ज्ञान अब उनमें बहुत कम रह गया है। हमारे कितने ही भाई टापूमें भेजे जाकर हमसे अलग किये जा रहे हैं। दुःख है कि हमलोगोंमें भी यह ज्ञान बहुत ही कम रह गया है कि हम उन्हें अपना भाई तो समझें; उनके आनेपर हम उन्हें बैठनेके लिए स्थान तो दें।

कहनेका सारांश यह है कि इस प्रकारकी अज्ञानतासे हमारा सर्व-स्व रहा-सहा वैभव भी चौपट होता जा रहा है। रोज नयी-नयी विप-त्तियोंका बोझ ऊपर लादा जा रहा है। हमारी बातें सुनीतक नहीं जातीं। इसी वर्ष सन् १९२८ में नमक-करको बड़ी व्यवस्थापिका सभाने ।) मन घटाया था। इसका उल्लेख भी पीछे किया जा चुका है और लिखा गया है कि वायसरायने विशेष अधिकारसे उसे ज्यों-का-त्यों कर दिया है। पर वह अंश छप जानेके बाद ज्ञात हुआ कि फिरसे प्रस्ताव रखनेपर पक्षमें ४६ और विपक्षमें ४१ वोटोंके आनेसे १।) मन नमक कर पास हुआ है। चार मुसलमान सदस्योंका वोट सर-कारकी ओर हो जानेसे यह अनर्थ हुआ है। यह है हमारे मुसलमान देश-वासियोंकी दया। यदि हमारी बात मानी जाती तो दूसरी बार वोट लेनेकी नौबत ही क्यों आती।

एक ज़रिया और भी धनके सत्यानाश करनेका बड़ा भयानक है। वह यह कि केवल इङ्गलैण्डमें भारतके ७ हजार छात्र विद्याध्ययन करनेके लिए इस समय मौजूद हैं। यदि प्रत्येक विद्यार्थीका औसत खर्च २७ पौंड (लगभग २६७ रुपया) मासिक रक्खा जाय तो सातो हजार छात्रोंका मिलाकर प्रतिमास १ लाख ४० हजार पौंड यानी विनिमयकी वर्त्तमान दरके अनुसार १८ लाख ६७ हजार रुपया खर्च होता है। इस प्रकार सालाना २ करोड़ २४ लाख रुपया

भारतीय छात्रोंका केवल इङ्गलैण्डमें चला जाता है। यदि भारतमें शिक्षाका उचित प्रबन्ध किया गया होता तो इतनी बड़ी धनराशि हरसाल विदेशमें कदापि न जाती।

हम पहले भारतके क्षेत्रफलका उल्लेख कर चुके हैं। किन्तु वह क्षेत्रफल पुराना है। इस समय भारतका क्षेत्रफल १८ लाख ५ हजार ३३३ वर्गमील है। जिसमें ७ लाख ११ हजार ३२ वर्गमीलपर देशी राज्योंका आधिपत्य है और १० लाख ६४ हजार ३०० वर्गमील-पर अङ्गरेजी राज्यका। कितने दुःखकी बात है कि जिस देशका इतना बड़ा रकबा हो और उस देशके छात्रोंको उच्चकोटिकी शिक्षाका स्वदेशमें कोई भी प्रबन्ध नहीं।

किन्तु यह सब स्वराज्य प्राप्त हुए बिना नहीं हो सकता। सरकारको तो भेद और दोषका दिग्दर्शन करानेसे ही अवकाश नहीं मिलता। उससे पूछो कि भारतको स्वराज्य क्यों नहीं मिल सकता? जवाब मिलेगा, यहाँकी जनतामें राष्ट्रीयता ही नहीं है फिर स्वराज्य कैसे दिया जा सकता है। जहाँ सन् १६२१ की रिपोर्टके अनुसार २२२* भाषायें बोली जाती हैं वहाँके लोग स्वराज्यके अधिकारी नहीं हो सकते। इसलिए स्वराज्य प्राप्त करना ही हमारा पहला काम है, चाहे वह जिस तरहसे प्राप्त हो। इस समय हमारे सामने यह प्रश्न है कि हम जातीय अपमान स्वीकार करेंगे या नहीं और अपने आत्म-त्यागके द्वारा भारतवर्षके गौरवकी रक्षा करेंगे या नहीं। जो लोग इस बातको मानते हैं कि केवल यही प्रश्न हमारे सामने है, उन्हें अपने अन्तःकरणके निश्चयके सिवाय कांगरेस या किसी दूसरेके निश्चयकी प्रतीक्षा न करनी चाहिए। हमलोग यदि चाहें तो उस समयतक प्रतीक्षा करें, जबतक कि जाति अपना निश्चय न कर ले।

---

* सन् १६११ में २२० भाषाओंका प्रचलन बतलाया गया था; पर १६२१ में २२२ भाषाओंका बतलाया गया।

पर यदि अपने पक्षकी सच्चाईमें पूरा विश्वास हो तो हमें अभी अपना निश्चय कर लेना चाहिए।

स्मरण रहे कि स्वराज्य दाल-भातका ग्रास नहीं है। इसकी प्राप्ति, सर्वस्व निछावर किये विना नहीं होती। ऐसी दशामें यदि आप स्वदेशीके प्रेमी भी न होंगे तो कैसे सफलता प्राप्त हो सकेगी? देखिये अन्य देशवाले स्वदेशी और विदेशीका कितना ध्यान रखते हैं। इटलीमें केला नहीं होता, अतः वहांके लोग केला छूतेतक नहीं। क्यों? इसलिए कि इसकी खपत होनेसे दूसरे देशवाले इटलीकी सम्पत्ति ले जायँगे। इसीसे यहाँ राज्य-नियमके अनुसार वह आदमी अपराधी समझा जाता और दंड पाता है, जो केला मँगाता वेचता या खाता है। अतः हमें पूर्ण तत्परताके साथ आपत्तियोंका सामना करते हुए अपना कार्य पूरा करना जरूरी है। खासकर ऐसी दशामें जब कि सरकार कमर कसकर हमारा संहार करनेपर तुली हुई है। इस कार्यमें शासकगण किस प्रकार अन्याय कर रहे हैं और इससे भी अधिक करेंगे, यह मेरठ के मुकदमेके खर्चसे मालूम हो जाता है। मेरठके मुकदमेमें सिर्फ लांगफडजेम्सको अप्रैल (१९२९) महीनेका ३४ हजार रुपये दिये गये हैं। अभी इनके दो बिल चुकानेके लिए पड़े हुए हैं। एक बिल १४ हजारका है और दूसरा ९ हजारका। सुना जाता है कि इस मामलेके लिए एक करोड़ व्यय करनेकी स्वीकृति सरकारने दे दी है। इस उदारताका परिणाम क्या होगा, यह अनुमेय हैं।

—* इति *—



हमारी अन्यान्य पुस्तकें



१—स्वप्नदोष रक्षक

इस पुस्तक के लेखक पं० गणेशदत्त शर्मा गौड़ 'इन्द्र' हैं। इसमें प्राच्य, पाश्चात्य उभय-विज्ञानबल से स्वप्नदोष को नाश करनेवाली सैकड़ों युक्तियुक्त युक्तियाँ बतलाई गई हैं। इसके अधिकांश उपाय विद्यार्थियों तथा नवयुवकों के हेतु अत्यन्त हितकर हैं।

परिशिष्ट में स्वामी विश्वनाथ 'विश्वेश' ने 'स्वप्न दोष क्या है?' यह विषय धर्मशास्त्र के ब्रह्मचर्य्यांश को लेते हुए लिखा है, जो नवयुवकों के लिए वास्तविक और आदरणीय है तथा सर्वथा मनन योग्य है। मूल्य ॥)

२—रेलवे थर्ड क्लास

इसमें रेलवे-सम्बन्धी तीसरे दर्जे के प्रायः सभी कायदे-कानून दिये गये हैं। इसको पढ़ लेने पर आपसे रेल की मुसाफिरी में एक पैसा भी कोई ठग नहीं सकता। ट्रावेलिङ्ग एजेन्टों तथा देश-विदेश में भ्रमण करनेवाले यात्रियों के लिये बड़े ही फायदे की पुस्तक है। मू०॥)

३—मधुप!

लेखक पं० जगन्नारायणदेव शर्मा 'कविपुष्कर' विशारद, साहित्य-शास्त्री। यह 'मधुप' पर लिखा हुआ एक आध्यात्मिक पद्यकाव्य है। इसकी कवितायें जैसी भावपूर्ण तथा हृदयाकर्षक हैं वैसी ही इसकी छपाई भी सुन्दर तथा मनमोहक है। मूल्य ॥)

४—हिन्दू गायन

'कविपुष्कर' जी ने सनातनी, आर्य-समाजी तथा सर्वसाधारण के उपयोगी गानों की रचना इसमें साहित्य और सङ्गीत को ध्यान में रखते हुए की है। हिन्दुओं के लिए बड़ी ही उपादेय है। मूल्य =)

मिलने का पता—गुप्त ब्रादर्स, बनारस सिटी।

गुप्त ब्रादर्स, काशीके

स्थायी ग्राहकोंके लिए नियम

१—स्थायी ग्राहक होनेके लिए १) प्रवेश शुल्क देना पड़ता है।

२—स्थायी ग्राहकोंको इस कार्यालय द्वारा प्रकाशित प्रत्येक पुस्तकोंकी एक प्रति ।-) पाँच आना रुपया कमीशन काटकर दी जाती है। इसके अतिरिक्त जितनी प्रतियाँ वे लेना चाहेंगे पौने मूल्यमें दी जायेंगी।

३—किसी भी पुस्तकका लेना-न-लेना ग्राहकोंकी इच्छा पर निर्भर है।

४—किसी भी पुस्तकके प्रकाशित होतेही उसके लेखक, मूल्य, विषय आदिकी सूचना दे देनेके पन्द्रह दिवस पश्चात् उसकी वी० पी० भेज दी जाती है। यदि किसी ग्राहकको कोई पुस्तक न लेनी हो तो सूचना पातेही मनाही कर देनी चाहिए, ताकि वी० पी० न भेजी जाय। वी० पी० लौटानेसे डाक-व्यय उन्हींको देना पड़ता है, अन्यथा उनका नाम ग्राहक-श्रेणीसे पृथक् कर दिया जाता है।

५—ग्राहकोंके इच्छानुसार डाक-व्ययके बचावके लिए २-३ पुस्तकें एक साथ भेजी जा सकती हैं।

६—पाँच स्थायी ग्राहक बनानेवाले सज्जन बिना प्रवेश-शुल्क दिये ही स्थायी ग्राहकों के अधिकार प्राप्त कर सकते हैं।

७—पत्र भेजे यदि १० दिन हो जायँ और उसका कोई उत्तर न मिले, तो शीघ्र ही दूसरा पत्र भेजना चाहिये।

८—पत्र लिखते समय स्थायी ग्राहकोंका अपना नम्बर (जो उनकी रसीदमें दिया जायगा) अवश्य लिखना चाहिए। अन्यथा उनकी उपरोक्त सुविधाओंमें भूल होनेका कार्यालय जिम्मेदार न होगा।

९—स्थायी ग्राहकोंका शुल्क किसी भी दशामें लौटाया न जायगा।

पत्र-व्यवहारका पता—गुप्त ब्रादर्स, बनारस सिटी।





पुस्तक मिलने का पता—

गुप्त ब्रादर्स, बनारस सिटी।